

शिक्षा और समाज
Education and Society
BAED 101

इकाई सं०	इकाई का नाम	पृष्ठ सं०
01	शिक्षा: अर्थ, कार्य एवं क्षेत्र (Education: Meaning, Function and Scope)	1-15
02	शिक्षा एक प्रणाली, प्रक्रिया एवं अनुशासन के रूप में (Education as a system, education as a process and education as a discipline)	16-26
03	शिक्षा के उद्देश्य- वैयक्तिक उद्देश्य, सामाजिक उद्देश्य एवं प्रजातांत्रिक उद्देश्य (Aims of Education- Individual Aims and Social Aims including Democratic Aims)	27-38
04	शिक्षा सम्बंधी संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions with Regard to Education)	39-50
05	विद्यालय: समाज का लघु रूप (School as a miniature society)	51-63
06	शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन Education and Social Change	64-73
07	शिक्षा के साधन: औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरौपचारिक (Agencies of Education: Formal, Informal and Non-formal)	74-83
08	दर्शन का अर्थ और भारतीय दर्शन, अध्यापक के लिय शिक्षा का महत्व (Meaning of Philosophy and Educational Philosophy, Importance of Education for Teacher)	84-95
09	आदर्शवाद और शिक्षा: उद्देश्य, प्रक्रिया, पाठ्यक्रम, अनुशासन व अध्यापक की भूमिका (Idealism and Education: Aims, Process, Curriculum, Discipline and Role of Teacher)	96-109
10	प्रकृतिवाद और शिक्षा: उद्देश्य, प्रक्रिया, पाठ्यक्रम, अनुशासन, अध्यापक की भूमिका (Naturalism and Education: Aims, Progress, Curriculum, Discipline, Role/place of Teacher)	110-122
11	प्रयोजनवाद और शिक्षा: उद्देश्य, प्रक्रिया, पाठ्यक्रम, अनुशासन, अध्यापक की भूमिका (Pragmatism and Education: Aims, Process, Curriculum, Discipline, Role of Teacher)	123-137
12	क्षेत्रीय विकास और राष्ट्रीय एकता में शिक्षा की भूमिका (Role of Education for Regional Development and National Integration)	138-148

13	शिक्षा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय एकता में सम्बर्धन (Enhancement of International Integration Through Education)	149-161
14	शिक्षा द्वारा मानव संसाधन विकास, शिक्षा और रोजगार (Education for Human Resource Development, Education and Employment)	162-172
15	पाठ्यक्रम की परिभाषा व पाठ्यक्रम निर्माण सिद्धान्त (Curriculum Definition and Principles of Curriculum Construction)	173-181
16	पाठ्यक्रम के प्रकार, बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम, जीवन केन्द्रित पाठ्यक्रम Types of Curriculum – Child Centered Curriculum. Life Centered Curriculum	182-192
17	पाठ्यक्रम एवं पाठ्य सहगामी क्रियायें: इनकी सार्थकता और व्यवस्था (Curriculum and Co-curricular Activities: Their Significance and Arrangement)	193-202
18	स्वतन्त्रता और अनुशासन में सम्बन्ध, मानव जीवन व सामाजिक व्यवस्था में इसका महत्व (Relation Between Freedom and Discipline, its significance for human life and social order)	203-208
19	विद्यालय के अन्दर व बाहर अनुशासन की आवश्यकता और महत्व (Need and Importance of Discipline in and out of School)	209-218
20	स्व-अनुशासन का अर्थ, महत्व एवं प्राप्ति (Meaning, Significance and attainment of Self-discipline)	219-229
21	मूल्यों का अर्थ, मानवीय मूल्यों के प्रकार तथा मानव जीवन में मूल्यों का महत्व (Meaning of Values, Types of Human Values and Importance of Values in Human Life)	230-244
22	मानवीय मूल्यों के स्रोत , प्राप्ति की प्रक्रिया ,मूल्यों की प्राप्ति हेतु विधियाँ, मूल्यों के विकास में परिवार एवं विद्यालय की भूमिका (Value Education, education for values, strategies for the inculcation of values)	244-258

इकाई-1-शिक्षा:अर्थ,कार्य एवं क्षेत्र (Education: Meaning, Function and Scope)

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 शिक्षा का अर्थ
 - 1.3.1 शिक्षा का विश्लेषणात्मक व दार्शनिक अर्थ
 - 1.3.2 शिक्षा का समाजशास्त्रीय व राजनैतिक अर्थ
 - 1.3.3 शिक्षा का आर्थिक व मनोवैज्ञानिक अर्थ
 - 1.3.4 शिक्षा का समग्र एवं वास्तविक अर्थ
- 1.4 शिक्षा के कार्य
 - 1.4.1 शिक्षा के सामान्य कार्य
 - 1.4.2 मानवीय जीवन में शिक्षा के कार्य
 - 1.4.3 सामाजिक जीवन में शिक्षा के कार्य
 - 1.4.4 राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा में कार्य
- 1.5 शिक्षा का विषय क्षेत्र
 - 1.5.1 शैक्षिक समस्याएं
 - 1.5.2 अध्ययन के विशिष्ट क्षेत्र
- 1.6 सारांश
- 1.7 शब्दावली
- 1.8 अभ्यास
- 1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव प्रकृति की सर्वोत्तम रचना है, जो अपने साथ कुछ जन्मजात शक्तियाँ लेकर पैदा होता है। शिक्षा के द्वारा मानव की इन जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। यह कार्य मानव के जन्म से ही उसके परिवार द्वारा अनौपचारिक रूप से तत्पश्चात् विद्यालय भेजकर औपचारिक रूप से प्रारम्भ कर दिया जाता है। विद्यालय के साथ-साथ उसे परिवार एवं समुदाय में भी कुछ-न कुछ सिखाया जाता रहा है और सीखने - सिखाने का यह क्रम विद्यालय छोड़ने के बाद भी चलता रहता है और जीवन भर चलता है। अपने वास्तविक अर्थ में किसी समाज में सदैव चलने वाली सीखने सिखाने की यह सप्रयोजन प्रक्रिया ही शिक्षा है। इस इकाई में आप शिक्षा के विभिन्न अर्थ यथा-शाब्दिक, संकुचित, व्यापक, विश्लेषणात्मक, समग्र एवं व्यापक अर्थ से अवगत हो सकेंगे साथ ही इन अर्थ को परिभाषित करने वाले विभिन्न दृष्टिकोणों के बारे में जान सकेंगे।

1.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- शिक्षा के संकुचित एवं व्यापक अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- शिक्षा के अर्थ को भारतीय दृष्टिकोण एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण के आधार पर स्पष्ट कर सकेंगे।
- शिक्षा के सामान्य, मानवीय, सामाजिक, राष्ट्रीय जीवन में कार्य को परिभाषित कर सकेंगे।
- शिक्षा के विषय विस्तार के आधार पर शिक्षा की प्रक्रिया एवं स्वरूप को समझ सकेंगे।

भाग एक

1.3 शिक्षा का अर्थ- (Meaning of Education)

भारतीय दृष्टिकोण में शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की शिक्ष् धातु में अ प्रत्यय लगने से बना है। शिक्ष् का अर्थ है सीखना और सिखाना। इसलिए शिक्षा का अर्थ हुआ- सीखने - सिखाने की प्रक्रिया। यदि हम शिक्षा के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द एजुकेशन पर विचार करें तो उसका भी यही अर्थ निकलता है। एजुकेशन शब्द लैटिन भाषा के एजुकैटम (Educatum) शब्द से बना है और एजुकैटम शब्द उसी भाषा के (E) तथा ड्यूको (Duco) शब्दों से मिलकर बना है। ए का अर्थ है अन्दर से और ड्यूको का अर्थ है आगे बढ़ाना। इसलिए एजुकेशन शब्द का अर्थ हुआ- बच्चे की आन्तरिक शक्तियों को बाहर की ओर प्रकट करना। इस प्रकार शिक्षा शब्द का समग्र रूप से अर्थ बालक की जन्मजात शक्तियों का सर्वांगीण विकास है।

शिक्षा का व्यापक अर्थ - प्रत्येक प्राणी जन्म के बाद सर्वप्रथम पहला पाठ मां की गोद में पढ़ता है तत्पश्चात अपने घरेलू वातावरण तथा आस-पास के पर्यावरण जिसके भी संपर्क में आता है, उससे कुछ-न-कुछ सीखता रहता है। इस सीखने व अनुभव का परिणाम यह होता है कि वह धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार से अपने भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण से अपना सामंजस्य स्थापित करता है। इस प्रकार वस्तुतः सीखने-सिखाने की यह प्रक्रिया जीवनपर्यन्त चलती रहती है। शिक्षा के व्यापक अर्थ को प्रकट करने में कहा जा सकता है कि शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली वह सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। इसके द्वारा व्यक्ति एवं समाज दोनों निरन्तर विकास करते हैं।

विद्वान् जे.एस. मैकेन्जी के शब्दों में:- व्यापक दृष्टि से शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है और जीवन के प्रत्येक अनुभव के द्वारा इसका विकास होता है।

शिक्षा का संकुचित अर्थ:- शिक्षा के संकुचित या सीमित अर्थ के अनुसार शिक्षा का अभिप्राय, बालक को विद्यालय में दी जाने वाली शिक्षा से है। दूसरे शब्दों में संकुचित अर्थ में शिक्षा किसी समाज में एक निश्चित समय तथा निश्चित स्थान (विद्यालय) में सुनियोजित ढंग से चलने वाली वह सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला - कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है, और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। इसके द्वारा व्यक्ति एवं समाज दोनों निरन्तर विकास करते हैं।

विद्वान् जे0एस0 मैकेन्जी के अनुसार- संकुचित अर्थ में शिक्षा का अभिप्राय -हमारी शक्तियों के विकास एवं उन्नति के लिए चेतनापूर्वक किये गये किसी भी प्रयास से हो सकता है।

1.3.1 शिक्षा का विश्लेषणात्मक व दार्शनिक अर्थ :-

शिक्षा का विश्लेषणात्मक अर्थ:- शिक्षा के विश्लेषणात्मक अर्थ को स्पष्ट करने के लिए मूल भूमिका दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों एवं वैज्ञानिकों ने अदा की है और इन सबने शिक्षा का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर इनकेद्वारा उद्धाटित तथ्यों के आधार पर शिक्षा के स्वरूप को समझने एवं परिभाषित करने का प्रयत्न किया है।

शिक्षा का दार्शनिक अर्थ:-दार्शनिकों की दृष्टि से शिक्षा मनुष्य जीवन के अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति का साधन होती है। और चूंकि मनुष्य जीवन के अन्तिम उद्देश्य के सम्बन्ध में दार्शनिकों में मतैक्य नहीं है अतः निम्नलिखित विभिन्न परिभाषायें शिक्षा के सम्बन्ध में दी गयी हैं।

जगतगुरु शंकराचार्य की दृष्टि से -

शिक्षा वह है जो मुक्ति दिलाये। (सः विद्या या विमुक्तये)

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार -

मनुष्य की अर्न्तनिहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।

यूनानी दार्शनिक प्लेटो शरीर व आत्मा दोनों के महत्व को स्वीकार करते हैं तथा कहते हैं शिक्षा का कार्य मनुष्य के शरीर और आत्मा को वह पूर्णता प्रदान करता है जिसके कि वे योग्य है।

युगपुरुष महात्मा गाँधी ने शरीर, मन और आत्मा, तीनों के विकास पर समान रूप से बल देते हुये कहा है – “शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है”।

प्रकृतिवादी दार्शनिक हरबर्ट स्पेन्सर के अनुसार -

“शिक्षा का अर्थ अन्तःशक्तियों का बाह्य जीवन से समन्वय स्थापित करना है”।

प्रयोजनवादी मनुष्य को सामाजिक प्राणी मानते है और यह मानते हैं कि शिक्षा के द्वारा मनुष्य में वर्तमान में अनुकूलन करने एवं भविष्य के समाज का निर्माण करने की क्षमता का विकास करना चाहिए। प्रयोजनवादी दार्शनिक जॉन ड्यूवी के शब्दों में – “शिक्षा व्यक्ति की उन सब योग्यताओं का विकास है, जो उसमें अपने पर्यावरण पर नियन्त्रण रखने तथा अपनी सम्भावनाओं को पूर्ण करने की सामर्थ्य प्रदान करे”।

1.3.2 शिक्षा का समाजशास्त्रीय व राजनैतिक अर्थ –

शिक्षा का समाजशास्त्रीय अर्थ:- समाजशास्त्रियों के मतानुसार शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया मानी जाती है क्योंकि इनके अनुसार समाज के अस्तित्व पर ही शिक्षा का अस्तित्व निर्भर करता है इस दृष्टि से शिक्षा की निम्नलिखित परिभाषायें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है यथा -

1. शिक्षा एक उद्देश्यपूर्ण एवं समायोजनपूर्ण प्रक्रिया है।
2. शिक्षा एक विकासात्मक प्रक्रिया है।
3. शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है।
4. शिक्षा एक द्विध्रुवीय प्रक्रिया है।
5. शिक्षा एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है।
6. शिक्षा सांस्कृतिकरण है।
7. शिक्षा एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है।

शिक्षा का राजनैतिक अर्थ - शिक्षा के राजनैतिक दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा, राष्ट्र निर्माण का साधन है। राष्ट्र का निर्माण , श्रेष्ठ नागरिकों के निर्माण से ही संभव है जिसके लिए शिक्षा से यह अपेक्षा की जाती है कि वह व्यक्ति के अन्दर राष्ट्रप्रेम उत्पन्न करे।

1.3.3 शिक्षा का आर्थिक व मनोवैज्ञानिक अर्थ –

शिक्षा का आर्थिक अर्थ –

अर्थशास्त्रियों के विचार में शिक्षा एक उत्पादक प्रक्रिया है जिसमें शिक्षा का वह आर्थिक निवेश है जिसके द्वारा व्यक्ति में उत्पादन एवं संगठन के कौशलों का विकास किया जाता है और इस प्रकार व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की उत्पादन क्षमता बढ़ाई जाती है और इनका आर्थिक विकास किया जाता है।

शिक्षा का मनोवैज्ञानिक अर्थ - मनोवैज्ञानिकों के विचार में मनुष्य एक मनोशारीरिक प्राणी है जो जन्म से कुछ शक्तियां लेकर पैदा होता है। अतः शिक्षा के द्वारा सर्वप्रथम इन शक्तियों का विकास होना चाहिए। जर्मन शिक्षाशास्त्री **पैस्टालॉजी** के शब्दों में इसे निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है –“शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक, समरस एवं प्रगतिशील विकास है।”

फ्रोबेल के अनुसार –“शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक अपनी आन्तरिक शक्तियों को बाहर की ओर प्रकट करता है।”

1.3.4 शिक्षा का समग्र एवं वास्तविक अर्थ-

शिक्षा के विषय में दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं। उपरोक्त सभी दृष्टिकोणों से शिक्षा की प्रकृति के विषय में ये तथ्य उजागर होते हैं कि शिक्षा एक सोद्देश्य, अविरल, गतिशील, व विकास की प्रक्रिया है। उपर्युक्त दी गई सभी परिभाषाओं को यदि सार रूप में प्रस्तुत किया जाये तो इसे निम्न रूप में परिभाषित करना चाहिए -

शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली वह सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान, एवं कला - कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। इसके द्वारा व्यक्ति एवं समाज दोनों निरन्तर विकास करते हैं।

शिक्षा की उपरोक्त परिभाषा अपने आप में पूर्ण एवं समन्वित दृष्टिकोण समाहित किये हुये हैं तथा शिक्षा के अर्थ को पर्याप्त रूप से स्पष्ट करती है।

अपनी उन्नति जानिए

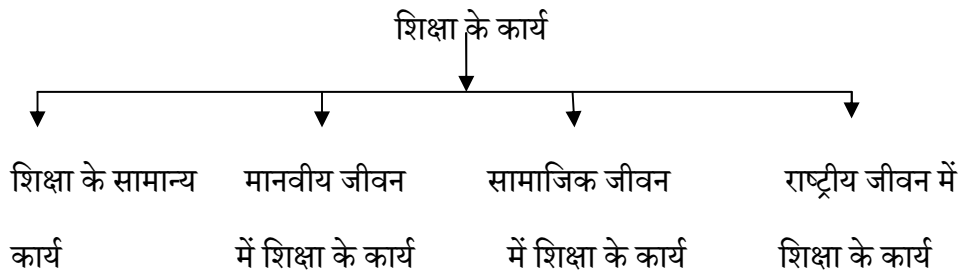
रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. प्रत्येक प्राणी जन्म के बाद सर्वप्रथम पहला पाठकी गोद में पढ़ता है।
2. शिक्षा के द्वारादोनों निरन्तर विकास करते हैं।

3. शिक्षा के द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि एवंपरिवर्तन किया जाता है,

1.4 शिक्षा के कार्य (Functions of Education)

शिक्षा एक बहुमुखी प्रक्रिया है। कोई व्यक्ति, समाज अथवा राज्य शिक्षा के द्वारा जो प्राप्त करना चाहता है वे ही शिक्षा के उद्देश्य होते हैं और इन उद्देश्यों की पूर्ति करना ही शिक्षा के कार्य होते हैं। अनेक शिक्षाविदों ने मानव एवं समाज दोनों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा के विभिन्न कार्य निर्धारित किये हैं। जॉन ड्यूवी के अनुसार शिक्षा का कार्य -असहाय प्राणी के विकास में सहायता पहुँचाना है, ताकि वह सुखी, नैतिक और कुशल मानव बन सके।



1.4.1 शिक्षा के सामान्य कार्य-

शिक्षा के कुछ सामान्य कार्य निम्नलिखित हैं:

1. जन्मजात शक्तियों का प्रगतिशील विकास- बालक कुछ अंतर्निहित शक्तियों जैसे - प्रेम, जिज्ञासा, तर्क, कल्पना, एवं आत्म सम्मान आदि को लेकर जन्म लेता है। शिक्षा इन अंतर्निहित शक्तियों का विकास करती है। पेस्टलॉजी के विचार से इसको बल मिलता है - शिक्षा मनुष्य की अंतर्निहित शक्तियों का स्वभाविक, सामंजस्यपूर्ण एवं प्रगतिशील विकास है।
2. भाषा, ज्ञान, मानसिक शक्तियों का विकास- शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व के निर्माण के लिए बालक के शारीरिक, मानसिक, नैतिक आध्यात्मिक एवं संवेगात्मक आदि पक्षों का विकास किया जाता है।
टी0पी0नन के अनुसार -शिक्षा, वैयक्तिकता का पूर्ण विकास है, जिससे कि व्यक्ति अपनी पूर्ण योग्यता अनुसार मानव जीवन को योग दे सके।
3. नैतिक एवं चारित्रिक विकास एवं मूल्य शिक्षा- चरित्र का अर्थ है - आन्तरिक दृढ़ता और व्यक्तित्व की एकता। शिक्षा का उद्देश्य - ज्ञानार्जन करना और शारीरिक शक्ति बढ़ाना ही नहीं वरन् उत्तम चरित्र का निर्माण करना भी है।
जर्मन शिक्षाशास्त्री हरबार्ट के अनुसार - अच्छे नैतिक चरित्र का विकास ही शिक्षा है।

4. संस्कृति का संरक्षण, हस्तान्तरण एवं विकास- किसी समाज की संस्कृति एवं सभ्यता का संरक्षण, आने वाली पीढ़ी को हस्तान्तरण एवं सांस्कृतिक विकास का कार्य करने में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
ओटावे के अनुसार- शिक्षा का एक कार्य समाज के सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानों को अपने तरुण और कार्यशील सदस्यों को प्रदान करना है।
5. वयस्क जीवन की तैयारी - शिक्षा बालक को वयस्क जीवन के लिए तैयार करती है। शिक्षा के इस पहलू पर बल देते हुये मिल्टन ने लिखा है - मैं उसी को पूर्ण शिक्षा कहता हूँ, जो मनुष्य को शांति और युद्ध के समय व्यक्तिगत और सार्वजनिक - दोनों प्रकार के सब कार्यों को उचित रूप से करने के योग्य बनाती है।
6. उत्तम नागरिकों का निर्माण- उत्तम नागरिक, उत्तम राज्य का आधार स्तम्भ है। यही कारण है कि प्रत्येक राज्य आशा करता है कि उसके नागरिक-ईमानदार, परिश्रमी, देशभक्त और कर्तव्य तथा दायित्वों को भली प्रकार समझते हों तथा इन गुणों का विकास शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है।
7. सामाजिक परिवर्तन, सुधार, व उन्नति- समाज द्वारा बालक की शिक्षा का आयोजन इसलिए किया जाता है, ताकि बालक को न केवल समाज के अनुकूल बनाये, वरन समाज के नियमों और सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करके उसका सुधार करें और उसे उचित दिशा में आगे बढ़ायें। ड्यूवी के शब्दों में -शिक्षा में अति निश्चित और अल्पतम साधनों द्वारा सामाजिक और संस्थागत उद्देश्यों के साथ-साथ समाज के कल्याण, प्रगति और सुधार में रुचि का पुष्पित होना पाया जाता है।
8. उपरोक्त पंक्तियों में शिक्षा के कुछ कार्यों का वर्णन किया गया है, परन्तु शिक्षा का कार्य क्षेत्र अति व्यापक है। शिक्षा की प्रक्रिया स्थिर न होकर सदैव चलने वाली है। अतः शिक्षा का कार्य निर्धारित करना आसान नहीं है। डा० जाकिर हुसैन के अनुसार शिक्षा का प्रमुख कार्य यह है - शिक्षा का कार्य बालक के मस्तिष्क को शुद्ध, नैतिक और बौद्धिक मूल्यों को अनुभव करने में इस प्रकार सहायता देना है कि वह इन मूल्यों से प्रेरित होकर, इनको सर्वोत्तम प्रकार से अपने कार्य और जीवन में प्राप्त करे।

1.4.2 मानव जीवन में शिक्षा के कार्य-

महान दार्शनिक डा० राधा कृष्णन के अनुसार- शिक्षा को मानवीय होना चाहिए। इसमें मात्र बौद्धिक प्रशिक्षण का ही स्थान नहीं होना चाहिए वरन् आत्मानुशासन तथा हृदय की पवित्रता पर भी बल दिया जाना चाहिए। भारतीय समाज की वर्तमान आवश्यकताओं, मूल्यों, गुणों, समस्याओं तथा उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुये मानव जीवन के निम्न कार्य है -

1. मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति - मानव जीवन में शिक्षा के कार्य का महत्व बताते हुये स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है - शिक्षा का कार्य यह पता लगाना है कि जीवन की

समस्याओं को किस प्रकार हल किया जाय और आधुनिक सभ्य समाज का गम्भीर ध्यान इसी बात में लगा हुआ है। शिक्षा का कार्य व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति करने के अतिरिक्त उसे समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने में मदद देना तथा ऐसे अवसर प्रदान करना है जिससे कि वह उन्नति कर सके।

2. आत्मनिर्भरता की प्राप्ति- शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य व्यक्ति को अपना जीवन-यापन कर पाने में सक्षम बनाना है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण होता है मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।
3. व्यावसायिक कुशलता की प्राप्ति- मानव जीवन में शिक्षा का एक कार्य, छात्रों को व्यावसायिक कुशलता की प्राप्ति में सहायता प्रदान करना है। इससे राष्ट्रीय आय और उत्पादकता में वृद्धि होती है।
4. वातावरण से समायोजन एवं परिवर्तन- शिक्षा, व्यक्ति को वातावरण के साथ समायोजन करना सिखाती है तथा वातावरण को परिवर्तन योग्य बनाती है।
5. जॉन ड्यूवी के अनुसार - शिक्षा व्यक्ति में उन क्षमताओं का विकास है जो उसको अपने वातावरण को नियंत्रित तथा अपनी भावी सम्भावनाओं को पूर्ण करने के योग्य बनाती है।
6. जीवन के लिए तैयारी - शिक्षा व्यक्ति को जीवन के संघर्षों से निपटने के लिए तैयार करती है। विलमॉट का कथन है -“ शिक्षा जीवन की तैयारी है।” अब यदि शिक्षा-जीवन की तैयारी है, तो शिक्षा का कार्य है - बच्चों को जीवन की कठिनाई व संघर्षों का सामना करने हेतु तैयार करना। शिक्षा के इस कार्य पर अपने विचार व्यक्त करते हुये स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है -“ यदि कोई मनुष्य केवल कुछ परीक्षायें पास कर सकता है। और अच्छे व्याख्यान दे सकता हो तो आप उसको शिक्षित समझते हैं। क्या वह शिक्षा, शिक्षा कहलाने के योग्य है, जो सामान्य जनसमूह को जीवन के संघर्ष के लिए अपने आप को तैयार करने में सहायता नहीं देती है, और उनमें शेर का सा साहस उत्पन्न नहीं करती है।”
7. कार्य का व्यवहारिक ज्ञान - शिक्षा का अन्तिम और महत्वपूर्ण कार्य है - बालकों को विभिन्न कार्य क्षेत्रों का व्यवहारिक ज्ञान देना। हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था में सिद्धांत पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाता है फलतः बालक को जीवन के किसी भी कार्य-क्षेत्र का व्यवहारिक ज्ञान नहीं प्राप्त होता है।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि मानव जीवन में शिक्षा का कार्य समाज के सदस्यों की उन सब शक्तियों, क्षमताओं व गुणों का विकास करना है, जो उनमें है, जिससे कि वे निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर बढ़ सकें।

1.4.3 सामाजिक जीवन में शिक्षा के कार्य -

चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः समाज के साथ निर्वाह करने के लिए शिक्षा को अनेक कार्य करने पड़ते हैं। जिसमें से कुछ कार्य मुख्यतः निम्नलिखित हैं -

1. समाज के साथ अनुकूलन।
2. सामाजिक कुशलता की उन्नति एवं सुधार।
3. सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति।
4. संस्कृति और सभ्यता का विकास।
5. व्यक्तिगत हित को सामाजिक हित से दूर रखना।
6. सामाजिक भावना की जागृति।
7. सामाजिक गुणों का विकास।

प्रत्येक व्यक्ति समाज में ही जन्म लेता है, समाज में ही पल्लवित होकर जीवन व्यतीत करता है और समाज में ही उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में शिक्षा का महत्वपूर्ण कर्तव्य हो जाता है कि बालकों में सामाजिक भावना जागृत करे, उनमें दया, परोपकार, सहनशीलता, सौहार्द, सहानुभूति, अनुशासन इत्यादि सामाजिक गुणों का विकास करे।

एच0गार्डन के अनुसार- शिक्षा को यह जानने की आवश्यकता नहीं है कि वह सामाजिक प्रक्रिया को उन व्यक्तियों के सम्मुख लाने की दिशा में आगे बढ़े जो इसके लिए अयोग्य हैं। शिक्षा समाज को दिशा देती है। ओटावे के अनुसार- यह निःसंदेह सत्य है कि सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा को एक महत्वपूर्ण कार्य करना पड़ता है।

1.4.4 राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा के कार्य -

किसी राष्ट्र का उत्थान एवं पतन उसके व्यक्तियों की श्रेष्ठता व हीनता से निर्धारित होता है।

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार- “ राष्ट्र का गुण, उसकी सामाजिक इकाइयों का गुण है, अर्थात् सामाजिक इकाइयों का सामूहिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन है। यदि ईधन ही खराब है तो ज्योति कैसे तेज हो सकती है - अर्थात् यदि सामाजिक इकाइयाँ निर्बल है, तो राष्ट्र कैसे दैदीप्यमान हो सकता है”।

राष्ट्र की उन्नति तभी हो सकती है, जब उसके नागरिक श्रेष्ठ हों। उनको ऐसा बनाना ही राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा का कार्य है।

1. **नेतृत्व के लिए प्रशिक्षण** - राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा का मुख्य कार्य है - व्यक्तियों को इस प्रकार प्रशिक्षित करना है कि वे सामाजिक, राजनीतिक, औद्योगिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में नेतृत्व का कार्य कर सकें।
2. **कुशल श्रमिकों की पूर्ति** - राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा का कार्य - कुशल श्रमिकों की पूर्ति करना है। ऐसे श्रमिक व्यापार और उद्योग के उत्पादन को बढ़ाएंगे। फलतः राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि होगी।
हुमायूँ, कबीरके अनुसार - “ शिक्षित श्रमिक अधिक उत्पादन में योगदान देंगे और इस प्रकार उद्योग तथा व्यवसाय - दोनों की अधिक उन्नति होगी”।
3. **राष्ट्रीय एकता का विकास** - शिक्षा का कार्य राष्ट्रीय एकता का विकास करना है। शिक्षित व्यक्ति के सोचने का क्षेत्र व्यापक हो पाता है वह जातिवाद, साम्प्रदायिकता, अन्धविश्वास, क्षेत्रीयता आदि में विश्वास नहीं करता है तथा वह एक दूसरे के साथ भाई-चारे का व्यवहार करता है तथा देश के हित को सर्वोपरि समझता है।
जवाहरलाल नेहरू के अनुसार - राष्ट्रीयता एकता के प्रश्न में जीवन की प्रत्येक वस्तु आ जाती है। शिक्षा का स्थान सबसे ऊपर है और यही आधारशिला है।
4. **भावात्मक एकता का विकास** - देश में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए देशवासियों में भावात्मक एकता का विकास करना बहुत आवश्यक है। शिक्षा हमारे चारों ओर भावात्मक एकता का वातावरण निर्मित करती है। नागरिकों में उचित संवेगो एवं एकता का विकास करती है।
5. **सांस्कृतिक विरासत से सम्पर्क** - राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा का प्रमुख कार्य बालक को राष्ट्र की संस्कृति के सम्पर्क में लाना है। शिक्षा बालकों को उनके राष्ट्र की संस्कृति का ज्ञान कराती है तथा देश की संस्कृति की विकास प्रक्रिया से अवगत कराती है।
डा० जाकिर हुसैन के अनुसार - “केवल संस्कृति की सामग्री द्वारा ही शिक्षा की प्रक्रिया को गति दी जा सकती है। केवल इसी सामग्री से मानव-मस्तिष्क का विकास हो सकता है।”
6. **व्यक्तिगत हित को सार्वजनिक हित से निम्न रखना**- राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य है कि वह लोगों को ऐसा प्रशिक्षण दे कि अपने हितों को अपने समूह, समाज, देश व राष्ट्र के हितों से निम्न समझे।
7. **मनुष्य को इस प्रकार प्रशिक्षित करना है कि** वह अनुशासित रहे व हर प्रकार का बलिदान करने के लिए तैयार रहे, तभी वह सार्वजनिक हित में योग देकर देश का कल्याण कर सकता है।
8. **योग्य नागरिक का निर्माण करना** - शिक्षा का कार्य प्रत्येक नागरिक में उचित नागरिकता का विकास करना है। शिक्षा द्वारा प्रत्येक बालक में देशभक्ति, अधिकारों और कर्तव्यों को समझने और निभाने की क्षमता, देश की बागडोर सम्भालने की योग्यता इत्यादि को उत्पन्न किया जाता है। डा० जाकिर हुसैन के अनुसार - ‘‘प्रजातान्त्रिक समाज में यह आवश्यक है

कि व्यक्ति नैतिक और भौतिक दोनों प्रकार से समाज के जीवन को उत्तम बनाने के सम्मिलित उत्तरदायित्वों को सहर्ष स्वीकार करे”।

अतः स्पष्ट है कि शिक्षा मानवीय, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन में अपने विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करती है। ये सभी एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। इस संदर्भ में **बोसिंग जीका** विचार है कि- “ शिक्षा का कार्य व्यक्ति और समाज के बीच ऐसा सामंजस्य स्थापित करना है जिसमें व्यक्ति अपने को मोड़ सके और परिस्थितियों को पुनर्व्यवस्थित कर ले जिससे दोनों को अधिकाधिक स्थाई सन्तोष प्राप्त हो सके”।

अपनी उन्नति जानिए

ये परिभाषाएं किस विद्वान की हैं?

- 4 “शिक्षा का कार्य -असहाय प्राणी के विकास में सहायता पहुँचाना है, ताकि वह सुखी, नैतिक और कुशल मानव बन सके”।
- 5 “शिक्षा मनुष्य की अंतर्निहित शक्तियों का स्वभाविक, सामंजस्यपूर्ण एवं प्रगतिशील विकास है”।
- 6 “ शैक्षिक समाजशास्त्र शिक्षा और समाजशास्त्र के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है।”
- 7 “ शैक्षिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र के सिद्धान्तों को शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर क्रियान्वित करता है। ”

1.5 शिक्षा का विषय विस्तार-

शिक्षाशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जिसमें शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप एवं उसके विभिन्न अंगों तथा समस्याओं का दार्शनिक, समाजशास्त्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोणों से अध्ययन किया जाता है। जहाँ तक शिक्षाशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र की बात है, वह बड़ा व्यापक है, परन्तु इस व्यापक क्षेत्र में हमने अब तक जो कुछ सोचा विचारा है, वह उसकी विषयवस्तु है। शिक्षाशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र एवं विषयवस्तु को सामान्यतः निम्नलिखित भागों में बाँटा जाता है -

शिक्षा दर्शन- मानव जीवन बड़ा रहस्यमय है, जब तक हम उसके रहस्य को नहीं समझते तब तक हम यह निश्चित नहीं कर सकते कि हमें क्या सीखना है और क्या सिखाना है। इसलिए शिक्षाशास्त्र के अन्तर्गत जीवन के प्रति जो विभिन्न दृष्टिकोण हैं, उनका और उनके आधार पर शिक्षा के स्वरूप, शिक्षा के उद्देश्य और शिक्षा की पाठ्यचर्या आदि का अध्ययन किया जाता है। शिक्षाशास्त्र के इस भाग को शिक्षादर्शन कहते हैं।

शैक्षिक समाजशास्त्र- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह जो कुछ भी सीखता है समाज के बीच रहकर सीखता है उसके आचार-विचार को प्रभावित करने में समाज और सामाजिक संगठनों का

विशेष हाथ रहता है। दूसरी ओर शिक्षा समाज पर नियन्त्रण रखती है और उसका विकास करती है। शिक्षाशास्त्र के अन्तर्गत समाज के स्वरूप, समाज और शिक्षा के आपसी सम्बन्ध, विभिन्न सामाजिक संगठनों एवं शिक्षा की प्रक्रिया में उनके कार्यों, समाज और विद्यालयों के सम्बन्धों, शिक्षा के सामाजिक कार्यों और शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन के आपसी सम्बन्ध आदि का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन क्षेत्र को शैक्षिक समाजशास्त्र कहते हैं।

जैसा कि ब्राउन ने कहा है -

“ शैक्षिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र के सिद्धान्तों को शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर क्रियान्वित करता है। ”

ओटावे ने शैक्षिक समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए कहा है:-

“ शैक्षिक समाजशास्त्र शिक्षा और समाजशास्त्र के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है। ”

शिक्षा मनोविज्ञान - आज शिक्षा की प्रक्रिया में बालक को बड़ा महत्व दिया जाता है। उसके शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास के आधार पर ही उसकी शिक्षा व्यवस्था की जाती है। इन सबको समझने के लिए हमें मनोविज्ञान का सहारा लेना पड़ता है। मनोविज्ञान का वह भाग जिसमें बालक के विकासक्रम, सीखने की प्रक्रिया और अन्य शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, उसे शिक्षा मनोविज्ञान कहते हैं। इसके अन्तर्गत बच्चों की प्रकृति उनकी योग्यता, रुचियों और अभिरूचियों तथा स्मृति, विस्तृति, चिन्तन और कल्पना आदि शक्तियों का अध्ययन किया जाता है। और शिक्षा की प्रक्रिया में उनके उपयोग की सीमा निश्चित की जाती है। शिक्षा मनोविज्ञान में बच्चों की बुद्धि और उनके व्यक्तित्व के विकास की विधियाँ एवं उनके मापने की विधियाँ तथा सीखने की प्रक्रिया के स्वरूप, विधियों एवं दशाओं का भी विस्तृत अध्ययन किया जाता है।

कोलसनिक महोदय के अनुसार-

“शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान की खोजों और सिद्धान्तों का प्रयोग है”।

स्किनर के अनुसार -

“शिक्षा मनोविज्ञान मानवीय व्यवहार का शैक्षिक परिस्थितियों में अध्ययन है”।

लिण्डग्रेन के अनुसार -

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों का सम्बन्ध तीन केन्द्र बिन्दुओं से है और वह है -

- (1) शिक्षार्थी
- (2) सीखने का प्रक्रम
- (3) सीखने की परिस्थितियाँ

शिक्षा का इतिहास - वर्तमान की रचना अतीत की उपलब्धियों के आधार पर ही की जाती है, इसलिए अतीत का अध्ययन आवश्यक होता है। शिक्षाशास्त्र के अन्तर्गत हम शिक्षा के इतिहास का अध्ययन इसी दृष्टि से करते हैं। जब तक हम आदि काल से लेकर अब तक शिक्षा का जो स्वरूप रहा है, उसकी जो व्यवस्था रही है और उसके जो परिणाम रहे हैं, उस सबका विस्तृत अध्ययन नहीं करते तब तक हम अपने लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकते। अतः शिक्षाशास्त्र में इस सबका अध्ययन भी किया जाता है।

तुलनात्मक शिक्षा- आज मनुष्य केवल अपनी जाति के अनुभवों से ही लाभ नहीं उठाता अपितु दूसरे देशों और राष्ट्रों के लोगों के अनुभवों से भी लाभ उठाता है। शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में भी विभिन्न देशों की शिक्षा प्रणालियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है और उनके गुणदोषों का विवेचन किया जाता है। इससे हम अपनी परिस्थितियों में अपने उपयोग की शिक्षा व्यवस्था का निर्माण करने में सफल होते हैं।

1.5.1 शैक्षिक समस्याएँ:-

इसके अन्तर्गत देश की वर्तमान शैक्षिक समस्याओं पर विचार किया जाता है और उनके समाधान के तरीके ढूँढे जाते हैं। आज हमारे देश में मुख्य शैक्षिक समस्याएँ हैं -देश के सभी क्षेत्रों में शिक्षा की समान सुविधाएँ उपलब्ध कराना, शिक्षा को व्यवसायिक स्वरूप प्रदान करना, धर्मनिरपेक्ष राज्य में धार्मिक और नैतिक शिक्षा का विधान करना तथा शिक्षा का राष्ट्रीयकरण करना आदि। जब तक शिक्षाशास्त्र के अन्तर्गत वर्तमान समस्याओं का अध्ययन कर उनके समाधान के तरीके नहीं सोचे जाते तब तक इसे विकसित नहीं कहा जा सकता।

शैक्षिक प्रशासन एवं संगठन- नियमित शिक्षा की व्यवस्था विद्यालयों में होती है, इसलिए शिक्षाशास्त्र में इन विद्यालयों के संगठन और संचालन की विधियों का अध्ययन भी किया जाता है। इसके अन्तर्गत जिन तथ्यों का अध्ययन किया जाता है उनमें से मुख्य है –

शिक्षा का संचालन किसके हाथ में है, राज्य का इसमें किस प्रकार सहयोग है? समाज किस प्रकार सहयोग कर रहा है, विद्यालयों का निर्माण कैसे करना चाहिए, विद्यालयों में विभिन्न शैक्षिक (पाठ्यचारी एवं सहपाठ्यचारी) क्रियाओं का संगठन किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाए कि उनसे अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सके, प्रधानाध्यापकों एवं अध्यापकों के गुण एवं कर्तव्यों और उनके आपसी सम्बन्धों को सुमधुर बनाने के उपाय, बच्चों में अनुशासन उत्पन्न करने के उपाय, बच्चों का प्रवेश, उनका वर्गीकरण और उनकी उपलब्धियों का मूल्यांकन और कक्षोन्नति, विद्यालयों में बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा के उपाय और शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन। इन सबके अध्ययन से हम शिक्षा की प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने में समर्थ होते हैं।

शिक्षण कला एवं तकनीकी- शिक्षण प्रक्रिया में सीखना और सिखाना दोनों क्रियाएँ आती हैं। सीखना क्या है? इसकी विधियाँ कौन-कौन सी हैं? उत्तम सीखना कब सम्भव होता है? इन सब प्रश्नों के उत्तर हमें मनोविज्ञान देता है और उसके आधार पर भिन्न-भिन्न स्तरों के बच्चों को भिन्न-भिन्न विषयों को पढ़ाने की कौन-कौन सी विधियों का निर्माण हुआ है? उनमें कौन सी विधियाँ उपयोगी हैं? और इन विधियों को अपनाते समय क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए? इन सबकी चर्चा शिक्षण कला एवं तकनीकी के अन्तर्गत की जाती है। अतः शिक्षाशास्त्र में इस सबका अध्ययन भी किया जाता है। नियोजित शिक्षा को चलाने के लिए हमें इस सबका अध्ययन करना ही होता है।

1.5.2 अध्ययन के विशिष्ट क्षेत्र:-

शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में अब नए-नए विषयों का विकास हो रहा है और उनका अध्ययन भी आवश्यक समझा जाता है। जैसे - शिशु शिक्षा, बालशिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्रीशिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, शिक्षक शिक्षा, पुस्तकालय संगठन, शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन, शिक्षण में दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग, शैक्षिक तकनीकी, शैक्षिक नियोजन, शैक्षिक वित्त, शैक्षिक मापन और मूल्यांकन, शैक्षिक सांख्यिकी और शिक्षा में अनुसंधान आदि। इस संदर्भ में हम यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझते हैं कि आज से कुछ वर्ष पहले तक इन सबका अध्ययन शिक्षा के इतिहास, शैक्षिक प्रशासन, शिक्षा मनोविज्ञान और शैक्षिक तकनीकी के अन्तर्गत ही किया जाता था, परन्तु अब से अलग-अलग विषयों के रूप में विकसित हो रहे हैं।

अपनी उन्नतिजानिए

- 7 एजुकेशन शब्द लैटिन भाषा के के शब्द से बना है।
- 8 शिक्षा वह है जो दिलाये। (जगद्गुरु शंकराचार्य)
- 9 के अनुसार, शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक अपनी आंतरिक शक्तियों को बाहर की ओर प्रकट करता है।
- 10 शिक्षा मनोविज्ञान मानवीय व्यवहार का परिस्थितियों में अध्ययन है।

1.6 सारांश

- i. शिक्षा, समाज में चलने वाली सीखने-सिखाने की सप्रयोजन प्रक्रिया है।
- ii. शिक्षा के अर्थ को विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर समझा जा सकता है जिनमें से प्रमुख हैं- शाब्दिक अर्थ, संकुचित अर्थ, व्यापक अर्थ, विश्लेषणात्मक एवं समग्र अर्थ।
- iii. शिक्षा का कार्य मानव एवं समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निर्धारित होता है।
- iv. शिक्षा के इस प्रकार चार प्रमुख कार्य हैं-सामान्य, मानवीय, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में कार्य।

- v. शिक्षाशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जिसमें शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप एवं उसके विभिन्न अंगों तथा समस्याओं का दार्शनिक, समाजशास्त्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोणों से अध्ययन किया जाता है।

1.7 शब्दावली

प्रौढ़ शिक्षा:- प्रौढ़ शिक्षा उन लोगों के लिए चलाया गया एक अभियान था, जो किसी कारण से शिक्षा से वंचित रह गये हैं। इसमें उम्र की सीमा का कोई बन्धन नहीं था।

तुलनात्मक शिक्षा- शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में भी विभिन्न देशों की शिक्षा प्रणालियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है और उनके गुणदोषों का विवेचन किया जाता है। इससे हम अपनी परिस्थितियों में अपने उपयोग की शिक्षा व्यवस्था का निर्माण करने में सफल होते हैं।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

- उत्तर 1 मां। उत्तर 2 व्यक्ति। उत्तर 3 व्यवहार में।
 उत्तर 4 जान ड्यूवी के अनुसार। उत्तर 5 पेस्टलॉजी के अनुसार। उत्तर 6 ओटावे के अनुसार।
 उत्तर 7 ब्राउन के अनुसार। उत्तर 8. एडूकेटम उत्तर 9. मुक्ति
 उत्तर 10. फ़ोबेल उत्तर 11. शैक्षिक

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. ए0के0चक्रवर्ती, प्रिंसीपल एण्ड प्रैक्टिस ऑफ एजुकेशन- आर0लाल बुक डिपो मेरठा।
2. पाल (डा0), गुप्त एवं मदन मोहन. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार,- न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद
3. त्यागी एवं पाठक, शिक्षा के सिद्धांत, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
4. चौबे एस0पी0 (डा0) एवं अखिलेश चौबे फिलोसोफिकल एण्ड सोशोलॉजिकल फाउण्डेशन ऑफ एजुकेशन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न-

1. शिक्षा से आप क्या समझते हैं? शिक्षा के संकुचित एवं व्यापक अर्थ को स्पष्ट करें।
2. शिक्षा के भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण का उल्लेख करते हुए अंतर स्पष्ट करें।
3. शिक्षा के विभिन्न कार्यों का विवेचन कीजिए।
4. शिक्षा के विषय विस्तार की रूप रेखा प्रस्तुत करें।
5. इनमें से प्रत्येक पर 100 शब्द लिखें-
 - (i) शिक्षा का शाब्दिक अर्थ।
 - (ii) शिक्षा के सामाजिक जीवन में कार्य।
 - (iii) शिक्षा मनोविज्ञान की विषयवस्तु।
 - (iv) शैक्षिक प्रशासन एवं संगठन।

इकाई-2- शिक्षा एक प्रणाली, प्रक्रिया एवं अनुशासन के रूप में (Education as a system, education as a process and education as a discipline)

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 शिक्षा प्रक्रिया के रूप में
 - 2.3.1 शिक्षा एक आजीवन प्रक्रिया
 - 2.3.2 शिक्षा विकास की प्रक्रिया
 - 2.3.3 शिक्षा संश्लिष्ट प्रक्रिया
- 2.4 शिक्षा एक द्वि घुवीय प्रक्रिया
 - 2.4.1 शिक्षा एक त्रि धुवीय प्रक्रिया
 - 2.3.2 शिक्षा एक सचेतन एवं सप्रयोजन प्रक्रिया
 - 2.4.3 शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया
 - 2.3.4 शिक्षा एक समाजीकरण प्रक्रिया
- 2.5.1 शिक्षा एक अनुशासन के रूप में
- 2.5.2 शाब्दिक अर्थ के आधार पर
- 2.4.2 परिभाषा के आधार पर
- 2.5.3 अध्ययन के उद्देश्य के आधार पर
- 2.6 सारांश
- 2.7 शब्दावली
- 28 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

मनुष्य की इस संसार में जन्म के साथ ही वातावरण से अनुकूलन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रक्रिया में मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों तथा प्रकृति प्रदत्त क्षमताओं में विकास होता है। इस

प्रक्रिया को ही शिक्षा कहते हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से शिक्षा सीखने-सिखाने, मानव की आन्तरिक शक्तियों को सन्तुलित रूप से बाहर निकालने और बाह्य शक्तियों का सुधार करने की सकारात्मक प्रक्रिया है। प्लेटो एवं अरविन्द जैसे दार्शनिक शिक्षा को उन्मूलन प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। सुविख्यात टी० रेमान्ट की दृष्टि में शिक्षा बालक के भौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक परिवेश में विकास की प्रक्रिया है। भारतीय मनीषियों ने शिक्षा को विद्या का पर्याय मानते हुये कहा है:- 'सा विद्या या विमुक्तये' विद्या वही है जो हमें मुक्ति के मार्ग पर ले जाये। इस प्रकार शिक्षा के अर्थ और आयाम विषयक विभिन्न धारणायें हैं। वस्तुतः शिक्षा ही विकास का साधन है। शिक्षा द्वारा न केवल व्यक्ति का वैयक्तिक विकास ही होता है, बल्कि सामाजिक विकास भी शिक्षा के ऊपर निर्भर करता है।

इस प्रकार शिक्षा एक व्यापक बहुआयामी अवधारणा है। जहाँ एक ओर यह अनुभव-आधारित ज्ञान का अक्षय भण्डार है वहीं दूसरी ओर वह एक सकारात्मक प्रक्रिया, सामाजिक परिवर्तन का सशक्त साधन तथा सुविकसित सुव्यवस्थित शास्त्र है।

इस इकाई में आप समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण के आधार पर शिक्षा को एक प्रक्रिया के रूप में समझने का प्रयास करेंगे साथ ही साथ शिक्षा को एक अनुशासन के रूप में भी जान सकेंगे।

2.2 उद्देश्य-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- शिक्षा को एक प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट कर सकेंगे।
- शिक्षा में सन्निहित विभिन्न प्रक्रियाओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर सकेंगे।
- शिक्षा को एक अनुशासन के रूप में समझ सकेंगे।
- शिक्षा के उद्देश्यों के प्रकाश में, एक अनुशासन के रूप में बता पाने में सक्षम हो सकेंगे।

2.3 शिक्षा प्रक्रिया के रूप में -

शिक्षा एक प्रक्रिया है। प्रक्रिया का तात्पर्य एक विशेष प्रकार की क्रिया अथवा ऐसी क्रिया से है, जिससे व्यक्ति के भीतर कुछ विशेषताएँ आ जाये। व्यक्ति के भीतर नैसर्गिक रूप से कुछ शक्तियाँ होती हैं। ये शक्तियाँ उसे जन्म से प्राप्त होती हैं। इसके अलावा बाह्य प्रकृति से भी कुछ शक्तियाँ (भौतिक एवं सामाजिक) उसे प्राप्त होती हैं। इन्हीं दोनों शक्तियों की प्रतिक्रिया-स्वरूप व्यक्ति आगे बढ़ता है। इसी प्रक्रिया को हम शिक्षा की प्रक्रिया कह सकते हैं। परिभाषा तौर पर कहा जा सकता है कि शिक्षा व्यक्ति की नैसर्गिक शक्तियों एवं भौतिक और सामाजिक शक्तियों के बीच होने वाली विशेष क्रिया है जो आनुवांशिकता व पर्यावरण की शक्तियों के बीच होती है, जिससे व्यक्ति ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त

करके सफल होता है। अतः ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त करने की प्रक्रिया को ही शिक्षा कहते हैं। ऐसी प्रक्रिया की कुछ विशेषताएँ हैं, जो निम्न प्रकार हैं -

2.3.1 शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है:-

ड्यूवी के विचार में शिक्षा और जीवन एक है। तात्पर्य यह है कि प्राणी जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त कुछ-न-कुछ सीखता ही रहता है। इसके फलस्वरूप वह कुछ नये अनुभव, नित्य ग्रहण करता रहता है और नये अनुभव न भी ग्रहण करे, तो भी पुराने अनुभवों में सुधार एवं परिष्कार करता रहता है, जिससे जीवन की परिस्थितियों में वह अधिक सफलता प्राप्त कर सके। इस प्रकार वह शिक्षा प्राप्त करता रहता है, जो समस्त जीवन में चलती रहती है। एडलर का कहना है कि “शिक्षा मनुष्य के शारीरिक और मानसिक दृष्टि से विकसित, स्वतंत्र और सचेतन मानव की ईश्वर के प्रति उत्कृष्ट अनुकूलन की निरन्तर प्रक्रिया है, जो मनुष्य के बौद्धिक, भावात्मक एवं इच्छा शक्ति से सम्बन्धित वातावरण में अभिव्यक्त होती है। सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्धित क्रिया है, यह केवल छोटे बालकों से ही सम्बन्धित नहीं होती। यह तो जन्म से आरम्भ होती है और मृत्यु तक चलती रहती है।”

2.3.2 शिक्षा विकास की प्रक्रिया है:-

शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक शक्तियों का विकास वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार होता है। हार्न के अनुसार:- “शिक्षा अन्दर से विकास होने को कहते हैं न कि बाहर से संचय को, वह तो स्वाभाविक मूलप्रवृत्तियों और रुचियों की क्रिया से होती है न कि बाह्य शक्तियों के प्रति अनुक्रिया स्वरूप।”

2.3.3 शिक्षा एक संश्लिष्ट प्रक्रिया है:-

आधुनिक विचारकों के अनुसार शिक्षा के द्वारा सभी पक्षों का समग्र विकास होता है न कि अलग-अलग। शिक्षा एक संश्लिष्ट प्रक्रिया है, जो शरीर, मन, संवेग और की समरूप वृद्धि का लक्ष्य रखती है। इसलिए एक उचित शिक्षा योजना में एक साथ और अन्तराव लम्बित वृद्धि के चारों पक्षों को होना चाहिए, तथ्यतः ये सब एक प्रणाली में ऐसे संश्लिष्ट होकर मिले हैं, जो एक-दूसरे से उपेक्षित या अलग नहीं किये जा सकते। स्पष्टत एक मनुष्य प्राणी के रूप में शरीर, मन, आत्मा, संवेगों एवं भावों का ऐसा मिश्रण है, जिसमें से किसी एक को दूसरे से अलग करना असम्भव है। अतः शिक्षा मनुष्य के वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया होने के नाते एक संश्लिष्ट प्रक्रिया होगी, यह पूर्णतया सत्य है।

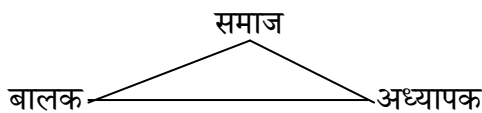
2. 4 शिक्षा एक द्विध्रुवीय प्रक्रिया है:-

जॉन ऐडम्स का विचार है कि शिक्षा के दो ध्रुव होते हैं:- एक ओर विद्यार्थी तथा एक ओर शिक्षिका। इस प्रक्रिया में विद्यार्थी सीखने वाला तथा शिक्षक सिखाने वाला होता है तथा दोनों ही इस प्रक्रिया में भाग लेते हैं। जॉन ड्यूवी ने भी शिक्षा के दो ध्रुव माने हैं एक मनोवैज्ञानिक तथा दूसरा

सामाजिक। मनोवैज्ञानिक अंग से उनका तात्पर्य सीखने वाले की रूचि, रूझान और शक्ति से है और सामाजिक अंग से उनका तात्पर्य सामाजिक पर्यावरण से है। रॉस का भी मत है कि “शिक्षा में चुम्बक के समान दो ध्रुवों का होना आवश्यक है इसीलिए यह द्विध्रुवीय प्रक्रिया है।”

2.4.1 शिक्षा एक त्रि-ध्रुवीय प्रक्रिया है:-

जॉन ड्यूवी शिक्षा को त्रिध्रुवीय प्रक्रिया बताते हुये इस प्रक्रिया के मनोवैज्ञानिक पक्ष को स्वीकारते हैं तथा वह समाज से अलग शिक्षा प्रक्रिया की कल्पना नहीं कर सकते। उनके मतानुसार इसमें तीन घटक काम करते है:- बालक, अध्यापक एवं सामाजिक शक्तियाँ। जॉन ड्यूवी के शब्दों में, प्रजाति की सामाजिक चेतना में भाग लेने से सभी तरह की शिक्षा प्राप्त होती है।



शिक्षा की त्रिध्रुवीय प्रक्रिया में तीन ध्रुव होते है इसे निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है:-

बालक को किन विषयों को पढ़ना है, उसे कौन-कौन से कौशल सिखाने है, किस प्रकार के विचार एवं अनुभव उसे प्रदान करने हैं:- इन सब का निर्णय समाज करता है। इस दृष्टि से पाठ्यचर्या की रचना करते समय समाज की आवश्यकताओं और माँगों को ध्यान में रखा जाता है, इसलिए कुछ शिक्षाविद शिक्षा की इस त्रिध्रुवीय प्रक्रिया में बालक, अध्यापक एवं पाठ्यचर्या को तीन ध्रुव पर रखते हैं। उनके मतानुसार, पाठ्यचर्या बालक और अध्यापक को एक-दूसरे के सम्पर्क में लाने का कार्य करती है इसे निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है:-



2.4.2 शिक्षा एक सचेतन एवं सप्रयोजन प्रक्रिया है:-

शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया उद्देश्य पूर्ण होती है। बासिंग के अनुसार:- “शिक्षा का कार्य व्यक्ति को उसके वातावरण से इस उद्देश्य से समायोजित करना है, जिससे कि व्यक्ति तथा समाज दोनों को अत्यधिक और दीर्घकालीन संतुष्टि प्राप्त हो सके।” जिसमें व्यक्ति एवं समाज दोनों का ध्यान रखा जायेगा, तो अवश्य ही शिक्षा सचेतन एवं सप्रयोजन होगी।

ब्राउन के अनुसार:- शिक्षा सचेतन रूप में नियंत्रित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाये जाते हैं और व्यक्ति के द्वारा समाज में परिवर्तन लाये जाते हैं।”

जॉन ऐडम्स के मतानुसार:- “शिक्षा एक सचेतन एवं विचार पूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें एक व्यक्तित्व दूसरे पर इसलिए प्रभाव डालता है कि दूसरे का विकास और परिवर्तन हो सके।”

इस विकास व परिवर्तन से व्यक्ति व समाज दोनों को लाभ होता है तथा इस प्रकार के लाभ को व्यक्ति और समाज ध्यान में रखते हैं व इसके प्रति सचेत रहते हैं।

2.4.3 शिक्षा गतिशील प्रक्रिया है:-

शिक्षा के द्वारा मनुष्य अपनी सभ्यता एवं संस्कृति में निरन्तर विकास करता है तथा इस विकास के लिए उसकी एक पीढ़ी अपने ज्ञान एवं कला-कौशल आदि को दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती है तथा इस प्रक्रिया के लिए प्रत्येक समाज विद्यालयी शिक्षा की व्यवस्था करता है इसीलिए समय विशेष की विद्यालयी शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधियाँ आदि सब निश्चित होते हैं तथा समाज में जैसे-जैसे परिवर्तन होते हैं, उसी प्रकार शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या तथा शिक्षण विधियों आदि में आवश्यकतानुसार परिवर्तन होता रहता है। यही शिक्षा की गतिशीलता है। बी0एन0 झा के अनुसार:- “शिक्षा एक प्रक्रिया है और एक सामाजिक कार्य है जो कोई समाज अपने हित के लिए करता है।”

शिक्षा केवल जीवन की तैयारी मात्र नहीं है,- “शिक्षा स्वयं ही जीवन है, जीवन का अर्थ विकास से है। विकास से गतिशीलता की भावना प्रकट होती है। अतः शिक्षा स्वयं ही गतिशील होती है अन्यथा व्यक्ति तथा समाज भी प्रगति नहीं कर सकते।”

शिक्षा की गतिशीलता टी0 रेमान्ट के शब्दों से भी स्पष्ट होती है:-

“शिक्षा विकास का वह प्रक्रम है, जिसमें व्यक्ति के शैशव से प्रौढ़ता तक की वह प्रक्रिया निहित है, जिसके द्वारा वह अपने को धीरे-धीरे विभिन्न विधियों से अपने भौतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक वातावरण के अनुकूल बनाता है।”

2.4.4 शिक्षा समाजीकरण की प्रक्रिया है:-

समाजीकरण से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा बालक की प्राकृतिक क्षमताओं का निरंतर विकास होता है तथा उसे सामाजिक जीवन के विविध आयामों से अवगत कराया जाता है।

हैविग हर्स्ट एवं न्यू गार्टन के अनुसार:- “समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बालक अपने समाज की स्वीकृत विधाओं को सीखते हैं तथा इन विधाओं (तौर-तरीकों) को अपने व्यक्तित्व का अंग बना लेते हैं।”

शिक्षा बालक-बालिकाओं के विकास में सहायक होती है वस्तुतः यह समाजीकरण की सशक्त प्रक्रिया है। समाज के अभाव में हम न तो भाषा सीख सकते हैं और न विचार करना। शिक्षा

की औपचारिक तथा अनौपचारिक विधायें और घटक समाजीकरण की प्रक्रिया में अपना योगदान देते हैं। किंग्ल यंग के अनुसार समाजीकरण के प्रमुख घटक निम्नलिखित हैं:- 01. परिवार, 02. क्रीड़ा-समूह, 03. पड़ोस, 04. जाति और वर्ग, 05. विद्यालय तथा अन्य, 06 प्रासंगिक समूह आदि।

अन्त में हम कह सकते हैं कि शिक्षा आजीवन चलने वाली एक ऐसी विचारपूर्ण प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक, सामाजिक, आध्यात्मिक आदि विकास सभ्यक रीति से होता है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति अपने व्यवहार में परिवर्तन और परिवर्द्धन लाता है, जिससे व्यक्ति, जाति, समाज और राष्ट्र तथा विश्व सभी का हित होता है।

2.5 शिक्षा एक अनुशासन के रूप में:-

मानव ने सदैव ही अपने अनुभवों को विभिन्न विषयों में बद्ध किया। इस प्रकार विज्ञान, दर्शन, कला और अन्य विषय बने। इन सबका अध्ययन 'शिक्षा' कहलाया। आधुनिक युग में शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, विधियाँ, मूल्यांकन एवं कार्यो इत्यादि की विस्तृत व्याख्या करने व उसकी समस्याओं के समाधान खोजने के लिए एक नया प्रयत्न शुरू हुआ, इस नये प्रयत्न ने नये अनुशासन को जन्म दिया जिसे शिक्षाशास्त्र कहते हैं। पहले यह सब कार्य दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र द्वारा होता था परन्तु आज यह एक स्वतन्त्र विषय के रूप में जाना जाता है। शिक्षाशास्त्र में उन सब विचारों एवं प्रयोगों का वर्णन होता है। जिन्होंने समय-समय पर शिक्षा को प्रभावित किया।

2.5.1 शब्दिक अर्थ के आधार पर:-

शिक्षाशास्त्र के शब्दिक अर्थ को देखा जाये तो स्पष्ट है कि शिक्षाशास्त्र दो शब्दों के योग से बना है शिक्षा और शास्त्र। शिक्षा का अर्थ बालक की अंतर्निहित शक्तियों को आगे बढ़ाना है चूंकि आगे बढ़ने की प्रक्रिया सीखने के द्वारा ही सम्भव है अतः शिक्षा को सीखने की प्रक्रिया कहा जा सकता है। शास्त्र का तात्पर्य विज्ञान से है क्योंकि शास्त्र विज्ञान का समानार्थी शब्द है और विज्ञान का अर्थ है किसी विषय या वस्तु का नियमबद्ध या क्रमबद्ध अध्ययन करना शास्त्र कहलाता है। शास्त्र शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'शास' धातु से हुई जिसका अर्थ है। शासन करना या नियंत्रण करना या नियमबद्ध करना। इस प्रकार शिक्षाशास्त्र एक ऐसा विषय है जिसमें सीखने एवं सिखाने से सम्बन्धित बातों का व्यवस्थित रूप से नियमपूर्वक अध्ययन किया जाता है। साथ ही इसमें शिक्षा की प्रक्रिया, स्वरूप, अंगों एवं समस्याओं का दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय, वैज्ञानिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टिकोणों से अध्ययन किया जाता है।

2.5.2 परिभाषा के आधार पर:-

चूंकि शिक्षाशास्त्र एक नवीन नव-विकसित विज्ञान है। अतः अभी तक इसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं की जा सकी फिर भी कुछ विद्वानों ने शिक्षाशास्त्र को निम्न प्रकार से परिभाषित करने

का प्रयास किया:-“शिक्षाशास्त्र जीवन लक्ष्यों की ओर समुचित ढंग से समायोजित जीवन के लिए निर्देशित, मनुष्य के सीखने-सिखाने तथा इसके संगठन की औपचारिक और अनौपचारिक क्रियाओं और प्रयत्नों का जैविक, शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक तथा व्यावसायिक संदर्भों के साथ व्यवस्थित अध्ययन है।”

इस प्रकार की परिभाषा में ‘शिक्षा’ का मूल और तात्विक अभिप्राय मिलता है, जिसके विचार से इसका सम्बन्ध मनुष्य की शारीरिक, भावात्मक, बौद्धिक क्षमताओं और सृजनात्मक क्रियाओं से होता है, जो कि मनुष्य प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण और स्थितियों में क्रिया-प्रतिक्रिया स्वरूप करता है और इसके परिणामस्वरूप वैयक्तिक एवं सामाजिक दृष्टि से जीवन के विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति करता है।

2.5.3 शिक्षाशास्त्र के अध्ययन के उद्देश्य के आधार पर:-

शिक्षाशास्त्र के निम्नांकित उद्देश्य परिलक्षित होते हैं:-

1. मानव प्रकृति, रचना, तत्सम्बन्धी वृद्धि एवं विकास की ओर इनसे सम्बन्धित सभी समस्याओं को समझना तथा उपयुक्त उपागमों का पता लगाना, उन्हें प्रयोग करना, जिससे कि समस्याओं का समाधान हो और अच्छे ढंग का समायोजन हो।
2. मानव के आत्म को जानना तथा उसे अपनी विभिन्न शक्तियों को जानने-पहचानने और विभिन्न प्रकार की क्रियाशीलताओं में प्रयोग करने में सहायता करना।
3. मानव को अन्य मानवों के साथ रहते हुए सभी सम्बन्धों को सार्थक ढंग से समझने में सहायता देना। और समूह निर्माण के लिए तैयार करना।
4. व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को जानकर उचित रूप से सम्बन्धों का परिचालन करना तथा उन सम्बन्धों के आधार पर अनुकूल व्यवहार करने की क्षमता प्राप्त करना।
5. समाज के सम्बन्धों की प्रकृति, सामाजिक संरचना और उसके संगठन को समझना, जिससे कि समाज के सदस्यों में सामंजस्य और समरसता की वृद्धि हो।
6. मानव को उसके समूह की संस्कृति से तथा उसे प्राप्त करने, ग्रहण और धारण करने, भूत और वर्तमान काल में उसके अनुकूल जीवन यापन करने में तथा भविष्य में दूसरे के लिए विरासत रूप में छोड़ने में किये गए प्रयत्नों से परिचित कराना।
7. प्रगतियुग समय और युग की माँग के अनुसार आवश्यक मानवीय मूल्यों, सद्गुणों विशेषताओं आदि को समझना, परखना, निर्धारित करना तथा स्थापित करने में प्रयत्नशील होना।

8. भूत और वर्तमान काल में विभिन्न देशों की शैक्षिक प्रणालियों तथा ऐतिहासिक दृष्टि से होने वाली शैक्षिक प्रगति के विकास को जानना तथा जनसाधारण और युग की माँगों को पूरा करना, इसे करने के लिए उत्तम परिणामों के हेतु, सुधार एवं संशोधन के लिए प्रयत्न करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों को उन परिप्रेक्ष्यों के साथ बताया गया है, जिसकी ओर शिक्षाशास्त्र की परिभाषा में संकेत किया जाता है। इस विचार से शिक्षाशास्त्र के अंतर्गत हम बालक के जैविक, शारीरिक, बौद्धिक तथा शैक्षिक विकास का अध्ययन करते हैं। वस्तुतः यह समाजीकरण की सशक्त प्रक्रिया है। समाज के अभाव में हम न तो भाषा सीख सकते हैं और न विचार कर सकते हैं। शिक्षा की औपचारिक तथा अनौपचारिक विधायें और घटक समाजीकरण की प्रक्रिया में अपना योगदान देते हैं। किंबल यंग के अनुसार समाजीकरण के प्रमुख घटक निम्नलिखित हैं:- 01 परिवार, 02 क्रीडा-समूह, 03 पड़ोस, 04 जाति और वर्ग, 05 विद्यालय तथा अन्य, 06 प्रासंगिक समूह आदि।

अन्त में हम कह सकते हैं कि शिक्षा आजीवन चलने वाली एक ऐसी विचारपूर्ण प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक, सामाजिक, आध्यात्मिक आदि विकास सभ्यक रीति से होता है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति अपने व्यवहार में परिवर्तन और परिवर्द्धन लाता है, जिससे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र तथा विश्व सभी का हित होता है।

अभ्यास प्रश्न

1. शिक्षा..... से प्रारम्भ होती है और तक चलती रहती है
2. ड्यूवी के अनुसार, शिक्षा एक..... प्रक्रिया है।
3. शिक्षा केवल की तैयारी मात्र नहीं है।
4. शिक्षा अन्य विषयों की भांति ही एक है।

2.6 सारांश :-

- i. शिक्षा, सीखने-सिखाने, मानव की आंतरिक शक्तियों को संतुलित रूप से बाहर निकालने और बाह्य शक्तियों का सुधार करने की सकारात्मक प्रक्रिया है।
- ii. शिक्षा की द्वि ध्रुवीय प्रक्रिया में विद्यार्थी एवं शिक्षक सम्मिलित हैं वहीं जॉन ड्यूवी के शब्दों में शिक्षा को त्रिध्रुवीय प्रक्रिया मानते हुए तीसरे ध्रुव के रूप में समाज को स्वीकारते हैं।
- iii. कुछ शिक्षाविदों के अनुसार शिक्षा की त्रि ध्रुवीय प्रक्रिया में बालक, अध्यापक एवं पाठ्यचर्या को तीन ध्रुवों पर रखते हैं।

-
- iv. शिक्षा को एक समाजीकरण की प्रक्रिया मानते हुए यह स्पष्ट करते हैं कि इसके द्वारा बालक की प्राकृतिक क्षमताओं का सम्यक विकास होता है तथा उसे सामाजिक जीवन के विविध आयामों से अवगत कराया जाता है।
- v. आधुनिक युग में शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, विधियाँ, मूल्यांकन एवं कार्यों इत्यादि की विस्तृत व्याख्या करने व उसकी समस्याओं के समाधान खोजने के लिए एक नया प्रयत्न शुरू हुआ, इस नये प्रयत्न ने नये अनुशासन को जन्म दिया जिसे शिक्षाशास्त्र कहते हैं।
-

2.7 शब्दावली :-

शिक्षा गतिशील प्रक्रिया है:- शिक्षा के द्वारा मनुष्य अपनी सभ्यता एवं संस्कृति में निरन्तर विकास करता है तथा इस विकास के लिए उसकी एक पीढ़ी अपने ज्ञान एवं कला-कौशल आदि को दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती है

समाजीकरण:- “समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बालक अपने समाज की स्वीकृत विधाओं को सीखते हैं तथा इन विधाओं (तौर-तरीकों) को अपने व्यक्तित्व का अंग बना लेते हैं।”

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:-

1. जन्म, मृत्यु
अनुशासन,
 2. त्रिधुवीय
 3. जीवन
 - 4.
-

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. चक्रवर्ती, ए0के0. प्रिंसीपल एण्ड प्रैक्टिस ऑफ एजुकेशन- आर0लाल बुक डिपोमेण्ट।
 2. पाल, गुप्त (डॉ) एवं मदन मोहन शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार,- न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद
 3. त्यागी एवं पाठक, शिक्षा के सिद्धांत, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
 4. चौबे, एस.पी.(डॉ) एवं अखिलेश चौबे, फिलोसोफिकल एण्ड सोशोलॉजिकल फाउण्डेशन्स ऑफ एजुकेशन- विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
-

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न-

1. “शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन भर चलती रहती है” इस कथन की उदाहरण सहित विवेचना कीजिए।
 2. शिक्षा की द्विधुवीय प्रक्रिया एवं त्रिधुवीय प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए। “शिक्षा केवल जीवन की तैयारी मात्र नहीं है” इस कथन की व्याख्या कीजिए।
 3. शिक्षा को एक अनुशासन के रूप में परिभाषित कीजिए।
-

4. इनमें से प्रत्येक पर लगभग 100 शब्द लिखें-

- | | |
|----------------------------------|-------------------------------|
| 1. शिक्षा एक संश्लिष्ट प्रक्रिया | 2. शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया |
| 3. शिक्षा एक अनुशासन | 4. शिक्षा के उद्देश्य |

इकाई-3- शिक्षा के उद्देश्य- वैयक्तिक उद्देश्य, सामाजिक उद्देश्य एवं प्रजातांत्रिक उद्देश्य (Aims of Education- Individual Aims and Social Aims including Democratic Aims)

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 शिक्षा के उद्देश्यों की आवश्यकता
 - 3.3.1 शिक्षा का वैयक्तिक उद्देश्य
- 3.4 शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य
 - 3.4.1 वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्य में समन्वय
 - 3.4.2 भारतवर्ष की शैक्षिक आवश्यकतायें
- 3.5 आधुनिक प्रजातांत्रिक भारत के शैक्षिक उद्देश्य
 - 3.5.1 प्रजातंत्रीय भारत के समाज सम्बन्धी शैक्षिक उद्देश्य
 - 3.5.2 लोकतंत्रीय भारत के राष्ट्र सम्बन्धी शैक्षिक उद्देश्य
- 3.6 सारांश
- 3.7 शब्दावली
- 3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना :-

शिक्षा' समाज की आधारशिला है। समाज में जिस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था होगी, उसी प्रकार के समाज का निर्माण होगा। अतः इस बात का सदैव प्रयत्न किया गया है कि शिक्षा के उद्देश्य समाज के उद्देश्यों के अनुकूल हों। परन्तु केवल सामाजिक कारक ही शिक्षा के लक्ष्यों या उद्देश्यों को प्रभावित नहीं करते। व्यक्ति भी चेतन या अचेतन रूप से शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करते हैं। प्रत्येक समाज में शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ-साथ व्यक्ति तथा समाज की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं, मूल्यों आदि को आधार बनाकर किया जाता है। व्यक्ति व समाज में अपेक्षाकृत कौन अधिक महत्वपूर्ण है यह एक विवादग्रस्त विषय है। कुछ विद्वानों

के अनुसार व्यक्ति ने समाज की रचना अपने कल्याण के लिए की है इसलिए समाज को व्यक्ति के विकास में सहायक होना चाहिए। इसके विपरीत कुछ विद्वान निःसमाज व्यक्ति की कल्पना ही नहीं करते। उनका कहना है कि समाज से अलग व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं होता, प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह समाज के लिए अपने आपको न्यौछावर करे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों, तथा उनकी परस्पर निर्भरता के बारे में जान सकेंगे, साथ ही हमारे प्रजातान्त्रिक देश की शिक्षा के स्वरूप से भी भली-भांति अवगत हो सकेंगे।

3.2 उद्देश्य :-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्य परस्पर समन्वित है, बता सकेंगे।
- प्रजातान्त्रिक समाज में शिक्षा की आवश्यकता की व्याख्या करने में समर्थ हो सकेंगे।
- वर्तमान शिक्षा में अपेक्षित सुधारात्मक उपाय सुझा पाने में सक्षम हो सकेंगे।

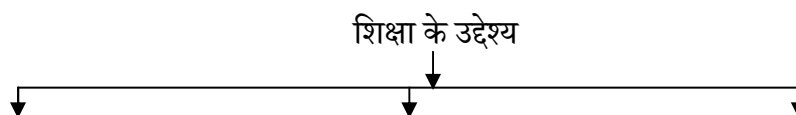
3.3 शिक्षा के उद्देश्यों की आवश्यकता :-

शैक्षिक उद्देश्य आदर्श या वांछित दिशा की ओर संकेत मात्र है।

जान ड्यूवी के अनुसार - “ उद्देश्य एक पूर्व दर्शित लक्ष्य है जो किसी क्रिया को संचालित करता है अथवा व्यवहार को प्रेरित करता है।”

अच्छा उद्देश्य वह है जो जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से सम्बन्धित होता है। शिक्षा जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है अच्छे उद्देश्य गतिशील होते हैं, ताकि जीवन की बदलती हुई परिस्थिति के अनुकूल उनमें परिवर्तन किया जा सके। जीवन की बदलती परिस्थिति में शिक्षा के द्वारा सामंजस्य बनाकर उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है।

शिक्षा के उद्देश्यों का वर्गीकरण - शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करने से शिक्षा लक्ष्यहीन होने से बच जाती है। उद्देश्य ही शिक्षण -विधि, पाठ्य सामग्री आदि के निर्धारण करने में सहायक सिद्ध होते हैं। युग की अपेक्षाओं व आवश्यकताओं के अनुसार उद्देश्य एवं लक्ष्यों का निर्धारण किया जाना चाहिए शिक्षा का उद्देश्य केवल विद्या ग्रहण करने से ही नहीं है बल्कि उसका सम्बन्ध बालक के व्यक्तिगत, सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन से है। शिक्षा के उद्देश्यों के अन्तर्गत निम्नलिखित उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है -



3.3.1 शिक्षा का वैयक्तिक उद्देश्य-

आधुनिक मनोविज्ञान की प्रगति के साथ ही शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य पर विशेष रूप से बल दिया जाने लगा है। इसके समर्थकों में रूसों, फ्राबेल, पेस्टालाजी व नन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नन के अनुसार - “ शिक्षा को ऐसी दशायें उत्पन्न करनी चाहिए, जिनसे वैयक्तिकता का पूर्ण विकास हो सके और व्यक्ति, मानव जीवन को अपना मौलिक योगदान दे सके।”

रॉस के अनुसार “ शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य का अर्थ जो हमारे स्वीकारने के योग्य है, वह केवल यह है - महत्वपूर्ण व्यक्तित्व तथा आध्यात्मिक वैयक्तिकता का विकास। शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य के दो रूप हैं पहला आत्माभिव्यक्ति तथा दूसरा आत्मानुभूति।

1. **आत्माभिव्यक्ति का उद्देश्य** - यदि वैयक्तिक विकास को ही अतिवादी रूप से देखें तो शिक्षा का उद्देश्य आत्माभिव्यक्ति है। वे आत्मप्रकाशन पर मुख्य रूप से बल देते हैं चाहे इससे दूसरों को फायदा न ही पहुंचता हो। एक पक्ष से आत्मप्रकाशन से स्वतन्त्र रूप से विकसित होने का अवसर मिलता है परन्तु इससे पाशविक प्रवृत्तियों के विकसित होने की सम्भावना रहती है।
2. **आत्मानुभूति का उद्देश्य**- यह उद्देश्य आत्माभिव्यक्ति से भिन्न है। इसमें ‘स्व’ का अभिप्राय है “जैसा मैं उसका होना चाहता हूँ” आत्माभिव्यक्ति में ‘स्व’ व्यक्ति का ‘मूर्त स्व’ है जबकि आत्मानुभूति में ‘स्व’ वह ‘आदर्श स्व’ है।
एडम्स के अनुसार-“आत्मानुभूति के आदर्श में ‘स्व’ समाज विरोधी व्यवहार करके अपनी अनुभूति नहीं कर सकता है।”
इस प्रकार आत्मानुभूति के उद्देश्य में समाज व सामाजिक वातावरण के महत्व को स्वीकार किया जाता है।
3. **वैयक्तिक उद्देश्य के पक्ष में तर्क**:- इस उद्देश्य के पक्ष में निम्नांकित तर्क दिये जा सकते हैं:-
 - i. प्रजातन्त्र, व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर बल देता है, इसलिए शिक्षा का उद्देश्य - व्यक्ति का विकास होना चाहिए।
 - ii. मनुष्य के स्वतन्त्र प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप ही समाज में उत्कृष्ट जन्म लेता है। अतः शिक्षा का उद्देश्य - मनुष्य का हित एवं विकास होना चाहिए।
 - iii. प्रत्येक समाज की सभ्यता व संस्कृति को उन्नति की ओर व्यक्ति ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ले जाते हैं। अतः शिक्षा में वैयक्तिक विकास को महत्व देना चाहिए।
 - iv. समाज का निर्माण, व्यक्ति अपने हित के लिए करते हैं। अतः शिक्षा का उद्देश्य - व्यक्ति का विकास होना चाहिए।
 - v. मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों को महत्व देना चाहिए न कि उस पर समाज के आदर्शों को लादना चाहिए।

नन के अनुसार:-“वैयक्तिकता जीवन का आदर्श है। शिक्षा की किसी भी योजना का महत्व उसकी उच्चतम वैयक्तिक श्रेष्ठता का विकास करने की सफलता से आँका जाना चाहिए।”

4. वैयक्तिक उद्देश्य के विपक्ष में तर्क:- आत्मानुभूति के रूप में शिक्षा का वैयक्तिक उद्देश्य उचित प्रतीत होता है, परन्तु केवल आत्माभिव्यक्ति को बढ़ावा देने पर निम्न प्रकार के दोषों के होने की सम्भावना बनती है:-

- i. व्यक्तिवाद को प्रोत्साहन:- शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य, व्यक्तिवाद को प्रोत्साहन देते हैं। जिसके फलस्वरूप, समाज को कई दुष्परिणाम झेलने पड़ते हैं।
- ii. समाजवाद का शत्रु:-व्यक्तिवाद, समाजवाद का विपरीत है जिसके कारण हमारे देश में शिक्षा के इस अतिवादी दृष्टिकोण को अपनाना सम्भव नहीं है।
- iii. सामाजिक विघटन:-वैयक्तिक उद्देश्य व्यक्ति को प्रत्येक प्रकार की स्वतन्त्रता देने के पक्ष में है जिससे सामाजिक उद्देश्यों की अनदेखी सम्भव है जिससे सामाजिक विघटन की सम्भावना है।
- iv. वास्तविक जीवन के लिए अव्यवहारिक:-यह सम्भव नहीं है कि वैयक्तिक उद्देश्य को महत्व देते हुये प्रत्येक छात्र के वैयक्तिक विकास के लिए विशेष प्रकार के पाठ्यक्रम एवं विशेष स्कूल की व्यवस्था की जाये।
- v. नैतिक गुणों की उपेक्षा -शिक्षा का वैयक्तिक उद्देश्य आत्म-प्रदर्शन की धारणा पर आधारित है जिसके नीचे के अनुसार व्यक्ति को अपनी इच्छाशक्ति के अलावा और किसी भी नैतिकता को स्वीकार किये बिना अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना चाहिए। ऐसी दशा में प्रेम, दया, सहानुभूति, बलिदान आदि नैतिक गुणों की उपेक्षा होना आवश्यक है।
- vi. मनुष्य के सामाजिक स्वरूप की उपेक्षा -यह बात सही है कि व्यक्ति ने समाज का निर्माण अपने हित के लिए किया है और समाज को उसके वैयक्तिक विकास में सहायक होना चाहिए पर इस सम्बन्ध में विचारणीय है कि समाज तो एक अदृश्य विचार है उसके प्रत्यक्ष अंग व्यक्ति ही है और जब तक इन व्यक्तियों में सामाजिक भावना (प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, दया, क्षमा, सहनशीलता आदि) नहीं होगी तब तक समाज से व्यक्ति को कोई लाभ नहीं हो सकता।

रॉस के अनुसार -“ सामाजिक पर्यावरण से अलग वैयक्तिकता का कोई मूल्य नहीं है और व्यक्तित्व अर्थहीन शब्द है, क्योंकि इसी में इसको विकसित और कुशल बनाया जाता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वैयक्तिकता का विकास -एक उत्तम उद्देश्य है परन्तु शिक्षा को वैयक्तिक विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास का उद्देश्य भी रखना चाहिए।

3.4 शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य: -

शिक्षा के सामाजिक - उद्देश्य के अनुसार समाज या राज्य का स्थान व्यक्ति से बहुत ऊँचा है। समाज के हित में ही व्यक्ति का हित है। समाज में रह कर ही व्यक्ति अपनी आवश्यकतायें पूर्ण कर सकता है, अपना विकास कर सकता है तथा उन्नति के पथ पर आगे बढ़ सकता है। अतः व्यक्ति को अपने हित का ध्यान न रखकर समाज के हित का ध्यान रखना चाहिए तथा आवश्यकता पड़ने पर समाज के लिए हर प्रकार के बलिदान को तैयार रहना चाहिए।

प्रो० बागले एवं ड्यूवी सामाजिक विकास से तात्पर्य सामाजिक कुशलता से लेते हैं, जिसके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य - प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक रूप से कुशल बनाना है, जिसके कारण वह स्वयं का जीवनयापन कर पाने में सक्षम होता है तथा अच्छे नागरिक के गुणों का निर्वाह करता है, जिससे वह देश व समाज की समस्याओं को समझकर सामूहिक क्रियाओं में अपना योगदान दे पाने में सक्षम होता है।

1. शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य का सामान्य रूप - इसके अन्तर्गत सामाजिकता व सहयोग की भावना को बल मिलता है, जो जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करने के लिए आवश्यक है। रेमाण्ट के अनुसार - “ समाज विहीन व्यक्ति कोरी कल्पना है।”

व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी बने रहने हेतु अपनी वैयक्तिकता को कुछ सीमा तक सामाजिक आवश्यकताओं के अधीन रखना पड़ता है तथा स्वयं में कुछ परिवर्तन लाने पड़ते हैं जिनसे चेतन एवं अचेतन रूप से उसकी वैयक्तिकता का दमन होता ही है।

2. शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य का अतिवादी रूप- इसके समर्थकों के अनुसार राज्य, व्यक्ति एवं उसकी आकांक्षाओं से बहुत श्रेष्ठ है अतः राज्य को व्यक्ति से सम्बन्धित सभी बातों पर अधिकार होना चाहिए।

अतः यह निश्चय करना कि व्यक्ति की शिक्षा के विषय व विधियाँ क्या हो या यह राज्य का कार्य है तथा ऐसा करते समय राज्य की आवश्यकताओं का ध्यान रखना जाना चाहिए।

3. शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य का उदार रूप - इस प्रकार की शिक्षा के विचार में सामाजिक हित का ध्यान रखा जाता है तथा विभिन्न विषयों एवं सामाजिक कार्यों द्वारा छात्रों को नागरिकता की शिक्षा दी जाती है।

शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के पक्ष में तर्क -

- i. मनुष्य का जन्म, विकास व पोषण समाज में होता है तथा समाज ही उसकी सब आवश्यकताओं को पूर्ण करता है। समाज से अलग उसका जीवन असम्भव है अतः उसे समाज के लिए सब कुछ न्यौछावर के लिए तैयार रहना चाहिए।
- ii. समाज सभ्यता व संस्कृति को जन्म देता है व उसका पोषण करता है तथा मानव की पाशविक प्रवृत्तियों का दमन कर सामाजिक पर्यावरण के अनुकूल बनाता है अतः शिक्षा में सामाजिक हित पर बल दिया जाना आवश्यक है।

- iii. समाज में रहकर मनुष्य अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर एक-दूसरे से विचारों एवं भावनाओं का आदान-प्रदान करता है जिसके फलस्वरूप उसकी विभिन्न शक्तियों का विकास होता है।
- iv. समाज, मनुष्य को एकाकी जीवन से सामूहिकता की ओर अग्रसर करके उसे नई-2 खोजें एवं अविष्कार करने का अवसर प्रदान करता है जिससे कि उसका जीवन उत्तम बनता है अतः उसे समाज के कल्याण की भावना से सराबोर होना चाहिए।

शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के विपक्ष में तर्क-

- i. अमनोवैज्ञानिक आधार - इस उद्देश्य में बालकों की व्यक्तिगत रुचियों, प्रवृत्तियों व योग्यताओं के लिए कोई स्थान नहीं है, बल्कि यह समस्त प्राणियों को एक ही सांचे में ढालना चाहते हैं, जिससे उनका स्वाभाविक विकास कुंठित हो सकता है।
- ii. मनुष्य -साध्य को प्राप्त करने का साधन - शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के अनुसार मनुष्य केवल साधन मात्र है जिसके प्रयोग से समाज के साध्य को प्राप्त किया जाता है। इसमें यदि सामाजिकता का अर्थ व्यक्ति को राष्ट्र के लिए तैयार करने से लिया जाये तो वह केवल राजनैतिक दृष्टि से ही तैयार होता है व अन्य दृष्टियों से पीछे रह जाता है।
- iii. एकांगी शिक्षा - सामाजिक उद्देश्य जिस शिक्षा का समर्थन करता है, वह एकांगी है। इस शिक्षा में नागरिकता और समाज सेवा की शिक्षा के लिए कोई स्थान नहीं है। ये उनको केवल आज्ञाकारी व्यक्तियों के रूप में राजनीतिक क्षेत्र के लिए तैयार करती है। परिणामतः उनका मानसिक, सौन्दर्यात्मक, चारित्रिक, एवं आध्यात्मिक विकास नहीं हो पाता है।
- iv. व्यावसायिकों का निर्माण - शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य, सामाजिक हितों को ध्यान में रखकर व्यक्तियों को विभिन्न व्यवसायों की शिक्षा देना है, इससे समाज की आवश्यकतायें तो पूरी हो जाती है पर मनुष्य के व्यक्तित्व का धार्मिक, आध्यात्मिक, कलात्मक और सौन्दर्यात्मक विकास नहीं हो पाता। हार्न का कथन है - 'ऐसी शिक्षा अन्ततः कुशल व्यावसायिकों का निर्माण करती है पर यह शिक्षा धार्मिक व आध्यात्मिक अनुभव को कोई महत्व नहीं देती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य को उग्र रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। व्यक्ति का जीवन केवल समाज, देश या राष्ट्र के लिए ही नहीं वरन् अपने लिए भी है।

3.4.1 वैयक्तिक व सामाजिक उद्देश्यों में समन्वय -

शिक्षा के वैयक्तिक व सामाजिक उद्देश्यों के बारे में विवाद का कारण वह विचारधारा है, जिसके अनुसार व्यक्ति व समाज को एक दूसरे- का विरोधी माना गया है। इस विचारधारा की अतिवादिता से समाज व व्यक्ति दोनों को ही समय-समय पर हानि उठानी पड़ती है।

इसका निदान करने लिए आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों का समन्वय किया जाये क्योंकि यह दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि व्यक्ति एवं समाज

दोनों अपनी प्रगति के लिए एक दूसरे के सहारे पर निर्भर हैं। न ही व्यक्ति-विहीन समाज की कल्पना की जा सकती है, न ही समाज -विहीन व्यक्ति की। रॉस के कथनानुसार- यह स्पष्ट है कि मनुष्य की वैयक्तिकता और व्यक्तित्व का विकास केवल समाज में ही हो सकता है उससे अलग रहकर नहीं। मैकाइवर का कहना है कि “समाजीकरण और वैयक्तिकरण - एक ही प्रक्रिया के दो पहलू हैं।”

अतः यह स्पष्ट ही है कि शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों में विरोध नहीं बल्कि समन्वय ही है। अतः प्रश्न यह उठता है कि समन्वय के अनुसार शिक्षा का रूप कैसा होना चाहिए? हमें ऐसी शिक्षा व्यवस्था करनी चाहिए, जिसमें न तो समाज व्यक्ति को अपना दास बना सके और न ही व्यक्ति इतना स्वतन्त्र हो सके कि वह सामाजिक नियमों को टुकरा कर अपनी मनमानी कर सके। इस शिक्षा व्यवस्था में व्यक्ति और समाज की स्वतन्त्रता ऐसी सीमाओं में रहनी चाहिए, जिससे दोनों का विकास व कल्याण हो सके।

3.4.2 भारतवर्ष की शैक्षिक आवश्यकतायें-

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत ने अपने को ‘गणराज्य’ में परिवर्तित किया और अपना ध्येय ‘एक समाजवादी राज्य’ की स्थापना रखा है। उक्त आदर्श की प्राप्ति के संदर्भ में देश में प्रदान की जाने वाली शिक्षा का उद्देश्य भी इसी के अनुरूप होना चाहिए। भारतवर्ष की मुख्य रूप से शैक्षिक आवश्यकतायें निम्नलिखित हैं:

1. शिक्षा द्वारा नागरिकों में ऐसी आदतों, अभिरूचियों और चारित्रिक गुणों का विकास किया जाये, जिससे वे अपने उत्तरदायित्वों को भली प्रकार निभा सकें व उन प्रवृत्तियों को रोक सकें, जो राष्ट्रीयता व धर्मनिरपेक्षता के लिए बाधक है।
2. भारत साधन सम्पन्न है परन्तु अधिकांश जनसंख्या दरिद्रता की स्थिति में है। अतः आवश्यक है कि शिक्षा द्वारा लोगों की उत्पादन शक्ति का विकास किया जाये। राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि की जाये व इस प्रकार लोगों के रहन सहन के स्तर को ऊँचा उठाया जाये।
3. भारत में अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित तथा जीविकोपार्जन की समस्या से ग्रसित है जिसके कारण सांस्कृतिक विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षा पद्धति में इस प्रकार सुधार किया जाये कि वह सांस्कृतिक पुनरूत्थान में योगदान दे सके।

3.5 आधुनिक प्रजातान्त्रिक भारत के शैक्षिक उद्देश्य

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में कई शिक्षा आयोगों ने जनतन्त्रायी भारत के लिए शिक्षा के उद्देश्य बताये हैं, जो कि निम्न प्रकार हैं:-

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के अनुसार:- “स्वयं प्रजातन्त्र का जीवन सामान्य, व्यवसायिक और जीविकोपार्जन सम्बन्धी शिक्षा के सर्वोच्च स्तर पर निर्भर है। अतः हमारे समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विश्वविद्यालयों का कार्य होना चाहिए- विवेक का विस्तार,

नये ज्ञान के लिए अधिक इच्छा, जीवन के अर्थ को जानने के लिए अधिक प्रयास और व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था।”

माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार:- “शिक्षा व्यवस्था को आदतों, दृष्टिकोणों और चरित्र के गुणों के विकास में योग देना पड़ेगा, जिससे कि नागरिक जनतन्त्रीय नागरिकता के दायित्वों का योग्यता से निर्वाह करें और उन ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों का विरोध कर सकें, जो व्यापक और राष्ट्रीय धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण के विकास में बाधक हैं।”

शिक्षा आयोग के अनुसार:- “प्रजातन्त्र में व्यक्ति स्वयं साम्य है और इसलिए शिक्षा का प्रमुख कार्य-उसको अपनी शक्तियों के पूर्ण विकास के लिए अधिक से अधिक अवसर प्रदान करना है।”

आधुनिक लोकतन्त्रीय भारत में व्यक्ति से सम्बन्ध रखने वाले शिक्षा के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं:-

1. शारीरिक विकास का उद्देश्य
2. मानसिक विकास का उद्देश्य
3. चारित्रिक विकास का उद्देश्य
4. आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य
5. सांस्कृतिक विकास का उद्देश्य
6. व्यक्तित्व विकास का उद्देश्य
7. व्यावसायिक कुशलता की उन्नति एवं जीवन यापन की कला में दीक्षा

उपरोक्त उद्देश्यों का विशद वर्णन प्रश्न संख्या (1) में किया जा चुका है। उपरोक्त उद्देश्यों के सम्बन्ध में डा० राधाकृष्णन ने लिखा है:- “हमें युवकों को यथासम्भव सर्वोत्तम प्रकार के सर्वकार्यकुशल उन्हें शिष्टाचार और सम्मान के अलिखित नियमों को अपनी इच्छा से मानना व सीखना चाहिए।”

3.5.1 प्रजातन्त्रीय भारत के समाज-सम्बन्धी शैक्षिक उद्देश्य:-

तत्कालीन भारत का आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक वातावरण अनाचार अविश्वास, असहिष्णुता, भ्रष्टाचार और अनेक कुरीतियों का शिकार है। ऐसी स्थिति में समाजवादी राज्य की स्थापना का स्वप्न तभी साकार हो जाता है। जब शिक्षा द्वारा निम्नलिखित सामाजिक परिवर्तन किये जायें।

1. **समाजवादी समाज की स्थापना:-** भारत वर्ष का अन्तिम उद्देश्य देश में समाजवादी शासन की स्थापना करना है ऐसे समाज की विशेषताएँ होती हैं - असमानता की भावना का अभाव, स्वस्थ और सुखी जीवन व्यतीत करने के अवसर, शारीरिक एवं आर्थिक सुरक्षा आदि।
उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति में शिक्षा उल्लेखनीय भूमिका निभा सकती है तथा व्यक्तियों में समाजवाद की भावना को स्थायी रूप प्रदान कर सकती है। इस सम्बन्ध में अपने विचारों

को व्यक्त करते हुये जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है:- “मैं समाजवादी राज्य में विश्वास करता और मैं चाहता हूँ कि शिक्षा का इस उद्देश्य की ओर विकास किया जाए।”

2. **सामाजिक बुराइयों का अन्त:-** भारतीय समाज में उपस्थित विभिन्न बुराइयों जैसे - जाति प्रथा, जनसंख्या वृद्धि आदि का अन्त शिक्षा द्वारा ही सम्भव है।
3. **सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का समावेश:-** व्यक्तियों को सबके साथ मिलकर सामाजिक जीवन को नैतिक व भौतिक दृष्टिकोण से अधिक अच्छा बनाने का उत्तरदायित्व लेना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति स्कूलों को सामुदायिक जीवन की इकाइयाँ बनाकर किया जा सकता है।
4. **जन-शिक्षा की व्यवस्था:-**शिक्षित व्यक्ति ही उचित प्रतिनिधियों को चुनकर देश की प्रगति में योग दे सकता है। परन्तु जिस देश में इतनी अशिक्षा है। वहाँ किस प्रकार जनतन्त्र सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है।
अतः शिक्षा की व्यवस्था सभी व्यक्तियों और प्रत्येक घर घर के लिए की जानी चाहिए।
5. **नेतृत्व के गुणों का विकास:-**लोकतन्त्र का अर्थ है:- “सबसे बुद्धिमान निर्वाचित नागरिकों के नेतृत्व में सबकी प्रगति।” अतः शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य, व्यक्तियों में नेतृत्व के गुणों का विकास करना है।
6. **लोकतन्त्रीय नागरिकता का विकास :-** लोकतन्त्र में नागरिकता हेतु-विभिन्न मानसिक, सामाजिक एवं नैतिक गुणों की आवश्यकता होती है। इनका प्रशिक्षण शिक्षा द्वारा किया जा सके। इस सम्बन्ध में प्रथम आवश्यकता यह है कि नागरिक में स्पष्ट रूप से विचार करने की क्षमता हो जिससे वह सत्य-असत्य में अन्तर कर सके,अंधविश्वास पूर्ण बातों को अस्वीकार कर सके, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग कर सके। स्वतन्त्र वाद-विवाद और शान्तिपूर्ण विचार विनिमय-प्रजातन्त्र के आधार है। अतः नागरिकों में शिक्षा द्वारा उक्त गुणों का विकास किया जाना चाहिए।
7. **अन्तर-सांस्कृतिक भावना का विकास:-** जवाहर लाल नेहरू के कथनानुसार “प्राचीन संसार बदल गया है और प्रार्थना बाधा में समाप्त होती जा रही है, जीवन अधिक अन्तर्राष्ट्रीय होता जा रहा है।” हमें आने वाली अन्तर्राष्ट्रीयता में अपनी भूमिका अदा करनी है तथा इस कार्य के लिए संसार से सम्पर्क अनिवार्य है।

आज का संसार विश्वबन्धुत्व की ओर बढ़ रहा है। अतः दूसरे देशों से सम्बन्ध एवं सम्पर्क स्थापित करने हेतु हमें शिक्षा का सहारा लेना होगा। दूसरे शब्दों में- शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य- अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान की वृद्धि करना है।

3.5.2 लोकतन्त्रीय भारत के राष्ट्र-सम्बन्धी शैक्षिक उद्देश्य-

भारतीय राष्ट्र की कुछ प्रमुख समस्याएँ हैं जैसे कि खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भरता की समस्या, गरीबी एवं बेरोजगारी, सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिक तनाव एवं उपद्रव तथा राजनैतिक

अस्थिरता आदि उपर्युक्त समस्याओं के हल के लिए स्पष्ट दृष्टि, गहरी सूझ-बूझ, सामुदायिक अनुशासन एवं कठोर श्रम तथा त्यागपूर्ण नेतृत्व की आवश्यकता है। इसके लिए शैक्षिक क्रान्ति की आवश्यकता है जिस हेतु हमें निम्नलिखित शैक्षिक उद्देश्यों की आवश्यकता है:-

1. **उत्पादकता में वृद्धि करना:-** भारत को खाद्यान्नों के उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की आवश्यकता है। जिसके लिए शिक्षा व उत्पादकता में सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है। शिक्षा व उत्पादकता में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए विज्ञान को शिक्षा व संस्कृति के मूल अंग के रूप में ग्रहण किया जाए, कार्य अनुभव को सामान्य शिक्षा का एक अभिन्न अंग बनाना, उद्योग, कृषि तथा व्यापार की आवश्यकता की पूर्ति हेतु माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण किया जाना सम्मिलित है।
2. **सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति:-** इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 'कोठारी आयोग' ने सुझाव दिया है कि किसी-न-किसी प्रकार की सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा को सभी छात्रों के लिए अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। इस सेवा के द्वारा चरित्र निर्माण, अनुशासन में सुधार, शारीरिक श्रम की महत्ता एवं सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित की जा सकती है।
3. **आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की गति तीव्र करना:-** आधुनिक, विज्ञान-आधारित तकनीकी ने उत्पादन को चमत्कारिक ढंग से बढ़ाया है साथ ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को भी प्रभावित किया है इस कारण ऐसे मूलभूत सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं, जिन्हें सामान्य रूप से 'आधुनिकीकरण' कहा जाता है। आधुनिकीकरण को तीव्र बनाने के लिए शिक्षा का विस्तार कर शिक्षित तथा कुशल नागरिक तैयार किये जाने चाहिए।
4. **सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना:-** आधुनिकीकरण के साथ-साथ सामाजिक नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए।

अन्ततः हम **हुमायूँ कबीर** के शब्दों में कह सकते हैं :-

“भारत में शिक्षा द्वारा लोकतन्त्रीय चेतना, वैज्ञानिक खोज और दार्शनिक सहिष्णुता का निर्माण किया जाना चाहिए। केवल तभी हम उन परम्पराओं के उचित उत्तराधिकारी होंगे जिनका निर्माण इस देश में अतीत में हुआ है। केवल तभी हम इस आधुनिक विरासत में अपना भाग पाने के अधिकारी होंगे, जो विश्व के समस्त राष्ट्रों की विरासतों को एक करने का प्रयत्न करती है।”

अभ्यास प्रश्न

1. शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य में दो रूप है पहला..... तथा दूसरा.....

2. विहीन व्यक्ति कोरी कल्पना है। (रेमान्ट के अनुसार)
3. और वैयक्तिकरण एक ही प्रक्रिया के दो पहलू है।
4. भारत में मूल्यों की शिक्षा को महत्व दिया गया है।

3.6 सारांश

- i. प्रत्येक समाज में शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ-साथ व्यक्ति तथा समाज की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं, मूल्यों आदि को आधार बनाकर किया जाता है।
- ii. शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के अनुसार समाज या राज्य का स्थान व्यक्ति से बहुत ऊँचा है। समाज के हित में ही व्यक्ति का हित है। समाज में रह कर ही व्यक्ति अपनी आवश्यकताएँ पूर्ण कर सकता है, अपना विकास कर सकता है तथा उन्नति के पथ पर आगे बढ़ सकता है।
- iii. व्यक्ति व समाज को एक दूसरे- का विरोधी माना गया है। इस विचारधारा की अतिवादिता से समाज व व्यक्ति दोनों को ही समय-समय पर हानि उठानी पड़ती है।
- iv. भारत वर्ष का अन्तिम उद्देश्य देश में समाजवादी शासन की स्थापना करना है। ऐसे समाज की विशेषताएँ होती हैं- असमानता की भावना का अभाव, स्वस्थ और सुखी जीवन व्यतीत करने के अवसर, शारीरिक एवं आर्थिक सुरक्षा आदि।

3.7 शब्दावली

समाजवाद का शत्रु:- व्यक्तिवाद, समाजवाद का विपरीत है जिसके कारण हमारे देश में शिक्षा के इस अतिवादी दृष्टिकोण को अपनाना सम्भव नहीं है।

सामाजिक विघटन:- वैयक्तिक उद्देश्य व्यक्ति को प्रत्येक प्रकार की स्वतन्त्रता देने के पक्ष में है जिससे सामाजिक उद्देश्यों की अनदेखी सम्भव है, जिससे सामाजिक विघटन की सम्भावना है।

एकांगी शिक्षा:- सामाजिक उद्देश्य जिस शिक्षा का समर्थन करता है, वह एकांगी है। इस शिक्षा में नागरिकता और समाज सेवा की शिक्षा के लिए कोई स्थान नहीं है। ये उनको केवल आज्ञाकारी व्यक्तियों के रूप में राजनीतिक क्षेत्र के लिए तैयार करती है। परिणामतः उनका मानसिक, सौन्दर्यात्मक, चारित्रिक, एवं आध्यात्मिक विकास नहीं हो पाता है।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- | | | | |
|----|-----------------------------|----|-------------|
| 1. | आत्माभिव्यक्ति, आत्मानुभूति | 2. | समाज |
| 3. | सामाजीकरण | 4. | लोकतांत्रिक |

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. चक्रवर्ती, ए0के0. प्रिंसीपल एण्ड प्रैक्टिस ऑफ एजुकेशन, आर0लाल बुक डिपोमेरटा
2. गुप्त (डा0) पाल, एवं मदन मोहन. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद
3. त्यागी एवं पाठक. शिक्षा के सिद्धांत, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
4. चौबे (डा0) एस0पी0एवं अखिलेश चौबे, फिलोसोफिकल एण्ड सोशोलॉजिकल फाउण्डेशन्स ऑफ एजुकेशन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शिक्षा के उद्देश्यों की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
2. क्या हमारी वर्तमान शिक्षा उन उद्देश्यों के अनुकूल है, जो एक स्वतन्त्र प्रजातांत्रिक देश की शिक्षा के होने चाहिए ? क्या इस शिक्षा से हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की समस्याएँ हल हो सकती हैं ? यदि नहीं, तो सुधार के लिए सुझाव दीजिये ।
3. शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत कीजिए।
4. आधुनिक प्रजातांत्रिक भारत के शैक्षिक उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
5. इनमें से प्रत्येक पर लगभग 100 शब्द लिखें-
 1. शिक्षा का वैयक्तिक उद्देश्य।
 2. आत्माभिव्यक्ति एवं आत्मानुभूति का उद्देश्य।
 3. शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य।
 4. शिक्षा का प्रजातांत्रिक उद्देश्य।

इकाई 4- शिक्षा सम्बंधी संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions with Regard to Education)

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 भारत का संविधान- उद्देशिका
 - 4.3.1 मूल अधिकार
 - 4.3.2 मूल कर्तव्य
- 4.4 विभिन्न स्तरों पर राजकीय शैक्षिक कार्य
- 4.5 भारत के संविधान में शिक्षा सम्बंधी अनुच्छेद- प्रावधान
- 4.6 शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009
- 4.7 सारांश
- 4.8 शब्दावली
- 4.9 अभ्यास प्रश्नोंके उत्तर
- 4.10 संदर्भ ग्रंथ
- 4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में मनुष्य के लिए शिक्षा आवश्यक हो गई है। इसका कारण यह है कि आज का युग भौतिक एवं विज्ञान का युग है। इसलिए मनुष्य का सचेत और जागरूक होकर जीवित रहना आवश्यक हो गया है। एक समय था जब शिक्षा सबके लिए नहीं थी। शिक्षा केवल कुछ धनी लोगों के लिए थी तथा इसका उद्देश्य केवल व्यक्ति का बौद्धिक विकास था। परन्तु आधुनिक युग में शिक्षा जनसाधारण व्यक्ति के लिए भी उतनी ही आवश्यक है जितनी वर्ग विशेष के लिए हुआ करती थी। इस स्थिति का मुख्य कारण प्रजातन्त्र का विकास तथा प्रसार है।

15 अगस्त 1947 ई0 को हमारा देश स्वतन्त्र हुआ। भारतीय संविधान जो 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ उसमें शिक्षा के प्रति पूर्ण रूप से संवैधानिक दायित्व की चर्चा की गई। भारत का संविधान सर्वप्रथम हमें शिक्षा की विभिन्न समस्याओं को समझाने में सहायता प्रदान करता है। शिक्षा जगत् से

सम्बन्धित संविधान में जो व्यवस्थाएँ हमारी राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन से जुड़ी हुई हैं, उनका समझना बहुत आवश्यक है।

इस इकाई में आप शिक्षा से सम्बंधित विभिन्न प्रावधानों का अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

1. भारत के नागरिकों के मूल अधिकार जान पायेंगे।
2. भारत के नागरिकों के मूल कर्तव्यों से परिचित हो पायेंगे।
3. विभिन्न स्तरों पर राजकीय शैक्षिक कार्य की व्याख्या कर सकेंगे।
4. भारत के संविधान में वर्णित विभिन्न शिक्षा सम्बंधी प्रावधानों को लिख पायेंगे।
5. शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 का वर्णन कर सकेंगे।

4.3 भारत का संविधान- उद्देशिका

हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व- संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपसना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढसंकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई0 को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

4.3.1 मूल अधिकार

संविधान के अनुच्छेद 12 से 32 में नागरिकों के मूल अधिकारों का उल्लेख है। वर्तमान में भारत के नागरिकों के निम्नलिखित छः मूल अधिकार हैं-

1. समता का अधिकार
2. स्वतंत्रता का अधिकार
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार
4. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार
5. संस्कृति और शिक्षा का अधिकार (6-14 वर्ष की आयु)
6. सांविधानिक उपचारों का अधिकार

वर्ष 2002 में 86वें संविधान संशोधन द्वारा 6-14 वर्ष तक के बालकों के लिए शिक्षा को मूल अधिकार बनाया गया।

4.3.2 मूल कर्तव्य

संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान 10 मौलिक कर्तव्यों को समाविष्ट कर दिया गया है। वर्ष 2002 में 86वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान के अनुच्छेद 51-क से एक अन्य मौलिक कर्तव्य समाहित किया गया। भारत के प्रत्येक नागरिक के 11 मौलिक कर्तव्य निम्नवत है-

1. संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का आदर करे,
2. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,
3. भारत की प्रभुसत्ता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे,
4. देश की रक्षा करें और आह्वान किए जानेपर राष्ट्रकी सेवा करें ,
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है,
6. हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करें ,
7. प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव है, रक्षा करे और उसका संवर्धन करें तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखें ,
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववादी और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें ,
9. सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहें |
10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।
11. माता-पिता या अभिभावक के रूप में भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह 6 से 14 वर्ष के बच्चे या पाल्य को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध कराएगा।

अभ्यास प्रश्न

1. संविधान के अनुच्छेद 12 से 32 में नागरिकों के _____ का उल्लेख है।
2. भारत के नागरिकों के मूल अधिकार को लिखिए।

3. वर्ष 2002 में _____ द्वारा 6-14 वर्ष तक के बालकों के लिए शिक्षा को मूल अधिकार बनाया गया।
4. संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम , 1976 द्वारा संविधान 10 _____ को समाविष्ट कर दिया गया है।
5. भारत के प्रत्येक नागरिक के _____ मौलिक कर्तव्य है
 - i. 10
 - ii. 11
 - iii. 12
 - iv. 13

4.4 विभिन्न स्तरों पर राजकीय शैक्षिक कार्य (Educational Functions of Government at Various Levels)

संविधान के अनुच्छेद 246 के अंतर्गत सूची 1 – संघ सूची तथा सूची 3- समवर्ती सूची में सम्मिलित शिक्षा विषयक तथ्य है। संविधान के अन्तर्गत सरकार के विभिन्न स्तरों पर शिक्षा से सम्बन्धित कर्तव्यों तथा दायित्वों का उल्लेख है। सरकार संघ स्तर पर, राज्य स्तर पर तथा स्थानीय स्तर पर शिक्षा सम्बन्धी कार्यों को व्यवहारिक रूप प्रदान करेगी। भारत का संविधान संघीय है। इसलिए शक्तियों का बटवारा केन्द्र और राज्यों के बीच किया गया है। शक्ति से सम्बन्धित तीन सूचियाँ निर्मित है:-

1. संघ सूची(Union list)
2. राज्य सूची (State list)
3. समवर्ती सूची (Concurrent list)

संघ सूची (Union list)154

भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 की राज्य सूची में प्रविष्टियाँ निम्नवत है-

- 63 इस संविधान के प्रारंभ पर काशी हिंदू विश्वविद्यालय , अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और (दिल्ली विश्वविद्यालय) नामों से ज्ञात संस्थाएं (अनुच्छेद371ड के अनुसरण में स्थापित विश्वविद्यालय) संसद द्वारा, विधि द्वारा,राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था।
- 64 भारत द्वारा पूर्णतः या भागतःवित्तपोषित और संसद द्वारा , विधि द्वारा, राष्ट्रीय महत्व की घोषित वैज्ञानिक या तकनीकी शिक्षा संस्था।

- 65 संघ के अभिकरण और संस्थाएं जो-
 - क. वृत्तिक , व्यवसायिक या तकनीकी प्रशिक्षण के लिए है जिसके अंतर्गत पुलिस अधिकारियों का प्रशिक्षण है; या
 - ख. विशेष अध्ययन या अनुसंधान की अभिवृद्धि के लिए है; या
 - ग. अपराध के अंवेक्षण या पता चलाने में वैज्ञानिक या तकनीकी सहायता के लिए है।
- 66 उच्चतर शिक्षा या अनुसंधान संस्थाओं में तथा वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थाओं में मानकों का समन्वय और अवधारणा ।

राज्य सूची (State list)

भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 की राज्य सूची में प्रविष्टियाँ निम्नवत है-

- 14 कृषि जिसके अंतर्गत कृषि शिक्षा और अनुसंधान, नाशक जीवों से संरक्षण और पादप रोगों का निवारण है।

समवर्ती सूची (Concurrent list)

सन 1976 में 42 वें संवैधानिक संशोधन से शिक्षा को समवर्ती सूची में सम्मिलित किया गया।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 की समवर्ती सूची में प्रविष्टियाँ निम्नवत है-

- 25 सूची 1 की प्रविष्टि 63, 64, 64 और 66 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, शिक्षा जिसके अंतर्गत तकनीकी शिक्षा , आयुर्विज्ञान शिक्षा और विश्वविद्यालय है; श्रमिकों का व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण।

4.5 भारत का संविधान और शिक्षा

अनुच्छेद 28 – कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता-

1. राज्य – निधि से पूर्णतः किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।
2. खण्ड (1) की कोई बात ऐसी शिक्षा संस्था को लागू नहीं होगी, जिसका प्रशासन राज्य करता है किंतु जो किसी ऐसे विन्यास या न्यास के अधीन स्थापित हुई है, जिसके अनुसार उस संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है।
3. राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य-निधि से सहायता पाने वाली शिक्षा संस्था में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए या ऐसी संस्था में या उससे संलग्न स्थान में की जाने वाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति ने, या यदि वह अवयस्क है तो उसके संरक्षक ने, इसके लिए अपनी सहमति नहीं दे दी है।

संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार
अनुच्छेद 29-अल्पसंख्यक- वर्गों के हितों का संरक्षण-

(1) भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपी या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा।

(2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक ओको केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इन्में से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 30- शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने का अल्पसंख्यक- वर्गों का अधिकार –

(1) धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक-वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।

(2) शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्थाके विरुद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक- वर्ग के प्रबंध में है।

अनुच्छेद 41- कुछ दशाओं में काम , शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार- राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर , काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और निःशक्तता तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकारको प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा।

अनुच्छेद 46- अनुसूचित जातियों , अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्लब वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि – राज्य , जनता के दुर्बल वर्गों के , विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और जनजातियोंके शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी सुरक्षा करेगा ।

अनुच्छेद 15 (3) स्त्री शिक्षा का विशिष्ट प्रावधान – इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

अनुच्छेद 15 (4)- इस अनुच्छेद या अनुच्छेद 29 के खंड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नतिके लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

अनुच्छेद 350 व्यथा के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा- प्रत्येक व्यक्ति किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को, यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार होगा।

अनुच्छेद 350 क. प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएं- प्रत्येक राज्य के भीतर प्रत्येक प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक- वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निर्देश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है।

अनुच्छेद 350 ख. भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गोंके लिए विशेष अधिकारी-(1) भाषाई अल्पसंख्यक- वर्गों के लिए एक विशेष अधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

(2) विशेष अधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह इस संविधान के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक – वर्गों के लिए उपबंधित रक्षापायों से सम्बंधित सभी विषयों का अन्वेषण करे और उन विषयों के सम्बन्ध में ऐसे अंतरालों पर जो राष्ट्रपति निर्दिष्ट करे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे और राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा और सम्बंधित राज्यों की सरकारों को भिजवाएगा।

अनुच्छेद 343- संघ की राजभाषा – संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी।

अनुच्छेद 351 हिंदी भाषा के विकास के लिए निदेश- संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द – भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

4.6 शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 (Right to Education Act 2009)

- शिक्षा के अधिकार को संवैधानिक आधार प्रदान करने के लिए दिसम्बर 2002 में 86वाँ संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 21 A (भाग - III) जोड़ा गया जिसके अंतर्गत शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया।

- 19 जुलाई 2006 को शिक्षा के अधिकार से जुड़े सभी संगठनों की संयुक्त बैठक बुलाई, जिसमें संसदीय कार्यवाही व निर्देशों की आवश्यकता व निर्धारण हेतु निर्णय लिए गये।
- 2 जुलाई 2009 को यह विधेयक केंद्रीय मंत्रीमंडल द्वारा अनुमोदित कर दिया गया।
- 20 जुलाई 2009 को राज्यसभा द्वारा इसे पारित कर दिया गया है।
- 4 अगस्त 2009 को लोकसभा द्वारा भी इसे पारित कर दिया गया।
- 3 सितम्बर 2009 को राष्ट्रपति की स्वीकृति के पश्चात यह अधिनियम बन गया।
- 1 अप्रैल 2010 को यह अधिनियम जम्मू व कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू हो गया।

“ शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 भारत में लागू होने के पश्चात भारत विश्व के उन 135 देशों में सम्मिलित हो गया है जिनमें शिक्षा के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है। वास्तव में, शिक्षा जो एक संवैधानिक अधिकार शुरू में था अब उसे एक मौलिक अधिकार का दर्जा प्राप्त है। भारत के संविधान की शुरुआत में, शिक्षा का अधिकार अनुच्छेद 41 के तहत राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के तहत मान्यता दी गई थी जिसके अनुसार,

"राज्य अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के भीतर, शिक्षा और बेरोजगारी, वृद्धावस्था, बीमारी और विकलांगता के मामले में सार्वजनिक सहायता करने के लिए काम करते हैं, सही हासिल करने के लिए प्रभावी व्यवस्था करने, और नाहक के अन्य मामलों में चाहते हैं "

निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का आश्वासन राज्य के नीति निर्देशक अनुच्छेद 45, के अनुसार निम्नवत दिया गया है-

"राज्य, इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा"

शिक्षा का अधिकार अब 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए एक मौलिक अधिकार है। सरल शब्दों में इसका अर्थ यह है कि सरकार प्रत्येक बच्चे को आठवीं कक्षा तक की निःशुल्क पढ़ाई के लिए उत्तरदायी होगी, चाहे वह बालक हो अथवा बालिका अथवा किसी भी वर्ग का हो। इस प्रकार इस कानून ने देश के बच्चों को मजबूत, साक्षर और अधिकार संपन्न बनाने का मार्ग तैयार कर दिया है।

इस अधिनियम में सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करनेका प्रावधान है, जिससे ज्ञान, कौशल और मूल्यों से युक्त होकर वे भारत के प्रबुद्ध नागरिक बनाये जा सकें। यदि विचार किया जाए तो आज देशभर में स्कूलों से वंचित लगभग एक करोड़ बच्चों को शिक्षा प्रदान करना सचमुच हमारे लिए एक दुष्कर कार्य है। इसलिए इस लक्ष्य को साकार करने के लिए सभी

हितधारकों — माता-पिता, शिक्षक, स्कूलों, गैर-सरकारी संगठनों और कुल मिलाकर समाज, राज्य सरकारों और केन्द्र सरकार की ओर से एकजुट प्रयास का आह्वान किया गया है।

इस अधिनियम में इस बात का प्रावधान किया गया है कि बालक की पहुंच के अन्तर्गत आने वाला कोई निकटवर्ती स्कूल किसी भी बच्चे को प्रवेश देने से इनकार नहीं करेगा। इसमें यह भी प्रावधान शामिल है कि प्रत्येक 30 छात्र के लिए एक शिक्षक के अनुपात को कायम रखते हुए पर्याप्त संख्या में सुयोग्य शिक्षक स्कूलों में मौजूद होने चाहिए। स्कूलों को पांच वर्षों के भीतर अपने सभी शिक्षकों को प्रशिक्षित करना होगा। उन्हें तीन वर्षों के भीतर समुचित सुविधाएं भी सुनिश्चित करनी होंगी, जिसमें खेल का मैदान, पुस्तकालय, पर्याप्त संख्या में अध्ययन कक्ष, शौचालय, शारीरिक विकलांग बच्चों के लिए निर्बाध पहुंच तथा पेय जल सुविधाएं शामिल हैं। विद्यालय प्रबंधन समितियों के 75 प्रतिशत सदस्य छात्रों की कार्यप्रणाली और अनुदानों के इस्तेमाल की देखरेख करेंगे। विद्यालय प्रबंधन समितियाँ तथा स्थानीय अधिकारी स्कूल से वंचित बच्चों की पहचान करेंगे और उन्हें समुचित प्रशिक्षण के बाद उनकी उम्र के अनुसार समुचित कक्षाओं में प्रवेश दिलाएंगे। सम्मिलित विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से निजी स्कूल भी सबसे निचली कक्षा में समाज के गरीब और हाशिये पर रहने वाले वर्गों के लिए 25 प्रतिशत सीटें आरक्षित करेंगे।

अभ्यास प्रश्न

6. संविधान के किस अनुच्छेद के अंतर्गत सूची 1 – संघ सूची तथा सूची 3- समवर्ती सूची में सम्मिलित शिक्षा विषयक तथ्य है ?
7. सन 1976 में 42 वे संवैधानिक संशोधन से शिक्षा को _____ में सम्मिलित किया गया।
 - i. संघ सूची
 - ii. राज्य सूची
 - iii. समवर्ती सूची
8. _____ शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने का अल्पसंख्यक- वर्गों का अधिकार।
9. _____ इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।
10. अनुच्छेद 343- संघ की रजभाषा _____ हिंदी और लिपि _____ देवनागरी होगी।
11. शिक्षा के अधिकार को संवैधानिक आधार प्रदान करने के लिए दिसम्बर 2002 में 86वाँ संविधान संशोधन द्वारा _____ जोड़ा गया जिसके अंतर्गत शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया।
12. _____ 1 अप्रैल 2010 को जम्मू और कश्मीर को छोड़कर पूरे भारत में लागू हो गया।

13. शिक्षा का अधिकार अब _____ वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए एक मौलिक अधिकार है।

4.7 सारांश

संविधान के अनुच्छेद 12 से 32 में नागरिकों के मूल अधिकारों का उल्लेख है। वर्तमान में भारत के नागरिकों के छः मूल अधिकार है। वर्ष 2002 में 86वें संविधान संशोधन द्वारा 6-14 वर्ष तक के बालकों के लिए शिक्षा को मूल अधिकार बनाया गया। संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान 10 मौलिक कर्तव्यों को समाविष्ट कर दिया गया है। वर्ष 2002 में 86वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान के अनुच्छेद 51- क से एक अन्य मौलिक कर्तव्य समाहित किया गया। संविधान के अनुच्छेद 246 के अंतर्गत सूची 1 – संघ सूची तथा सूची 3- समवर्ती सूची में सम्मिलित शिक्षा विषयक तथ्य है। संविधान के अन्तर्गत सरकार के विभिन्न स्तरों पर शिक्षा से सम्बन्धित कर्तव्यों तथा दायित्वों का उल्लेख है। शिक्षा से सम्बन्धित संवैधानिक प्रावधान निम्नलिखित है-

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 15(3) तथा 15(4) में वर्णित उपबंध से सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े नागरिकों, स्त्रियों और बालिकाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान।
2. संविधान के अनुच्छेद 29 तथा 30 के आधार पर अल्पसंख्यक वर्ग के संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकारों का प्रावधान।
3. संविधान के अनुच्छेद 41 में वर्णित राज्य की नीति के निदेशक तत्व के अनुसार कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने के अधिकार।
4. संविधान के अनुच्छेद 45 में वर्णित राज्य की नीति के निदेशक तत्व के अनुसार बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध।
5. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ सम्बंधी हितों की अभिवृद्धि हेतु राज्यों के कर्तव्य के संदर्भ में संविधान के अनुच्छेद 46।
6. वर्ष 2002 में संविधान के 86वें संशोधन द्वारा माता-पिता अथवा अभिभावकों के बच्चों अथवा पाल्यों को शिक्षा प्राप्त कराने सम्बंधी मूल अधिकार।
7. संविधान के अनुच्छेद 246 के अंतर्गत सूची 1 – संघ सूची तथा सूची 3- समवर्ती सूची में सम्मिलित शिक्षा विषयक तथ्य।
8. संविधान के अनुच्छेदों 350, 350 क, 350 ख तथा 351 के अंतर्गत वर्णित विशेष निदेश।
9. बालक- बालिकाओं के निः शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009। शिक्षा का अधिकार अब 6-14 वर्ष तक के बच्चों के लिए एक मौलिक अधिकार है। सरल शब्दों में इसका अर्थ यह है कि सरकार प्रत्येक बच्चे को आठवीं कक्षा तक की निःशुल्क पढ़ाई के लिए उत्तरदायी होगी, चाहे वह बालक हो अथवा

बालिका अथवा किसी भी वर्ग का हो। इस प्रकार इस कानून ने देश के बच्चों को मजबूत, साक्षर और अधिकार संपन्न बनाने का मार्ग तैयार कर दिया है।

4.8 शब्दावली

भारत का संविधान- उद्देशिका:-

हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व- संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढसंकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई0 को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

समवर्ती सूची (Concurrent list)

सन् 1976 में 42 वें संवैधानिक संशोधन से शिक्षा को समवर्ती सूची में सम्मिलित किया गया।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 की समवर्ती सूची में प्रविष्टियाँ निम्नवत हैं-

25 सूची1 की प्रविष्टि 63, 64, 64 और 66 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, शिक्षा जिसके अंतर्गत तकनीकी शिक्षा, आयुर्विज्ञान शिक्षा और विश्वविद्यालय है; श्रमिकों का व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मूल अधिकारों
2. वर्तमान में भारत के नागरिकों के निम्नलिखित छः मूल अधिकार हैं-
 - i. समता का अधिकार
 - ii. स्वातंत्र्य का अधिकार
 - iii. शोषण के विरुद्ध अधिकार
 - iv. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार
 - v. संस्कृति और शिक्षा का अधिकार (6-14 वर्ष की आयु)
 - vi. संवैधानिक उपचारों का अधिकार
3. 86वें संविधान संशोधन
4. मौलिक कर्तव्यों
5. 11
6. अनुच्छेद 246 के
7. iii. समवर्ती सूची

8. अनुच्छेद 30
 9. अनुच्छेद 15 (3)
 10. हिंदी, देवनागरी
 11. अनुच्छेद 21 A (भाग - III)
 12. शिक्षा का अधिकार अधिनियम
 13. वर्ष 6-14
-

4.10 संदर्भ ग्रंथ

1. भारत का संविधान, भारत सरकार, 1990
 2. मिश्रा मन्जु , भारतीय शिक्षा पद्धति और उसकी समस्याएँ, 2007, ओमेंगा पब्लिकेशन्स
 3. Lal and Palod , Educational Thought and Practice, Surya Publications
-

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतके संविधान में वर्णित मूल अधिकारों एवं मूल कर्तव्यों को लिखिए।
2. भारत के संविधान में वर्णित शिक्षा सम्बंधी अनुच्छेदों की व्याख्या कीजिए।
3. शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 का वर्णन कीजिए।

इकाई-5 विद्यालय: समाज का लघु रूप (School as a miniature society)

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 विद्यालय का विकास
 - 5.3.1 विद्यालय का अर्थ।
 - 5.3.2 विद्यालय की परिभाषाएं
- 5.4 समाज का अर्थ।
 - 5.4.1 समाज की परिभाषाएं
- 5.5 विद्यालय तथा समाज का सम्बन्ध
 - 5.5.1 समाज में विद्यालय का स्थान - उसका महत्व व आवश्यकता
- 5.6 सारांश
- 5.7 शब्दावली
- 5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 5.9 संदर्भ ग्रंथ
- 5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना:- (Introduction)

मानव समाज अपने आदर्शों, भावों तथा मान्यताओं तथा क्रियाओं को भावी सन्तति को प्रदान करता हुआ स्वयं को जीवित रखता है। जैसे-जैसे वह अनुभव करता है कि उसकी कुछ परम्पराएं, विचारधाराएं, मूल्य आदि पुरातन होते जा रहे हैं और वे उसे लाभप्रद सिद्ध नहीं हो रहे हैं, वैसे-वैसे वह उनको त्यागता चलता है और नवीन मान्यताओं, परम्पराओं, विचारधाराओं आदि को अपनाता जाता है। समाज इस कार्य को शिक्षा के माध्यम से करता है। समाज शिक्षा को प्रदान करने के लिए विभिन्न शैक्षिक साधनों- औपचारिक, अनौपचारिक तथा गैरऔपचारिक को प्रयोग में लाता है। समाज औपचारिक साधनों के रूप में शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करता है। जिसके द्वारा समाज के विचारों, भावों आदर्शों मूल्यों, क्रियाओं, मानदण्डों, परम्पराओं आदि को आने वाली सन्तति को हस्तान्तरित एवं संरक्षित किया जाता है। इस सम्बन्ध में फ्रेंकलिन (Franklin) का मत है-

“ समाज शिक्षा संस्थाओं को अपने सदस्यों में ऐसे ज्ञान, कौशलों, आदर्शों तथा आदतों का प्रसार करने एवं सुरक्षित रखने के लिए स्थापित करता है जो कि उसके स्वयं के स्थायित्व तथा निरन्तर विकास के लिए अनिवार्य है।”

5.2 उद्देश्य :- (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

1. विद्यालय का अर्थ समझ सकेंगे।
2. विद्यालय को परिभाषित कर सकेंगे।
3. समाज का अर्थ समझ सकेंगे।
4. समाज को परिभाषित कर सकेंगे।
5. विद्यालय तथा समाज का सम्बन्ध समझ सकेंगे।
6. समाज में विद्यालय का स्थान, उसका महत्व व आवश्यकता से परिचित हो सकेंगे।
7. यह सामान्यीकरण कर सकेंगे कि विद्यालय: समाज का लघु रूप है।

5.3 विद्यालय का विकास:- (Development of the school)

विद्यालय के विषय में दो धारणाएं हैं - एक प्राचीन तथा दूसरी नवीन। प्राचीन धारणा के अनुसार परम्परागत विद्यालयों का जन्म हुआ था। तथा नवीन धारणा के अनुसार प्रगतिशील विद्यालयों को स्थापित किया जाता है। निम्नलिखित पंक्तियों में हम इन दोनों प्रकार के विद्यालयों की अलग-अलग चर्चा कर रहे हैं।

परम्परागत विद्यालय (Traditional School)- परम्परागत विद्यालय में केवल औपचारिक शिक्षा दी जाती है। इन विद्यालयों का जन्म उसी समय से हुआ है जब से परिवार अपने कार्यों को करने में असमर्थ हो गया था। पहले धर्म तथा राज्य अलग-अलग संस्थायें नहीं थीं। अतः उस युग में धार्मिक नेता ही शिक्षक हुआ करते थे। उन शिक्षकों ने परम्परागत शिक्षा को इतना मूल्यवान बना दिया था कि उसके द्वारा होने वाला लाभ केवल उच्च वर्ग के लोगों को ही प्राप्त था। कालान्तर में धर्म तथा राज्य अलग-अलग संस्थायें हो गईं। शनैः शनैः राज्यों में जनतन्त्रवादी दृष्टिकोण विकसित होने लगा। इधर तेरहवीं शताब्दी में कागज तथा पन्द्रहवीं शताब्दी में छापने के यन्त्रों का आविष्कार हो गया जिसके परिणामस्वरूप जन-साधारण को भी इन विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने के अवसर मिलने लगे। परन्तु ध्यान देने की बात है कि वर्तमान परिस्थितियों में ये सभी परम्परागत विद्यालय ऐसी दुकानें बन गये हैं जहां पर अज्ञान का क्रय तथा विक्रय होता है। शिक्षक ज्ञान को बेचते हैं तथा बालक खरीदते हैं। दूसरे शब्दों में ज्ञान के विक्रेता अर्थात् शिक्षक इन विद्यालयों में पके-पकाये ज्ञान

को बालकों के मस्तिष्क में बलपूर्वक ठूसने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार इन समस्त विद्यालयों की दिनचर्या बड़ी कठोर होती है, जिसके कारण शिक्षा की प्रक्रिया नीरस तथा निर्जीव हो गई है। संक्षेप में परंपरागत विद्यालयों का सम्पूर्ण वातावरण कृत्रिम तथा मनोवैज्ञानिक होता है जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा के सच्चे उद्देश्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। पेस्टालाजी ने इन स्कूलों के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है- “हमारे मनोवैज्ञानिक विद्यालय बालकों को उनके प्राकृतिक जीवन से दूर कर देते हैं, उन्हें अनाकर्षक बातों को याद करने के लिए भेड़ों के समान हांकते हैं तथा घंटों, दिनों, सप्ताहों, महीनों एवं वर्षों तक दर्दनाक जंजीरों से बांध देते हैं।

नवीन अथवा प्रगतिशील विद्यालय (Modern or Progressive School)

पेस्टालॉजी की भाँति फ्राबेल, हरबार्ट, मान्टेसरी, नन तथा पार्कहर्स्ट एवं टैगौर आदि शिक्षाशास्त्रियों ने इस बात पर बल दिया कि शिक्षा बालक के लिए है न कि बालक शिक्षा के लिए। इन सभी शिक्षाशास्त्रियों ने परम्परागत विद्यालय की उस नीरस तथा निर्जीव शिक्षा का विरोध किया जिसके अनुसार बालक की व्यक्तिगत विभिन्नता की अवहेलना करके उसके मस्तिष्क में ज्ञान को बलपूर्वक ठूसने का प्रयास किया जाता था। उन्होंने नये-नये शैक्षिक प्रयोग किये जिससे नवीन अथवा प्रगतिशील विद्यालयों का जन्म हुआ। इस प्रकार प्रगतिशील विद्यालय का विकास परम्परागत विद्यालयों की विरोधी प्रवृत्ति के कारण हुआ।

5.3.1 विद्यालय का अर्थ:- (Meaning of School)

हिन्दी का विद्यालय शब्द दो ‘विद्या’ तथा ‘आलय’ से मिलकर बना है। विद्या शब्द का अर्थ है ‘ज्ञान’ और आलय शब्द का अर्थ है ‘स्थान’। इस प्रकार विद्यालय शब्द का अर्थ हुआ ‘विद्या देने का स्थान’। अपने शाब्दिक अर्थ में विद्यालय वह स्थान है जहाँ शिक्षा की प्रक्रिया चलती है, जहाँ बालकों के बांछित विकास के लिए शिक्षा प्रदान की जाती है। अंग्रेजी के ‘स्कूल’ (School) शब्द की उत्पत्ति एक ग्रीक शब्द ‘स्कोल’[Skhole] से हुई है। इस शब्द का अर्थ है-‘अवकाश’ [Leisure] | यद्यपि स्कूल का यह अर्थ विचित्र लगता है, परन्तु यह वास्तविकता है कि प्राचीन यूनान में इन अवकाश के स्थानों को ही स्कूल के नाम से सम्बोधित किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग में अवकाश काल को ही ‘आत्म विकास; समझा जाता था जिस का अभ्यास ‘अवकाश नामक निश्चित स्थान पर किया जाता था। अतः अवकाश शब्द का अर्थ है आत्म विकास’ अथवा ‘शिक्षा’। शनैः शनै ये अवकाशालय ऐसे स्थान बन गये जहाँ पर शिक्षक किसी निश्चित योजना के अनुसार एक निश्चित पाठ्यक्रम को निश्चित समय के भीतर समाप्त करने लगे। इस प्रकार आधुनिक युग में स्कूल का एक भौतिक अस्तित्व होता है। जिसकी चाहरदीवारी में बालकों को शिक्षा प्रदान की जाती है। अवकाश [Leisure] शब्द का स्पष्टीकरण करते हुए ए.एफ. लीच ने लिखा है-“वाद-विवाद या वार्ता के स्थान जहाँ एथेन्स के युवक अपने अवकाश के समय को खेल-कूद व्यायाम और युद्ध के प्रशिक्षण में बिताते थे, धीरे-धीरे दर्शन तथा उच्च कक्षाओं के स्कूलों में

बदल गये एकेडेमी के सुन्दर उद्योगों में व्यतीत किये जाने वाले अवकाश के माध्यम से स्कूलों का विकास हुआ।”

5.3.2 विद्यालय की परिभाषा:- Definition of School

विद्यालय को स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषायें निम्न प्रकार से हैं-

1. जॉन ड्यूवी- “ विद्यालय एक ऐसा विशिष्ट वातावरण है, जहां जीवन के कुछ गुणों और कुछ विशेष प्रकार की क्रियाओं तथा व्यवसायों की शिक्षा इस उद्देश्य से दी जाती है। कि बालक का विकास वांछित दिशा में हो।”
2. टी.पी. नन0 “विद्यालय को मुख्य रूप से इस प्रकार का स्थान नहीं समझा जाना चाहिए, जहां किसी निश्चित ज्ञान को सीखा जाता है, वरन् ऐसा स्थान जहां बालकों को क्रियाओं के उन निश्चित रूपों में प्रशिक्षित किया जाता है, जो इस विशाल संसार में सबसे महान् और सबसे अधिक महत्व वाली है।”
3. रॉस -“ विद्यालय वे संस्थाएं हैं, जिनको सभ्य मनुष्य के द्वारा इस उद्देश्य से स्थापित किया जाता है कि समाज में सुव्यवस्थित और योग्य सदस्यता के लिए बालकों को तैयारी में सहायता मिले।”
4. के.जी. सैयदेन-“ एक राष्ट्र के विद्यालय जनता की आवश्यकताओं तथा समस्याओं पर आधारित होने चाहिए। विद्यालय का पाठ्यक्रम उनके जीवन का सार रूप होना चाहिए। “इसको सामुदायिक जीवन की महत्वपूर्ण विशेषताओं को अपने स्वाभाविक वातावरण में प्रतिबिम्बित करना चाहिए।”

5.4 समाज का अर्थ:- (Meaning of the society)

सामान्य रूप से व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं। व्यक्तियों के इन समूह विशेषों का अध्ययन सभी सामाजिक विज्ञानों में किया जाता है। मानवशास्त्र में मनुष्यों के किसी भी समूह को समाज की संज्ञा दी जाती है, यहां तक कि आदिम समुदाय को भी समाज कहा जाता है। भूगोल में क्षेत्र विशेष के समान सभ्यता वाले लोगों के समुदाय को समाज कहते हैं। जैसे- भारतीय समाज, यूरोपीय समाज। धर्मशास्त्र में धर्म विशेष के मानने वालों के समुदाय को समाज कहते हैं, जैसे- हिन्दू समाज, ईसाई समाज और मुसलमान समाज। राजनीतिशास्त्र में राज्य विशेष के लोगों के समूह को समाज कहते हैं, जैसे- भारतीय समाज, ब्रिटिश समाज और अमेरिकी समाज। परन्तु समाजशास्त्र में समाज का अर्थ इन सबसे भिन्न रूप में लिया जाता है।

समाजशास्त्रीय अर्थ में व्यक्तियों के समूह को समाज नहीं कहते, अपितु समूह के व्यक्तियों में पाए जाने वाले सामाजिक सम्बन्ध क्या है ? जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति सोचते होते हैं और एक-दूसरे के प्रति कुछ व्यवहार करते हैं तो हम कहते हैं कि उनके बीच सामाजिक

सम्बन्ध स्थापित हो गए हैं। यह आवश्यक नहीं कि ये सम्बन्ध मधुर और सहयोगात्मक ही हों, ये कुछ और संघर्षात्मक भी हो सकते हैं। समाजशास्त्र में इन दोनों प्रकार के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार समाज का सर्वप्रथम मूल तत्व दो या दो से अधिक व्यक्तियों की पारस्परिक जागरूकता है। दो या दो से अधिक व्यक्तियों के एक-दूसरे के प्रति सचेत होने के लिए यह आवश्यक है कि उनके उद्देश्य अथवा विचारों में या तो समानता हो या भिन्नता। इस प्रकार समानता अथवा भिन्नता समाज का दूसरा मूल तत्व होता है। यह पारस्परिक जागरूकता दो ही रूपों में परिणित हो सकती है- सहयोग में अथवा संघर्ष में। इसलिए सहयोग अथवा संघर्ष को समाज का तीसरा मूल तत्व माना जाता है। वास्तुस्थिति यह है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक-दूसरे के प्रति सोचते हैं। और वे तब तक इन सम्बन्धों से नहीं बंधते जब तक उनकी एक-दूसरे से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती। इसे समाजशास्त्री अन्योन्याश्रितता कहते हैं। यह समाज का चौथे मूल तत्व होता है। समाज के बारे में दो तथ्य और हैं, एक तो यह कि समाज अमूर्त होता है। और दूसरा यह कि यह केवल मनुष्य जाति में ही नहीं अपितु पशु-पक्षियों और कीड़ों-मकोड़ों में भी पाया जाता है। यह बात दूसरी है कि समाजशास्त्र में केवल मानव समाज का ही अध्ययन किया जाता है।

5.4.1 समाज की परिभाषाएं:- (Definitions of the society)

सभी समाजशास्त्री समाज को अमूर्त मानते हैं, परन्तु उसकी परिभाषा उन्होंने भिन्न-भिन्न रूप में दी है कुछ मुख्य परिभाषाएं निम्न प्रकार से हैं:

टाकटॉट पार्सन्स के शब्दों में- “समाज को उन मानवीय सम्बन्धों की पूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो साधन तथा साध्य के सम्बन्ध द्वारा क्रिया करने से उत्पन्न हुए हैं, वे चाहे वास्तविक हो अथवा प्रतीकात्मक”।

मैकाइवर और पेज ने समाज को थोड़ा अधिक स्पष्ट रूप में परिभाषित किया है।

“समाज रीतियों तथा कार्य प्रणालियों की अधिकार तथा पारस्परिक सहयोग की, अनेक समूहों और विभागों की, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों और स्वतन्त्रताओं की एक व्यवस्था है। इस सतत परिवर्तनशील व्यवस्था को हम समाज कहते हैं।”

इसी बात को उन्होंने आगे संक्षिप्त रूप में इस प्रकार कहा है-

यह (समाज) सामाजिक सम्बन्धों का एक जाल है, जो सदैव बदलता रहता है।

लापियर महोदय द्वारा- “समाज से तात्पर्य व्यक्तियों के समूह से नहीं अपितु समूह के व्यक्तियों के बीच होने वाली अन्तक्रियाओं की जटिल व्यवस्था से है।”

5.5 विद्यालय तथा समाज का सम्बन्ध (Relationship between School and Society)

विद्यालय के संगठन के विषय में ड्यूवी के विचार उसके इस कथन से स्पष्ट होते हैं कि विद्यालय समुदाय का लघु रूप है। शिक्षा का उद्देश्य बालक का इस प्रकार से विकास करना है कि वह आगे चलकर समाज का उत्तरदायी सदस्य बन सके। बालक जो कुछ करता है, उसका सामाजिक महत्व होता है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक व्यक्ति समाज में अपनी-अपनी भूमिकाओं के अनुरूप कार्य करता है। ऐसा करने से जहां प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, वहां सम्पूर्ण समाज की भी प्रगति होती है। वास्तव में, इसी सामाजिक उद्देश्य से ही प्रत्येक देश में राज्य की ओर से शिक्षा-व्यवस्था की जाती है बालक को शिक्षा के द्वारा सामाजिक विरासत प्रदान की जाती है। अतः, हम जैसा समाज बनाना चाहते हैं, वैसा ही प्रतिरूप विद्यालय में बनाया जाना चाहिए, जिससे कि विद्यालय के जीवन में बालक उस प्रकार के गुणों का विकास कर सके, जिनकी उसे आगे चलकर आवश्यकता पड़ती है। सामूहिक कामों में भाग लेने से बालक की बुद्धि का विकास होता है और अनुभव बढ़ता है, यह अनुभव ही शिक्षा का आधार है। इसी से बालक में चरित्र के विभिन्न गुणों का विकास होता है और व्यक्तित्व का निर्माण होता है। जनतन्त्रीय समाज की स्थापना के लिए विद्यालय में जनतन्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर विद्यालय का संगठन किया जाना चाहिए। ड्यूवी ने तत्कालीन विद्यालयों की संरचना के विषय में इस बात की आलोचना की कि वे समय की मांग पर कोई ध्यान नहीं देते और केवल पुस्तकीय शिक्षा पर जोर देते हैं। विद्यालय में बालक को सामाजिक बनाने की कोई चेष्टा नहीं की जाती। विद्यालय, समाज और परिवार में कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं दिखलाई पड़ता है। इस परिस्थिति की आलोचना करते हुये ड्यूवी ने सन् 1896 में शिकागो में एक प्रयोगात्मक विद्यालय की नींव डाली।

प्रयोगात्मक विद्यालय, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, किसी भी क्षेत्र में प्राचीन रूढ़ियों और परम्पराओं को न मानते हुये प्रयोग के परिणामों के आधार पर ही शिक्षा-योजना चलाती थी। इस विद्यालय में विभिन्न उद्योग के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। यहां पर बढ़ई का काम, लुहार का काम, खाना बनाना, सीना-पिरोना व अन्य नाना प्रकार की वस्तुओं का निर्माण, शारीरिक कार्य, खेलना-कूदना आदि के आधार पर अनेक विषय पढ़ाये जाते थे।

समाज का लघु रूप मानकर ड्यूवी ने विद्यालय में उन सभी क्रियाओं को लघु रूप में किये जाने की सिफारिश की है, जो बालक को बड़े होकर विद्यालय से बाहर करनी पड़ती है। विद्यालय में इस प्रकार की क्रियाओं को करने से बालक के मस्तिष्क और चरित्र का विकास होता है और वह आगे चलकर इन क्रियाओं को कुशलतापूर्वक कर सकता है। ये वे क्रियाएं हैं, जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए उपयोगी हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि विद्यालय भावी जीवन की तैयारी का उद्देश्य लेकर चलता है। ड्यूवी के अनुसार विद्यालय तो स्वयं जीवन है, वह एक सार्वजनिक संस्था है और

सामाजिक जीवन का रूप उपस्थित करता है, जिसमें वे सब क्रियाएं दिखलाई पड़ती हैं, जो बालक को सम्पत्ति के रूप में मिली है और जिससे उसे अपना अंश जोड़ना है किन्तु अनेक क्रियाएं इतनी जटिल और पेचीदा होती हैं कि वे ज्यों की त्यों विद्यालय में नहीं की जा सकती।, इसलिए उन्हें सरल और सन्तुलित रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। समाज के एक अंग के रूप में घर का विद्यालय से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः, इन दोनों में सामंजस्य आवश्यक है। विद्यालय में घर के खेलों और कार्यक्रमों को बनाये रखना चाहिए, जिससे बालक को घर से विद्यालय जाने में कोई असुविधा न हो। विद्यालय का काम परिवार और समाज में सम्बन्ध स्थापित करना है। यदि बालक को परिवार और विद्यालय में कोई अन्तर नहीं मालूम होता तो उसे विद्यालय में अनुकूल करने में कठिनाई नहीं होगी।

समाज में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को भिन्न प्रकार के व्यवसाय करने होते हैं। अब यदि विद्यालय समाज का लघु रूप है तो उसे भी भिन्न-भिन्न व्यवस्था करने के लिए दिये जाने चाहिए, इससे उनका नैतिक विकास होगा और अन्वेषण शक्ति तथा रचनात्मक प्रवृत्ति बढ़ेगी, इससे उनमें ऐसी चेतना और स्फूर्ति उत्पन्न होगी, जिससे बालक आसानी से सामाजिक कार्य से अनुकूल कर सकेगा।

विद्यालय समाज का लघु रूप है। इसका एक अर्थ यह भी है कि वह समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं को प्रतिबिम्बित करता है। अतः उसे समाज की आवश्यकताओं के परिवर्तन के साथ-साथ बदलते रहना चाहिए। आधुनिक काल में समाज के जनतन्त्रीय मूल्यों को सबसे ऊंचा स्थान दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व आज समाज की मांगें हैं ऐसी स्थिति में विद्यालय में ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए, जिनसे विद्यार्थियों में जनतन्त्रीय गुणों का विकास हो। विद्यालय में विभिन्न संस्थाएं स्वयं विद्यार्थियों के द्वारा चलायी जानी चाहिए और इनके संविधान जन्तन्त्रात्मक होने चाहिए। इससे इन संस्थाओं में भाग लेकर विद्यार्थी जनतन्त्रीय जीवन का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकेंगे। विद्यालयों के द्वारा ही समाज से योग्य शासकों और नेताओं का निर्माण होता है। आज के विद्यार्थी ही कल के समाज में विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व करेंगे। इस बात को ध्यान में रखते हुये विद्यालय में अनुशासन, शिक्षा पद्धति, पाठ्यक्रम आदि शिक्षा के विभिन्न अंगों में ऐसे सिद्धान्त अपनाये जाने चाहियें जिनसे बालकों के जनतन्त्रीय नेतृत्व का विकास हो।

एक लघु समुदाय के रूप में विद्यालय के ड्यूवी द्वारा खींचे गये चित्र को अनेक आधुनिक विद्यालयों में सजीव रूप देने का प्रयास किया गया है। उसके विचारों से स्कूल में स्वशासन और स्व - व्यवस्था के सिद्धान्त माने जाने लगे। आधुनिक काल में एकटीविटी स्कूल और योजना-प्रणाली के रूप में विद्यालय-संगठन शिक्षा-पद्धति पर ड्यूवी का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

समाज शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना करके उनसे इस बात की अपेक्षा करता है कि वे बालकों में उन गुणों को विकसित करें, जिन्हें प्राप्त कर वे समाज की विभिन्न क्रियाओं में कुशलतापूर्वक भाग ले सकें। समाज अपनी ओर से प्रत्येक व्यक्ति के विकास एवं उसके हितों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील

रहता है और उससे अपेक्षा करता है। कि वे सामाजिक जीवन को स्थायित्व प्रदान करें। इससे स्पष्ट है कि विद्यालय का सबसे महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व यह है कि बालक तथा बालिकाओं को समाज के आदर्शों, विचारधाराओं एवं परम्पराओं आदि से अवगत कराये तथा उनमें समाज को समृद्ध बनाने के लिए उत्कण्ठा उत्पन्न करें।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज शिक्षा की समुचित व्यवस्था किये बिना जीवित नहीं रह सकता और न ही शैक्षिक संस्थाएँ समाज की मांगों को पूर्ण किये बिना स्थिर रह सकती हैं। जिस समाज में विद्यालय स्थित होता है, उसका विद्यालय पर सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव अवश्य पड़ता है। जो नागरिक विद्यालय का व्यय-भार उठाते हैं वे उसकी शिक्षा की मात्रा तथा प्रकार पर नियन्त्रण रखते हैं। विद्यालय अपना आदर्श प्रस्तुत करके तथा समाज की अप्रत्यक्ष रूप से आलोचना करके उसके दूषित वातावरण को शुद्ध बनाने का प्रयत्न करता है। साथ ही वह ऐसे नागरिकों को तैयार करता है जो भावी समाज का निर्माण करते हैं अतः इन दोनों में पारस्परिक निर्भरता पायी जाती है। विद्यालय तथा समाज के सम्बन्धों के विषय में सी.एम. कैम्पबेल (C.M. Campbell) ने निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया है-

1. विद्यालय कार्यक्रम तथा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए विद्यालय का पाठ्यक्रम समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाना चाहिए।
2. विद्यालय को अपने कार्यक्रम को पूर्ण करने के लिए समाज के समस्त साधनों का उपयोग करना आवश्यक है। अतः समाज का उत्तरदायित्व है कि वह अपने समस्त साधनों द्वारा विद्यालय के कार्य में सहायता प्रदान करे।
3. विद्यालय सामाजिक विकास की योजनाओं में सक्रिय भाग लेकर तथा समाज को योग्य नेतृत्व प्रदान करके समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करता है।
4. विद्यालय तथा समाज के सम्बन्धों को देखने से स्पष्ट है कि इनका एक दूसरे से सहयोग के बिना कार्य नहीं चल सकता। विद्यालयों का कर्तव्य है कि वे बालकों को जीवन के विभिन्न पक्षों से अवगत कराये जिससे वे परिवर्तनशील वातावरण के विभिन्न तत्वों को समझ सकें और अपनी संस्कृति की अच्छी बातों को ग्रहण करके सामाजिक उन्नति में सहयोग दे सकें।

5.5.1 समाज में विद्यालय का स्थान - उसका महत्व व आवश्यकता

(Place of School in Society - Its Importance and Necessity)

समाज में विद्यालय के स्थान, महत्व और आवश्यकताओं पर प्रकाश डालते हुए एस. बालकृष्ण जोशी ने लिखा है-“किसी भी राष्ट्र की प्रगति का निर्माण विधान-सभाओं, न्यायालयों और फैक्ट्रियों में नहीं, वरन् विद्यालयों में होता है”

विद्यालय को यह महत्वपूर्ण स्थान कुछ कारणों से दिया जाता है। हम उनका उल्लेख नीचे कर रहे हैं-

1. जीवन की जटिलता: (Complexity of life) आज का जीवन प्राचीन काल के जीवन के समान सरल और सुखमय नहीं है। उस समय मनुष्य के पास अपनी सब आवश्यकताओं को स्वयं पूर्ण करने और अपने बच्चों की शिक्षा की स्वयं देखभाल करने के लिए समय था। आज जनसंख्या की वृद्धि, आवश्यकताओं की अधिकता और वस्तुओं के बढ़ते हुए मूल्य के कारण जीवन बहुत कठिन हो गया है। मनुष्य को अपने कार्यों से इतनी फुरसत नहीं मिलती है कि वह अपने बच्चों की शिक्षा की देखभाल कर सके। इसलिए उसने यह कार्य विद्यालय को सौंप दिया है।
2. विशाल सांस्कृतिक विरासत: (Extensive Cultural Heritage) आज की सांस्कृतिक विरासत बहुत विशाल हो गई है। इसमें अनेक प्रकार के ज्ञान, कुशलताओं और कार्य करने की विधियों का समावेश हो गया है। ऐसी विरासत की शिक्षा देने में व्यक्ति अपने को समर्थ पाते हैं। अतः उन्होंने यह कार्य विद्यालय को सौंप दिया।
3. विशिष्ट वातावरण की अवस्था: (Prositon of Special Environment) विद्यालय छात्रों को एक विशिष्ट वातावरण प्रदान करता है। यह वातावरण शुद्ध सरल और सुव्यवस्थित होता है। इसके छात्रों की प्रगति पर स्वस्थ और शिक्षाप्रद प्रभाव पड़ता है। ऐसा वातावरण शिक्षा का और कोई साधन प्रदान नहीं कर सकता है।
4. घर व विश्व को जोड़ने वाली कड़ी: (Connecting Link Between the home and the world) बालक की शिक्षा में बहुत महत्वपूर्ण स्थान घर है। घर में रहकर वह अनुशासन, सेवा, सहानुभूति, निःस्वार्थता आदि गुणों को सीखना है। पर घर की चाहरदीवारी में बंधे रहने के कारण उनके ये गुण अपने परिवार के व्यक्तियों तक ही सीमित रहते हैं। फलतः उसका दृष्टिकोण संकुचित होता है। विद्यालय में विभिन्न वर्गों और सम्प्रदायों के बालकों के सम्पर्क में आकर उसका दृष्टिकोण विस्तृत होता है। साथ ही बाह्य समाज से उसका सम्पर्क स्थापित हो जाता है। इस प्रकार “विद्यालय” घर और बाह्य जीवन को जोड़ने की कड़ी है। रेमॉण्ट (Raymont) का कथन है- “विद्यालय बाह्य जीवन के बीच की अर्द्धपारिवारिक कड़ी है, जो बालक की उस समय प्रतीक्षा करता है, जब वह अपने माता-पिता की छत्रछाया को छोड़ता है।”
5. व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास: (Harmonious Development of Personality) घर, समाज, धर्म आदि शिक्षा के अच्छे साधन हैं। पर इनका न तो कोई निश्चित उद्देश्य होता है और न पूर्व नियोजित कार्यक्रम। फलतः कभी-कभी बालक के व्यक्तित्व पर इनका बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत, विद्यालय का एक निश्चित उद्देश्य और पूर्व-नियोजित कार्यक्रम होता है। परिणामस्वरूप, इसका बालक पर व्यवस्थित रूप में प्रभाव पड़ता है। और उसके व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास होता है।
6. बहुमुखी सांस्कृतिक चेतना का विकास: Development of Cultural Pluralism. विद्यालय में विभिन्न परिवारों, समुदायों और संस्कृतियों से छात्र आते हैं। परस्पर सम्पर्क के कारण

उनमें एक-दूसरे के सांस्कृतिक गुण आ जाते हैं अतः विद्यालयों को छात्रों में बहुमुखी संस्कृति का विकास करने का महत्वपूर्ण साधन समझा जाता है।

7. आदर्शों व विचारधाराओं का प्रसार: Propagation of Ideals and Ideologies राज्य के आदर्शों और विचारधाराओं को फैलाने के लिए विद्यालय को अति महत्वपूर्ण साधन माना गया है। इसलिए, सभी प्रकार के राज्यों-लोकतन्त्रीय, साम्यवादी आदि में विद्यालय का स्थान गौरवपूर्ण है।
8. समाज की निरन्तरता व विकास: (Perpetuation and Development of Society) विद्यालय एक प्रमुख सामाजिक संस्था है। शिक्षा की प्रक्रिया सामाजिक होने के कारण विद्यालय सामुदायिक जीवन का वह स्वरूप है, जिसमें समाज की निरन्तरता और विकास के लिए सभी प्रभावपूर्ण साधन केन्द्रित होते हैं। विद्यालय के इसी महत्व के कारण टी.पी. नन (T.P. Nunn) ने लिखा है-“ विद्यालय को समस्त संसार का नहीं, वरन् समस्त मानव-समाज का आदर्श लघु रूप होना चाहिए।”
9. विद्यालय शिक्षा का उत्तम स्थान (T.P. Nunn) विद्यालय, घर की अपेक्षा शिक्षा का उत्तम स्थान है। कारण यह है कि विद्यालय में विभिन्न आदतों, रूचियों और दृष्टिकोणों के बालक आते हैं। फलतः परस्पर सम्पर्क के कारण बालक उन बातों को सीखते हैं, जिन्हें वे घर की चहारदीवारी के अन्दर नहीं सीख सकते हैं यदि बालकों को संसार के ढंगों से परिचित कराना है, यदि उनको सामाजिक शिष्टाचार और सहानुभूति सिखानी है, यदि उनको निष्पक्षता और सहयोग के महत्व को बताना है, तो उनको घर से बाहर विद्यालय में भेजना अनिवार्य है।
10. शिक्षित नागरिकों का निर्माण: (Creation of Educated Citizens) विद्यालय ही एक मात्र वह साधन है, जिसके द्वारा शिक्षित नागरिकों का निर्माण किया जा सकता है। यदि एक देश के समस्त बालकों को एक निश्चित आयु तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जाती है, तो वे स्थायी रूप से साक्षर हो जाते हैं। साक्षर होने के साथ-साथ उनमें धैर्य, सहयोग उत्तरदायित्व आदि गुणों का विकास होता है। इस प्रकार, बड़े होकर बालक राज्य के उपयोगी नागरिक सिद्ध होते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर विद्यालय के स्थान, महत्व और आवश्यकता को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है वास्तव में, व्यक्ति और समाज-दोनों की प्रगति के लिए विद्यालय अति आवश्यक है। इसलिए किसी भी सामाजिक ढांचे में इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

टी.पी.नन ने सत्य लिखा है -

“एक राष्ट्र के विद्यालय उसके जीवन के अंग है, जिनका विशेष कार्य है- उसकी आध्यात्मिक शक्ति को दृढ़ बनाना उसकी ऐतिहासिक निरन्तरता को बनाये रखना उसकी भूतकाल की सफलताओं को सुरक्षित रखना और उसके भविष्य की गारण्टी करना।”

विद्यालय समुदाय के जीवन का एक प्रतिबिम्ब है और होना चाहिए। इसलिए भारत के सार्वजनिक विद्यालयों के भारतीय जीवन-शैली के अनुकूल बनाया जाना चाहिए।”

अपनी उन्नति जानिए:-

1. परम्परागत विद्यालय में किस प्रकार की शिक्षा दी जाती है?
2. किस शताब्दी में छापने के यन्त्रों का आविष्कार हो गया था?
3. समाजशास्त्र में किस समाज का अध्ययन किया जाता है।
4. सामान्य रूप से किसके के समूह को समाज कहते हैं।

5.6 सारांश

अब तक विद्यालय को मुख्यतः ऐसा स्थान समझा जाता था, जहाँ पाठ्यक्रम के कुछ विषयों में निर्देश दिया जाता है। इस प्रकार विद्यालय का कार्य-परम्परागत विषयों का परम्परागत ढंग से शिक्षण करने तक सीमित था। पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण सूचनाएं प्रदान करने के दृष्टिकोण से किया जाता था और शिक्षण के अन्तर्गत बालकों को केवल सूचनाएं प्रदान की जाती थीं। निरीक्षण एवं परीक्षाएं सामान्यतः आज भी निर्देश के इस सूचनात्मक पक्ष पर बल देती है। यह सत्य है कि सूचनाएं शिक्षा का आवश्यक अंग है। परन्तु इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि जिस प्रकार ज्ञान सूचना से अधिक है, उसी प्रकार शिक्षा भी ज्ञान से अधिक है। ज्ञान ही सब कुछ नहीं है और न शिक्षा का साध्य है। आधुनिक युग में शिक्षाशास्त्रियों द्वारा इस तथ्य की अनुभूति ने उसको विद्यालय की इस परम्परागत धारणा को समाप्त करने के लिए बाध्य किया और उन्होंने विद्यालय को नवीन दृष्टिकोण के अनुसार देखना प्रारम्भ किया। नवीन दृष्टिकोण के अनुसार विद्यालय को समाज का एक लघु रूप माना गया है। पाश्चात्य देशों में यह नवीन दृष्टिकोण प्रतिदिन बल प्राप्त करता जा रहा है और परम्परागत विद्यालयों को इसी दृष्टिकोण के अनुसार परिवर्तित करने का प्रयास किया जा रहा है।

मध्यमिक शिक्षा -आयोग का मत है, “ इसमें कोई संदेह नहीं है कि विद्यालय एक समाज होगा परन्तु वह वृहत् समाज के अन्दर एक छोटा समाज होगा और उसकी सफलता एवं जीवन शक्ति उसके तथा वृहत् समाज के बीच होने वाले निरन्तर स्वस्थ प्रभावों पर निर्भर होगी। हम जिस बात को देखना चाहते हैं, वह यह है कि पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में जो समस्याएं उत्पन्न होती हैं और वहां जो अनुभव प्राप्त होते हैं, उनको विद्यालय में लाया जाय और शिक्षा को उन पर आधारित किया जाय, जिससे विद्यालय का समाज के वास्तविक जीवन से घनिष्ठ सबन्ध स्थापित हो सके।

दूसरी ओर विद्यालय में जो नया ज्ञान, कौशल, मनोवृत्तियां, मूल्य बालक प्राप्त करें, उन्हें समाज की समस्याओं का समाधान करने एवं उसके स्तर को ऊंचा करने के लिए प्रयोग में लाया जाय। ”

इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा-आयोग के विद्यालय तथा समाज की पारस्परिक उपयोगिता की वृद्धि में आवश्यकता का ही अनुभव नहीं किया, वरन् इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सुझाव दिया कि विद्यालय को समाज का लघु रूप बनाया जाय। समाज की प्रवृत्तियों, क्रियाकलापों एवं विभिन्न अवस्थाओं को विद्यालय में प्रतिबिम्बित किया जाना चाहिए। जिससे विद्यार्थी अपने शाला जीवन में ही भावी नागरिक जीवन के प्रत्यक्ष व व्यवहारिक अनुभव प्राप्त कर सके। विद्यालय जीवन सामाजिक जीवन का एक अंग है। अतः विद्यालय में बालक तथा बालिकाओं को ऐसे अवसर प्रदान किये जाने चाहिए जिससे लाभ उठाकर वे विद्यालय छोड़ने के पश्चात् सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने की क्षमता प्राप्त कर सके। इसके लिए विद्यालय में सामाजिक जीवन की क्रियाओं और अनुभवों को सरल, शुद्ध एवं सन्तुलित रूप में बालकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।

विद्यालय को समाज का लघु रूप बनाने के लिए विद्यालय में केवल उन अनुभवों को ही स्थान दिया जाय तो सामाजिक जीवन के उज्ज्वल स्वरूप की व्याख्या करें तथा उन क्रियाओं को स्थान मिले जिनका जीवन में स्थायी महत्व है। इस प्रकार विद्यालय में समाज का पवित्र रूप प्रस्तुत किया जाय और बाह्य सामाजिक जीवन से केवल उन बातों को ही लिया जाय जो शुद्ध एवं निर्दोष है।

5.7 शब्दावली: -

प्रयोगात्मक विद्यालय :- जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, किसी भी क्षेत्र में प्राचीन रूढ़ियों और परम्पराओं को न मानते हुये प्रयोग के परिणामों के आधार पर ही शिक्षा-योजना चलाती थी। इस विद्यालय में विभिन्न उद्योग के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। यहां पर बढ़ई का काम, लुहार का काम, खाना बनाना, सीना-पिरोना व अन्य नाना प्रकार की वस्तुओं का निर्माण, शारीरिक कार्य, खेलना-कूदना आदि के आधार पर अनेक विषय पढ़ाये जाते थे।

जीवन की जटिलता (Complexity of life):- आज का जीवन प्राचीन काल के जीवन के समान सरल और सुखमय नहीं है। उस समय मनुष्य के पास अपनी सब आवश्यकताओं को स्वयं पूर्ण करने और अपने बच्चों की शिक्षा की स्वयं देखभाल करने के लिए समय था। आज जनसंख्या की वृद्धि, आवश्यकताओं की अधिकता और वस्तुओं के बढ़ते हुए मूल्य के कारण जीवन बहुत कठिन हो गया है।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. परम्परागत विद्यालय में केवल औपचारिक शिक्षा दी जाती है।
2. पन्द्रहवीं शताब्दी में छापने के यन्त्रों का आविष्कार हो गया था।

-
3. समाजशास्त्र में केवल मानव समाज का ही अध्ययन किया जाता है।
 4. सामान्य रूप से व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं।
-

5.9 संदर्भ ग्रंथ :-

1. सक्सेना, एन. आर व चतुर्वेदी स्वरूप शिखा (2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, मेरठ, आर. लाल बुक डिपो।
 2. पाठक एवं त्यागी, शिक्षा के सिद्धांत, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर।
 3. लाल, रमन बिहारी. (2007) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, मेरठ, रस्तोगी पब्लिकेशन।
 4. पचौरी (डॉ) गिरीश (2007) शिक्षा और समाज मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
 5. पाण्डेय (डॉ) रामशकल (2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगरा, अग्रवाल पब्लिशिंग हाउस।
 6. सक्सेना एन. आर. स्वरूप व पाण्डेय (डॉ) के. पी., (1993-94) शिक्षा सिद्धांत, मेरठ, आर. लाल. बुक डिपो।
-

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न :-

1. विद्यालय: समाज का लघु रूप है। इस कथन की व्याख्या अपने शब्दों में लिखें।
2. विद्यालय का अर्थ एवं परिभाषा को लिखें।
3. समाज में विद्यालय की आवश्यकता एवं महत्व को स्पष्ट कीजिए।
4. विद्यालय एवं समाज में क्या सम्बन्ध है। स्पष्ट कीजिए।
5. आप एक अच्छा विद्यालय किसे कहेंगे। और क्यों, स्पष्ट कीजिए।

इकाई-6 शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन(Education and Social Change)

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- भाग एक-
- 6.3 शिक्षा और समाज
 - 6.3.1 शिक्षा का अर्थ
 - 6.3.2 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ
 - 6.3.3 सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारक-
अपनी उन्नति जानिए
- भाग दो-
- 6.4 सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारकों की विशेषताएँ-
 - 6.4.1 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ
अपनी उन्नति जानिए
- भाग तीन-
- 6.5 शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन :-
अपनी उन्नति जानिए
- 6.6 सारांश
- 6.7 शब्दावली
- 6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 6.9 संदर्भ
- 6.10 उपयोगी/सहायक पुस्तकें
- 6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव स्वभाव से ही एक गतिशील प्राणी है। अतः मानव समाज कभी भी स्थिर नहीं रहता। उसमें सदा परिवर्तन हुआ करता है। डायसन और गेटिस ने ठीक ही लिखा है “ क्रिया और परिवर्तन सदैव उपस्थित सार्वभौम तथ्य है। एक से जीवन से मानव उब जाता है। घनिष्ठ से घनिष्ठ प्रेममय सम्बन्धों में भी कुछ न कुछ परिवर्तन की इच्छा मानव स्वभाव है। प्रसिद्ध मनोविश्लेषण वादी फ्राइड के अनुसार मनुष्य में परस्पर विरोधी भाव मौजूद रहते हैं। जहाँ प्रेम है वहाँ घृणा भी है। किसी भी देश का इतिहास कभी एक सा नहीं रहा, राज्य बनते बिगड़ते रहते हैं। नई विचार धाराएं अपनायी जाती हैं। पुरानी रुढ़ियाँ और परम्पराएं टूटती रहती हैं। परिवार, विवाह, जाति, सभी संस्थाओं में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धर्म और राज्य, शिक्षा के आदर्शों, स्त्री पुरुष के संबंधों में जीवन के सभी पक्षों में यह परिवर्तन देखा जा सकता है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया सार्वभौम है।

6.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

1. सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारकों को जान सकेंगे।
2. सामाजिक व्यवस्था के अर्थ तथा संरचना को जान सकेंगे।
3. सामाजिक परिवर्तन का ज्ञान करा सकेंगे।
4. भारतीय संस्कृति की विशेषताओं का ज्ञान प्रदान करा सकेंगे।
5. शिक्षा व संस्कृति का एक दूसरे पर प्रभाव जान सकेंगे।
6. आधुनिकीकरण के बारे में जान सकेंगे।

भाग – एक

6.3 शिक्षा और समाज (Education and Society)

समाज, समाजशास्त्र तथा शैक्षिक समाजशास्त्र का शिक्षा से गहरा सम्बन्ध है। इसलिए प्रत्येक समाज अपनी आकांक्षाओं, आवश्यकताओं तथा आदर्शों को सामने रखते हुए शिक्षा की प्रक्रिया को इस प्रकार से नियोजित करता है कि वह अपने आदर्शों को प्राप्त कर ले तथा उसके सभी व्यक्ति उपयोगी सदस्य बन सकें। यह महान कार्य उसी समय पूरा हो सकता है जब समाज के सभी व्यक्ति उसके आदर्शों के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन करते हुए उसके साथ अनुकूलन कर सकें। शिक्षा इस सम्बन्ध में सहायता कर सकती है। यही कारण है कि समय तथा परिस्थिति के अनुसार समाज यह निश्चित करता है कि व्यक्ति को किस प्रकार की शिक्षा दी जाए, जिससे वह उपयोगी और श्रेष्ठ

सदस्य बनकर समाज को सबल, सुदृढ़ तथा शक्तिशाली बना सके। स्पष्ट है कि समाज शिक्षा का महत्वपूर्ण साधन है।

6.3.1 शिक्षा का अर्थ Meaning of Education

शिक्षा के सम्बन्ध में ऐसी धारणा है कि लैटिन भाषा के तीन शब्दों Educatum, Educare एवं Educere से शिक्षा शब्द की उत्पत्ति हुई है। Educatum का आशय है 'Act of Teaching or training' और Educare का अर्थ है 'To educate, To bring up' or To raise और Educere का अर्थ है 'To bring forth' इस तरह अंग्रेजी शब्द Education का शाब्दिक अर्थ है- प्रशिक्षण, संवर्धन एवं पथ प्रदर्शन करने वाली प्रक्रिया। दूसरी तरह से एजुकेटम में दो शब्द हैं- ए और जुको। ए का अर्थ है 'अन्दर से' और जुको का अर्थ है 'बाहर लाना'। इस तरह इसका अर्थ हुआ अन्दर से बाहर लाना। लेकिन शिक्षा शास्त्र शब्द को ज्यादा मान्यता मिली है। जिसका अर्थ है पालन पोषण करना, संवर्धन करना एवं पथ प्रदर्शन करना। भारतीय विद्वानों का मानना है कि शिक्षा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के शिक्ष धातु से हुई है। जिसका आशय होता है सीखना और सिखाना। शिक्षा शब्द का उपयोग अब अध्ययन के लिए उपयोग होने लगा है। शिक्षा शब्द में भी दोनों का भाव सम्मिलित है। निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बालकों की जन्मजात प्रवृत्तियों का विकास किया जा सकता है।

6.3.2 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ Meaning of Social Change

मानव का जीवन एवं उसकी परिस्थितियाँ सदैव एक सी नहीं रहती हैं। अपितु इसके विचार, आदर्श मूल्य एवं भावना में किसी प्रकार का परिवर्तन अवश्य होता है। जब मानव अपने को परिवर्तित करता है तो वह समाज की एक ईकाई होने के कारण समाज में भी परिवर्तन कर देता है। यद्यपि किसी समाज में परिवर्तन तीव्रता से होता है तो किसी में मंद गति से होता है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। आज वैज्ञानिक अवष्कारों, नई-नई मशीनों के उपयोग यातायात और दूर संचार के साधनों के कारण प्राचीन एवं मध्यकालीन समाज की अपेक्षा आधुनिक समाज में प्रतिदिन क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों को ही सामाजिक परिवर्तन की संज्ञा दी जा रही है। आजकल सम्पूर्ण विश्व में सामाजिक परिवर्तन तीव्र गति से हो रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा नगरीय क्षेत्रों में अविकसित समाज की अपेक्षा विकसित समाज में दक्षिणी गोलार्द्ध की अपेक्षा उत्तरी गोलार्द्ध में सामाजिक परिवर्तन अधिक विविधता एवं तीव्रता से हो रहे हैं।

यद्यपि समाज में होने वाला प्रत्येक प्रकार का परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन की श्रेणी में नहीं आता है। आधुनिक समाजशास्त्रियों की भाषा में समाज शब्द के स्थान पर सामाजिक व्यवस्था Social System पद का प्रयोग अधिक प्रचलित है। तथा सामाजिक व्यवस्था में तीन भाग या अंग गिनाए गए हैं।

6.3.3 सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारक –

भारतीय समाज को प्रभावित करने वाले दो कारक हैं।

I बाह्य कारक - बाह्य कारक पर मनुष्य का नियंत्रण पूरी तरह से नहीं हो सका है केवल आंशिक संशोधन इसमें सम्भव हो पाता है। जैसे प्राकृतिक अथवा जैविक कारक।

II आंतरिक कारक - आंतरिक कारक यद्यपि मानव नियंत्रण में है फिर भी उनका बाध्यता मूलक प्रभाव सामाजिक सम्बन्धों पर पड़ता है जैसे औद्योगिकीय एवं सांस्कृतिक कारक।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

1. समाज में परिवर्तन के दो प्रमुख कारक बताइये।
2. सामाजिक परिवर्तन के दो प्रमुख कारण बताइये।
3. एन.एस.एस. राष्ट्रीय समाज सेवा कार्यक्रम किससे सम्बंधित नहीं है।
(अ) प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम (ब) स्वास्थ्य कार्यक्रम (स) बाढ़
(द) खेल
4. सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः या वसुधैव कुटुम्बकम् की विशेषता विश्व में किस देश की है।
(अ) अमरिका (ब) रूस (स) श्रीलंका
(द) भारत
5. धर्म निरपेक्ष शब्द किस वर्ष में जोड़ा गया है।
भाग दो-

6.4 सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारकों की विशेषताएँ –

1. **भौतिक या प्राकृतिक कारक** – जैसे जैसे सभ्यता का विकास होता जा रहा है वैसे-वैसे भौतिक तथा प्राकृतिक कारकों पर मानव नियंत्रण की आशा बढ़ती जा रही है। आज मनुष्य ने नदियों पर पुलों का निर्माण पहाड़ों के बीच रस्ता बनाया है। पथरीली तथा रेगिस्तानी जगहों तथा जंगलों को काटकर उसे कृषि योग्य बनाया। फिर भी प्राकृतिक कारकों का बाध्यातामूलक प्रभाव मानव जीवन और उसके अंतःसंबंधों पर पड़ता चला आ रहा है। जैसे जलवायु मौसम परिवर्तन, बाढ़, भूकम्प आदि। जिसका मानव सम्बंधो पर प्रभाव पड़ता है, ऋतुओं के बदलने का प्रभाव हमारे सामाजिक सम्बंधो पर पड़ता है।
2. **जैविक कारण** (जनसंख्या में परिवर्तन) – भारतीय समाज को प्रभावित करने का श्रेय जनसंख्या में परिवर्तन भी है। सामाजिक सम्बंध मनुष्यों पर आश्रित है। अतः उनकी संख्या में वृद्धि अथवा कमी के कारणों को सामाजिक परिवर्तन से सम्बोधित करते हैं। यदि किसी

समाज की जनसंख्या एका - एका बढ़ जाती है। तो उसके परिणामस्वरूप विभिन्न सामाजिक समस्याओं जैसे भोजन, रहन-सहन, दवा - दारु मकान कपड़े की समस्याओं के द्वारा सामाजिक सम्बन्धों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या की अधिकता के कारण यहाँ लोगों को उचित मात्रा में पौष्टिक आहार नहीं मिल रहा है। जिसके कारण लोगों की कार्यक्षमता कम हो रही है। प्रति व्यक्ति आय नहीं बढ़ रही है। अतः समाज पिछड़ा हुआ राष्ट्र कहलाता है।

3. **प्रौद्योगिकीय कारक**—मशीनों के प्रयोग के कारण आज कृषि के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं बिजली द्वारा सिंचाई ने प्रकृति पर निर्भरता को कम किया है। यातायात के साधनों ने जहाँ दूरी को कम किया है, वहीं पर जाति भेद-भाव को कम किया है। मोबाइल के बिना व्यक्ति का जीवन अधूरा सा रहता है। आज प्रौद्योगिकी के कारण रीति-रिवाजों, सामाजिक मूल्यों, आर्थिक, धार्मिक संस्थाओं में परिवर्तन चारों ओर देखा जा रहा है।
4. **सांस्कृतिक कारक**—संस्कृति का सम्बन्ध जीवन की सम्पूर्ण गतिविधि से होता है। संस्कृति के अंतर्गत हम भाषा, साहित्य, धर्म, सुख सुविधा की वस्तुएँ, यहाँ तक कि वे सभी चीजें जो मानव समाज से सम्बन्ध रखते हैं, उन्हें सम्मिलित करते हैं। यदि इन तत्वों में परिवर्तन हुआ तो सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन अनिवार्य हो जाता है। सामाजिक मूल्य जो व्यक्तियों के व्यवहारों को निर्देशित करते हैं, यदि ये परिवर्तित हैं तो उससे भी सामाजिक परिवर्तन होता है। अब आधुनिक ब्राह्मण मांस मदिरा, धूम्रपान का प्रयोग बेधड़क कर रहा है, जबकि उसके पिता और पितामह उसका विरोध करते आये हैं। पहले सवर्ण स्त्रियाँ मांस नहीं खाती थीं। अब मांस खाने की बात तो दूर रही वे खुली सड़क पर सिगरेट भी पीती हैं, तथा रेस्टॉरेंट व क्लबों में शराब का प्रयोग भी करती हैं। इस प्रकार संस्कृति के पहलू में परिवर्तन के कारण ही सामाजिक परिवर्तन हो रहा है।
5. **औद्योगीकरण Industrialization** - औद्योगीकरण से तात्पर्य औद्योगिक क्रांति से है जिसके परिणाम स्वरूप किसी समाज में बड़े उद्योग धंधों का विकास होता है। भारत वर्ष में प्रौद्योगिक कारक सदियों से सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करता रहा है। फिर भी उसे हम औद्योगीकरण नहीं कहेंगे। भारत वर्ष में औद्योगीकरण का श्रीगणेश 1956 ई. में माना जाता है। बड़े-बड़े उद्योगों के विकास के कारण जहाँ एक ओर आर्थिक विकास में सहायता मिल रही है, वहीं पर दूसरी ओर विभिन्न सामाजिक समस्याएं जैसे- बेकारी, गंदगी, शारीरिक अपराध, चोरी आदि के कारण सामाजिक सम्बंध परिवर्तित हो रहे हैं। लोग अपने गांवों को छोड़कर उन स्थानों को जाने लगे हैं, जहां उद्योग स्थापित किये जा रहे हैं। औद्योगीकरण ने भारतीय समाज को अब स्थिर समाज से गतिशील समाज में परिवर्तित कर दिया है।
6. **पश्चिमीकरण Westernization** - भारतीय समाज के ऊपर पश्चिमी समाजों का व्यापक प्रभाव पड़ा है। जिसके कारण यहां की मूलभूत सामाजिक संस्थाएं प्रभावित हो रही हैं। सन्

1600 में अंग्रेज भारतीय समाज के सम्पर्क में आये तभी से उन्होंने यहां के निवासियों को अपने चाल-ढाल, पोशाक, बोली, रहन-सहन से प्रभावित करना शुरू कर दिया था। इसका सबसे अधिक प्रभाव यहां के उच्च लोगों पर पड़ा। उनका रहन-सहन, पोशाक, बोलचाल भी अंग्रेजों की भांति होने लगा। पश्चिमीकरण ने जातिगत दूरी तथा भेद-भाव को कम करने में मदद दी है। वहीं पश्चिमीकरण ने मानवतावाद, समानता तथा धर्म निरपेक्षता की भावना को बढ़ाने में मदद दी है।

7. **जनतंत्रीकरण Democratization** - भारत में तीव्र सामाजिक परिवर्तन का एक कारण जनतंत्रीकरण का विकास है। प्रजातांत्रिक नियोजन जिसे हम पंचवर्षीय नियोजन भी कहते हैं, के द्वारा भारतीय सामाजिक संगठन में मूलभूत परिवर्तन हुआ है। जनतंत्रीकरण अच्छे व्यक्तित्व में विकास के लिए कृत संकल्प है। यही कारण है कि आज धर्म, जाति, धन, लिंग आदि भेदों के आधार पर सामाजिक व्यवहार में कोई अंतर है। समाज में पिछड़े लोगों विशेषकर अस्पृश्यों की समस्या का समाधान बहुत अंशों में इस प्रक्रिया द्वारा सम्भव हो सका है। प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अभिव्यक्ति, विवाह, शिक्षा तथा किसी उचित कार्य को करने की स्वतंत्रता है। जिसकी स्पष्ट झलक सामाजिक परिवर्तन है।
8. **नगरीकरण Urbanization** - भारत में सामाजीकरण का एक अन्य कारण ग्रामीण समुदाय पर नगरीकरण का प्रभाव है। यातायात एवं आवागमन की सुविधा के कारण अब गाँव का व्यक्ति रोज छोटे-मोटे कार्यों के लिए भी नगर में आता है और वह यहां की चमक-दमक से इतना प्रभावित होता है कि वह अपने ग्रामीण जीवन में भी उन्हीं के अनुरूप व्यवहार शुरू कर देता है और कभी-कभी तो वह अपना गांव छोड़कर शहर में बस जाता है। नगरों में लोगों के बीच द्वितीयक सम्बंध व्यक्तिवाद को बढ़ावा दे रहे हैं। जिसके कारण परम्परागत सामाजिक संस्थाएं जैसे परिवार तथा विवाह परिवर्तित हो रहे हैं, जो सामाजिक परिवर्तन का मूल कारण है।

6.4.1 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ- (Characteristic of Social Change)

डब्ल्यू. मूर व समाजशास्त्री के अनुसार सामाजिक परिवर्तन की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

1. प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन में गंभीरता, दीर्घकालीनता एवं स्थायित्वता की प्रवृत्ति होती है।
2. प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन के तीन तत्व होते हैं-
 - i. वस्तु
 - ii. भिन्नता
 - iii. समय
3. सामाजिक परिवर्तन जटिल होते हैं।
4. सामाजिक परिवर्तन अचानक नहीं होते न ही उनकी भविष्यवाणी ही की जा सकती है।
5. सामाजिक परिवर्तन से न केवल व्यक्ति का जीवन ही प्रभावित होता है बल्कि सम्पूर्ण सामाजिक संरचना और व्यवस्था की कार्य पद्धति में भी परिवर्तन आता है।

6. आधुनिक समाजों में परिवर्तन तीव्र गति से तथा समाजों में सामाजिक परिवर्तन धीरे-धीरे होता है।
7. सामाजिक परिवर्तन समाज के भीतर से भी और बाहर से भी संभव है।
8. सामाजिक परिवर्तन व्यक्तिगत अनुभव और समाज के विभिन्न पक्षों को विस्तृत रूप से प्रभावित करते हैं।
9. सामाजिक परिवर्तन प्रायः सांस्कृतिक विलम्बना प्रस्तुत करते हैं।
10. सामाजिक परिवर्तन के प्रारम्भ में लोगों द्वारा विरोध किया गया और बाद में वे समाजोपयोगी सिद्ध हुए हैं।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

1. सामाजिक व्यवस्था के तीन अंगों के नाम लिखिए।
2. सामाजिक परिवर्तन की भविष्यवाणी की जा सकती है।
(अ) हां (ब) नहीं (स) अनिश्चित
3. सामाजिक परिवर्तन में निम्नलिखित में किसकी भूमिका महत्वपूर्ण है।
(अ) शिक्षा (ब) धर्म (स) ईश्वर (द) इनमें से कोई नहीं
4. "समाज सामाजिक सम्बंधों का जाल है"। यह किसका कथन है।
(अ) मैकाइवर (ब) एम. निवासन (स) दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

भाग तीन-

6.5. शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन :- (Social Change by Education)

1. शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन :- शिक्षा से समाज में जागरूकता आती है जागरूकता से क्रांति आती है और क्रांति से परिवर्तन आता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि शिक्षा समाज में बदलाव लाने का सबसे अच्छा माध्यम है।
2. सामाजिक मूल्यों का विकास:- मैकाइवर तथा पैज के अनुसार समाज सम्बंधों का जाल है इन सामाजिक सम्बंधों का आधार समाज है। इन सामाजिक मूल्यों के निर्देश में ही सामाजिक नियम बनते हैं जो कि हमारे सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित करते हैं, मानव त्याग, सेवा, आत्म-नियंत्रण, सहनशीलता के आधार पर ही समाज बना रह सकता है। बड़ों का आदर, आज्ञापालन, निष्ठा, आस्था तथा ईमानदारी के बिना समाज आगे नहीं बढ़ सकता है।
3. समाज सेवा कार्यक्रमों को शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाना:- साक्षरता न तो शिक्षा का आदि है और न अंत। अतः शिक्षा को ज्ञानात्मक पक्ष तक ही सीमित न रखकर व्यवहार-

- रूपांतरण की क्रियात्मक शिक्षा पर जोर देना होगा। इसके लिए मुख्य रूप से समुदायों के गरीब वर्गों, दीन-हीनों की बस्तियों में, विद्यालय द्वारा विविध सेवा कार्यक्रम चलाये जाने चाहिए।
4. **स्कूल एवं कालेजों को सामुदायिक जीवन का केन्द्र बनाना :-** सामाजिक भावना के विकास हेतु यह जरूरी है कि हमारे स्कूल एवं कॉलेजों को सामुदायिक क्रियाकलापों का केन्द्र बनाया जाय। हमारी शिक्षा संस्थाएं सामुदायिक शिक्षालयों का स्वरूप ग्रहण कर ले, जिससे छात्र की सेवा भावना का विकास होगा।
 5. **छः से चौदह वर्ष के बच्चों हेतु अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा :-** वर्ण, जाति, वंश, लिंग, धर्म आदि के भेद के बिना 6-14 वर्ष के बच्चों हेतु समान, अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा की व्यवस्था कर शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त असमानता को दूर कर समानता लानी होगी।
 6. **अनुसूचित जाति के वर्गों की शिक्षा हेतु प्रावधान किये जाएँ:-** भारतीय समाज में अनुसूचित जाति के वर्गों की स्थिति ठीक नहीं है। इस समाज की शिक्षा के लिए सरकार को विशेष प्रावधान करने चाहिए। सभी के लिए छात्र-वृत्तियों की व्यवस्था की जाय, छात्रावासों की व्यवस्था की जाय, प्रत्येक स्तर पर निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाय। शिक्षा व सरकारी/प्राइवेट नौकरी में संख्या के आधार पर आरक्षण की व्यवस्था सरकार की जिम्मेदारी होगी।
 7. **स्त्री शिक्षा प्रोत्साहन :-** भारत में महिलाओं की आबादी पुरुषों के समान है लेकिन शिक्षा के मामले में पुरुषों से वे काफी पीछे है। जब तक समाज में महिलाओं को उचित शिक्षा प्रदान नहीं की जाती तब तक वे समाज में पीछे रहेंगी। महिला ही पुत्र के रूप में पुरुषों को बढ़ावा देती है और वही पुत्री के रूप में अपनी ही बालिका से भेदभाव कर महिला समाज को पीछे ले जाने का काम कर करती है।
 8. **राष्ट्रीय चेतना को बढ़ावा देना:-** विविध प्रदेशों, भाषाओं, उपसंस्कृतियों, सम्प्रदायों की विभिन्नताओं में एकता का अनुभव कराकर मात्रभूमि के प्रति प्रगाढ़ प्रेम की इस भावना को दृढ़ बनाये रखना, जिसका विकास हमने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान किया था, हमारी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए, जिससे हम अपनी राष्ट्रीय संस्कृति पर गर्व कर सकें।
 9. **प्राचीनता एवं आधुनिकता का समन्वय:-** प्राचीनता के रूप में भारत ने महान, सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य विरासत में पाये है। ये वे मानवीय मूल्य है, जिनके बल पर भारत दुनिया का मसीहा, एवं गुरु रहा है। उन मूल्यों को अपनाते हुए हमें पाश्चात्यीकरण को अपनाकर दोनों में समंजस्य बैठाना होगा।

6.6 सारांश

भारतीय समाज विश्व का सबसे प्राचीन समाज है। यहां भारतीय संस्कृति व परम्पराओं से समाज को गहरा लगाव है, जिसके कारण वह अपनी धार्मिक पवित्रता को बनाये हुए है। लेकिन इन सबके बावजूद आज विश्व में पर्यावरण, जनसंख्या, औद्योगीकरण, नगरीकरण आदि ने विश्व समाज

को परिवर्तित करने में अपनी अहम भूमिका निभाई है। सामाजिक परिवर्तन में भी इन कारकों का प्रभाव पड़ा है। आज पुराने व कमजोर पड़े रीति रिवाजों को छोड़ हम आधुनिकरण व पश्चिमीकरण की संस्कृति को अपना रहे हैं। हम जातिवाद से ऊपर उठकर मानवतावाद की ओर बढ़ रहे हैं। हमारे इस पुण्य कार्य में शिक्षा व संस्कृति दोनों अमूल्य हैं। शिक्षा ने आज समाज की व्यवस्था को सही दिशा देने में योगदान दिया है। आज शिक्षा के बल पर सामाजिक स्तर में परिवर्तन किया जा सकता है। सामाजिक परिवर्तन में अफ्रीका में डा. नेल्सन मंडेला ने 20 वर्ष तक जेल में रहने के पश्चात समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर समाज में समानता, भाईचारा, अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का संदेश विश्व को दिया।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

1. कितने वर्ष के आयु के बच्चों के लिये निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गयी है?
2. वर्ण व्यवस्था को कितने भागों में बांटा गया है?
3. क्या शिक्षा से सामाजिक परिवर्तन होता है। हाँ/नहीं
4. शिक्षा व संस्कृति एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं-
 - a. हाँ/नहीं

6.7 शब्दावली:-

जैविक कारक:- जैविक कारक से हमारा अभिप्राय किसी समाज की जनसंख्या वृद्धि व कमी का प्रभाव सामाजिक परिवर्तन में सहायक होता है। मनुष्य का रहन सहन का स्तर आय के साधन, शिक्षा व्यवस्था व संस्कृति पर जैविक कारक प्रभाव डालते हैं।

औद्योगीकरण:- भारतवर्ष में औद्योगीकरण का श्री गणेश 1956 में हुआ। औद्योगीकरण के कारण ग्रामीण पुरुषों का शहरों की ओर पलायन, स्त्रियों की आर्थिक स्थिति में सुधार, रोजगार प्राप्ति से समाज में सामाजिक परिवर्तन तेजी से हुआ है।

सामाजिक परिवर्तन:- सामाजिक परिवर्तन से अभिप्राय समाज की संस्कृति, शिक्षा, रीतिरिवाज, व्यवहार, स्थिति परिवर्तन, समाज के मुखिया की स्थिति में परिवर्तन, परिवार का परिवर्तित रूप आदि है।

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर निम्नलिखित है।

खण्ड एक

- उत्तर. 1. बहिर्गामी, अन्तर्गामी, 2. भौगोलिक कारण, वातावरणीय कारक
3. खेल 4. भारत 5. वर्ष 1972 में 42वें संशोधन

खण्ड दो-

- उत्तर- 1. सामाजिक संरचना, संस्कृति, व्यक्तित्व
2. नहीं 3. शिक्षा 4. मैकाइवर

खण्ड तीन-

- उत्तर- 1. 6-14 वर्ष के बच्चों के लिए 2. चार 3. हाँ
4. हाँ

6.9 सन्दर्भ:-

1. मित्तल एम.एल (2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक इन्टरनेशनल पब्लिकेशन हाउस:मेरठा।
2. सक्सेना (डा.) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, साहित्य प्रकाशन: आगरा।
3. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
4. एलैक्स (डा.) शीलू मैरी (2008) शिक्षा के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य रजत प्रकाश: नई दिल्ली।

6.10 उपयोगी/ सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डेय रामशकल (2008), उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल पब्लिकेशन: आगरा।
2. सक्सेना डा. सरोज शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, साहित्य प्रकाशन: आगरा।
3. कुमार आनन्द सामाजिक विचारों का अध्ययन, विमल प्रकाशन मंदिर: आगरा।
4. वर्मा ओम प्रकाशन व कुलश्रेष्ठ पीयूष कान्त, धर्म का समाजशास्त्र, पूजा ऑफसेट प्रिन्टर्स: आगरा।
5. शोध पत्रिका, इन्टरनेट।

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में सामाजिक संस्थाओं में समय-समय पर परिवर्तन होता रहा है, इस कथन की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
2. भारत के सामाजिक परिवर्तन में औद्योगिक बदलाव की भूमिका पर प्रकाश डालें।
3. भारत के सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने वाले सांस्कृतिक कारक कौन-कौन से हैं? विस्तृत वर्णन कीजिए।

4. शिक्षा सामाजिक परिवर्तन में किस प्रकार सहायक होती है ? व्याख्या कीजिए।

इकाई-7 शिक्षा के साधन: औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरौपचारिक (Agencies of Education: Formal, Informal and Nonformal)

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य भाग-एक

7.3 शिक्षा के साधनों का वर्गीकरण

7.3.1 शिक्षा के औपचारिक साधन

7.3.2 औपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ

7.3.3 औपचारिक शिक्षा के दोष

अपनी उन्नति जानिए

भाग-दो

7.4 शिक्षा के अनौपचारिक साधन

7.4.1 अनौपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ

7.4.2 अनौपचारिक शिक्षा के दोष

अपनी उन्नति जानिए

भाग-तीन

7.5 शिक्षा के निरौपचारिक साधन

7.5.1 निरौपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ

7.5.2 निरौपचारिक शिक्षा के दोष

7.5.3 शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरौपचारिक साधनों में अंतर

अपनी उन्नति जानिए:

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

जब हम शिक्षा को आजीवन चलने वाली प्रक्रिया के रूप में देखते हैं तो हम शिक्षा के साधन के रूप में सिर्फ विद्यालय को ही नहीं देखते वरन् उन अनेक संस्थाओं को भी उसमें समन्वित करते हैं, जिनमें व्यक्ति जीवन पर्यन्त रहता है एवं जिनसे व्यक्ति उपयोगी या अनुपयोगी ज्ञान प्राप्त करता है। इन संस्थाओं को हम शिक्षा के साधन के नाम से पुकारते हैं। शिक्षा के साधन वह तत्व, कारण या संस्थाएं हैं, जो बालक पर परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से शैक्षिक प्रभाव डालते हैं। यदि हम व्यापक अर्थ में देखें तो मनुष्य का सम्पूर्ण वातावरण ही उसकी शिक्षा को प्रभावित करता है, परन्तु इस वातावरण में कुछ तत्व अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। चूंकि इनका बालक की शिक्षा से प्रत्यक्ष संबंध होता है। शिक्षा के साधनों का अर्थ स्पष्ट करते हुए बी.डी. भाटिया ने लिखा है:-

“समाज ने शिक्षा के कार्यों को करने के लिए अनेक विशिष्ट संस्थाओं का विकास किया है। इन्हीं संस्थाओं को शिक्षा के साधन कहा जाता है।”

7.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

1. औपचारिक शिक्षा की विशेषताओं को जान सकेंगे।
2. औपचारिक शिक्षा के दोषों को जान सकेंगे।
3. अनौपचारिक शिक्षा की विशेषताओं को जान सकेंगे।
4. अनौपचारिक शिक्षा के दोषों को जान सकेंगे।
5. निरौपचारिक शिक्षा की विशेषताओं को जान सकेंगे।
6. निरौपचारिक शिक्षा के दोषों को जान सकेंगे।

भाग-एक (PART- I)

7.3 शिक्षा के साधनों का वर्गीकरण

1. ब्राउन (Brown) ने शिक्षा के साधनों को निम्नलिखित चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया है:-
2. औपचारिक साधन (Formal Agencies):- इसके अंतर्गत वह विद्यालय, पुस्तकालय एवं संग्रहालय को सम्मिलित करते हैं।

3. अनौपचारिक साधन (Informal Agencies):- परिवार, समाज एवं राज्य को ब्राउन शिक्षा के अनौपचारिक साधन के अंतर्गत सम्मिलित करते हैं।
4. व्यवसायिक साधन (Commercial Agencies):- इसके अंतर्गत प्रेस, रेडियो, समाचार-पत्र व टेलीविजन सम्मिलित किये गये हैं।
5. अव्यवसायिक साधन (Non-Commercial Agencies) :- खेल संघ, समाज कल्याण केन्द्र, प्रौढ़ शिक्षा एवं साक्षरता केन्द्र व स्काउटिंग, गाइडिंग संस्थाएं इसके अंतर्गत सम्मिलित की जाती हैं।

7.3.1 शिक्षा के औपचारिक साधन

शिक्षा के यह साधन वह हैं, जो बालक को सप्रयत्न शिक्षा देने का कार्य करते हैं। इसमें शिक्षा देने की योजना अर्थात् समय, स्थान, अध्यापक, विधि पाठ्यक्रम पूर्व निर्धारित होती है। यह संस्थाएं अपने द्वारा निर्धारित नियमावली का अनुपालन करती हैं। औपचारिक शिक्षा के लाभों पर प्रकाश डालते हुए ड्यूवी ने कहा है- “औपचारिक शिक्षा के बिना जटिल समाज के साधनों और उपलब्धियों को हस्तान्तरित करना संभव नहीं है। यह एक ऐसे अनुभव की प्राप्ति का द्वार खोलती है जिसको बालक दूसरों के साथ रहकर अनौपचारिक शिक्षा के द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता।”

7.3.2 औपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ

1. यह शिक्षा पूर्व आयोजन, नियोजन एवं सप्रयत्नशील उपायों द्वारा प्रदान की जाती है।
2. यह शिक्षा कृत्रिम, जटिल तथा अप्राकृतिक होती है।
3. औपचारिक शिक्षा मूलतः विद्यालयों के द्वारा ही प्रदान की जाती है।
4. इसका प्रारंभ विद्यालय जाने पर होता है एवं अन्त भी विद्यालय छोड़ने पर हो जाता है।
5. यह शिक्षा भौतिक मूल्यों से जुड़ी होती है और हमें भौतिक साधनों को जुटाने हेतु प्रेरित करती है।
6. इसका उद्देश्य बालक को परीक्षा उत्तीर्ण कराकर प्रमाण-पत्र प्राप्त कराना है।
7. औपचारिक शिक्षा में शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, स्थान, समय, अध्यापक आदि सुनिश्चित कर लिए जाते हैं।

औपचारिक शिक्षा के साधन के संबंध में जॉन ड्यूवी का कथन सही है, “बिना औपचारिक शिक्षा के यह संभव नहीं है कि हम इस जटिल समाज के स्रोतों व उपलब्धियों को हस्तान्तरित कर सकें, यह अनुभवों हेतु एक रास्ता खोलता है जो युवा वर्ग के लिए अप्राप्य है, यदि अन्य व्यक्तियों के साथ औपचारिक प्रशिक्षण हेतु छोड़ दिया जाये।”

(Without formal education, it is not possible to transmit all the resources and achievements of a complex society. It also open a way to a kind of experience

which would not be accessible to the young, if they are left to pick-up their training in informal association with others.)

7.3.3 औपचारिक शिक्षा के दोष

1. यह शिक्षा सैद्धान्तिक अधिक व व्यवहारिक कम है।
2. औपचारिक शिक्षा बालक को यह सिखाती है कि उसके जीवन का प्रमुख उद्देश्य परीक्षा उत्तीर्ण करके प्रमाण-पत्र प्राप्त करना है।
3. यह शिक्षा अध्यापक को भी पाठ्यक्रम पूरा करने तक सीमित कर देती है।
4. शिक्षा विद्यालय की चारदीवारी में बँध जाती है।

अपनी उन्नति जानिए

1. शिक्षा के तीन औपचारिक साधनों के नाम लिखिए।
2. शिक्षा के तीन अनौपचारिक साधनों के नाम लिखिए।
3. शिक्षा के तीन व्यवसायिक साधनों के नाम लिखिए।
4. शिक्षा के तीन अव्यवसायिक साधनों के नाम लिखिए।

भाग-दो (PART- II)

7.4 शिक्षा के अनौपचारिक साधन (In formal agencies of education)

शिक्षा के अनौपचारिक साधन शिक्षा को एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। इनका मानना है कि लिखना, पढ़ना या अक्षर ज्ञान प्राप्त कर लेना ही शिक्षा नहीं है। शिक्षा इससे बहुत अधिक व्यापक तथा विस्तृत प्रत्यय है। शिक्षा वास्तव में वह है जो हम अपने जीवन के अच्छे-बुरे अनुभवों से सीखते हैं और यह अनुभव व्यक्ति जीवनपर्यन्त प्राप्त करता है। बैण्टाक Bantak के शब्दों में “शिक्षा सभी प्रकार के अनुभवों का योग है, जिसे मनुष्य अपने जीवनकाल में प्राप्त करता है और जिसके द्वारा वह जो कुछ है, उसका निर्माण होता है।” जे.एस.रॉस ने इस संबंध में लिखा है, “अनौपचारिक शिक्षा बालक द्वारा सभी प्रभाव ग्रहण करना और उसे अपनी प्रकृति से उत्तेजित कर पूर्णतया विकसित करना सिखाती है।” वास्तव में देखा जाए तो अनौपचारिक शिक्षा जीवन से संबंधित वे अनुभव हैं, जिन्हें हम बिना किसी व्यवस्थित प्रयास, संस्था तथा साधन के स्वाभाविक स्थिति से प्राप्त करते हैं। इस प्रकार की शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से जीवन से संबंधित होती है। यह शिक्षा स्वाभाविक रूप से होती है। इसकी न तो कोई निश्चित योजना होती है और न ही कोई निश्चित नियमावली। यह बालक के आचरण का रूपान्तरण करते हैं, परन्तु रूपान्तरण की प्रक्रिया अज्ञात, अप्रत्यक्ष व अनौपचारिक होती है।

7.4.1 अनौपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ :-

1. अनौपचारिक शिक्षा स्वाभाविक होती है। अर्थात् यह कृत्रिमता से परे होती है।
2. यह शिक्षा जीवनपर्यन्त चलती है अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि इस शिक्षा का प्रारम्भ तब से हो जाता है जबकि बालक इस संसार में जन्म लेता है एवं यह तब तक चलती है जब तक कि बालक मृत्यु शैया को प्राप्त न कर ले।
3. इस शिक्षा को देने के प्रमुख साधन परिवार, पड़ोस, समाज, राज्य, धर्म आदि हैं।
4. इसमें बालक अपने अनुभवों के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करता है।
5. इसमें बालक स्वतंत्र वातावरण में शिक्षा ग्रहण करता है। उसके ऊपर कोई कठोर नियंत्रण नहीं होता है।
6. यह बालक की रूचि व जिज्ञासा पर आधारित होती है।

शिक्षा के इन साधनों के संबंध में जॉन ड्यूवी का कथन सही है, “अन्य व्यक्तियों के साथ अनौपचारिक रूप से रहकर बालक शिक्षित होता है। यह प्रक्रिया बालक को शिक्षित करती है एवं उसके अनुभवों को व्यापक व प्रकाशित करती है और उसकी कल्पना को प्रेरित करती है, यह साधन हमारे विचारों व कथनों को स्पष्ट एवं सही करते हैं एवं उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करते हैं।”

(The child is informally educated by living with others and the very process of living together educates. It enlarges and enlightens experience, it stimulates and enriches imagination, it creates responsibility, accuracy and civility of statement and thought.)

7.4.2 अनौपचारिक शिक्षा के दोष

- a. इसके द्वारा प्रदान किया गया ज्ञान अस्पष्ट होता है।
- b. इसमें शिक्षा का समय व स्थान अनिश्चित होने के कारण शिक्षा की स्थिति सदैव अस्थिर रहती है।
- c. ज्ञान ग्रहण करते समय बालक गलत धारणाओं का विकास कर लेता है।
- d. इस शिक्षा के द्वारा हम कौशलों व तकनीकियों का विकास नहीं कर सकते।
- e. इसकी नियमावली व अनुशासन ढीला होता है।

अपनी उन्नति जानिए

सत्य/असत्य कथनों पर सही का निशान लगाएं:-

- 5 औपचारिक शिक्षा कृत्रिम, जटिल तथा अप्राकृतिक होती है। (सत्य/असत्य)

- 6 औपचारिक शिक्षा पूर्व आयोजन, नियोजन एवं सप्रयत्नशील उपायों द्वारा प्रदान की जाती है। (सत्य/असत्य)
- 7 औपचारिक शिक्षा विद्यालय की चारदीवारी से बाहर प्रदान की जाती है। (सत्य/असत्य)

भाग-तीन (PART-III)

7.5 शिक्षा के निरौपचारिक साधन (non-formal agencies of education)

यह शिक्षा का वह साधन है जिसमें शिक्षा का औपचारिक स्वरूप पूर्ण रूप से नियंत्रण में होता है। यह शिक्षा को एक सचेष्ट प्रक्रिया के रूप में देखते हैं एवं शिक्षा के विभिन्न आयामों पर नियंत्रण रखते हैं, अर्थात् इसमें शिक्षा का प्रवेश, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, अध्यापक, छात्र, शिक्षा के उद्देश्य व शिक्षा की व्यवस्था पूरी तरह से औपचारिक होती है, परन्तु इसके साथ ही इसमें शिक्षा न तो पूर्णतया नियंत्रित होती है और न ही पूर्णतया अनियंत्रित, वरन् यह इन दोनों का सम्मिश्रण है।

शिक्षा की इस अवधारणा के अंतर्गत शिक्षार्थी कई क्षेत्रों में नियंत्रित होता है एवं कई क्षेत्रों में अनियंत्रित होता है। इसमें प्रायः आयु, स्थान, शिक्षण विधि पर नियंत्रण नहीं होता जबकि पाठ्यक्रम, परीक्षा, समय आदि की सीमा निश्चित होती है।

7.5.1 निरौपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ

1. यह शिक्षा छात्रों को विद्यालय के तनावपूर्ण वातावरण से दूर रखती है।
2. एक समय में बहुत अधिक लोगों को शिक्षित किया जा सकता है। अतः जिन देशों में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है, वहाँ यह बहुत उपयोगी है।
3. इसमें शिक्षा के ऊपर व्यय कम होता है।
4. यह शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा से अधिक उपयोगी है। चूँकि इसमें छात्र उद्देश्यों के प्रति जागरूक रहता है, साथ ही छात्रों की योग्यता का मूल्यांकन एवं मापन करना संभव होता है।
5. इसका पाठ्यक्रम निश्चित होता है, जिससे छात्र अपने उद्देश्यों के प्रति जागरूक रहता है।
6. इस शिक्षा को दूर स्थान पर रहने वाले या व्यवसाय में संलग्न व्यक्ति भी प्राप्त कर सकते हैं।

7.5.2 निरौपचारिक शिक्षा के दोष

1. छात्रों के मन में उत्पन्न शंकाओं का तुरन्त निराकरण संभव नहीं है।
2. कभी-कभी डाक-व्यवस्था में गड़बड़ होने के कारण छात्रों की पढ़ाई में व्यवधान पड़ जाता है।
3. सभी व्यक्ति अकेले शिक्षा ग्रहण करते हैं। इस कारण उनमें समूह भावना का विकास नहीं हो पाता है।
4. अध्यापक व छात्रों के मध्य प्रत्यक्ष संबंध स्थापित नहीं हो पाता। अतः उन दोनों के मध्य परस्पर अन्तःक्रिया का अभाव रहता है।

**7.5.3 शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक व निरौपचारिक साधनों में अन्तर
(DIFFERENCE BETWEEN FORMAL, INFORMAL & NON-FORMAL
EDUCATION)**

शिक्षा के क्षेत्र (Areas of Education)	औपचारिक शिक्षा (FORMAL EDUCATION)	अनौपचारिक शिक्षा (INFORMAL EDUCATION)	निरौपचारिक शिक्षा (NON-FORMAL EDUCATION)
1. छात्र (Student)	1. निश्चित होते है। 2. आयु सीमा निर्धारित होती है।	1. सीखने वालों की आयु सीमा निश्चित नहीं होती। 2. आयु सीमा पर कोई नियंत्रण नहीं होता।	1. छात्र निश्चित होते है।
2. अध्यापक (Resource Person or Teacher)	1. अध्यापक शिक्षित होता है। 2. अध्यापक निश्चित होता है।	1. अध्यापक कोई भी हो सकता है। 2. अध्यापक निश्चित नहीं होता है।	1. शिक्षा देने वाले व शिक्षा ग्रहण करने वालों के मध्य कोई संबंध प्रत्यक्ष नहीं होता है।
3. विषय वस्तु (Content)	1. सैद्धान्तिक होती है। 2. निश्चित होती है। 3. व्यवहारिकता कम होती है।	1. व्यवहारिक होती है। 2. अनिश्चित होती है। 3. सीखने वाले की रुचि पर आधारित होती है।	1. पाठ्यक्रम निश्चित होता है।
4. शिक्षण पद्धति (Teaching Method)	1. पाठ्यक्रम के अनुकूल होती है। 2. यह क्रिया पर कम बल देती है।	1. पद्धति लचीली होती है। 2. इसमें व्यवहारिकता निरीक्षण आदि पर बल दिया जाता है।	1. लिखित पाठों के माध्यम से शिक्षण होता है। 2. अध्यापक व शिक्षार्थी के मध्य अन्तःक्रिया असंभव होती है।
5. ढांचा (Structure)	1. शिक्षण कार्यक्रम व्यवस्थित होता है। 2. यह विभिन्न इकाईयों में विभक्त होता है। 3. सीखना एक क्रमिक	1. ढांचे में कोई व्यवस्था नहीं होती है।	1. ढांचा निश्चित होता है। 2. सीखना क्रमिक रूप

6. नियंत्रण (Control)	प्रक्रिया के रूप में होता है। 1. इसके ऊपर यांत्रिक रूप में नियंत्रण होता है।	2. सीखना एक अचानक होने वाली प्रक्रिया है।	में नहीं होता है। 3. इसकी व्यवस्था सचेष्ट होती है।
7. स्थान (Location)	2. सीखने वाले पर शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र को लादा जाता है।	1. यह सीखने वाले के नियंत्रण पर आधारित होता है।	1. इसमें शिक्षा के कुछ क्षेत्रों पर नियंत्रण होता है एवं कुछ पर नहीं।
8. समय (Time)	1.स्थान निश्चित होता है।		1. स्थान छात्र के लिए निश्चित नहीं है, परन्तु शिक्षा देने का स्थान निश्चित होता है।
9. मूल्यांकन (Evaluation)	1.समय निश्चित होता है।	1. स्थान निश्चित नहीं होता है।	1. अवधि निश्चित है परन्तु शिक्षा ग्रहण करने का समय नहीं।
10. पारितोषिक (Reward)	1. छात्रों का मूल्यांकन संभव है। 1. अंक या उपाधि के रूप में मिलता है।	1. समय अनिश्चित होता है। 1. छात्रों का मूल्यांकन संभव नहीं है। 1. प्रशंसा के रूप में प्राप्त होता है।	1. अवधि निश्चित है परन्तु शिक्षा ग्रहण करने का समय नहीं। 1. छात्रों के मूल्यांकन की व्यवस्था है। 1 अंक या उपाधि के रूप में मिलता है।

अपनी उन्नति जानिए

सही अथवा गलत पर निशान लगाएं:-

- 5 अनौपचारिक शिक्षा का प्रमुख साधन संग्रहालय है। (सही/गलत)
- 6 अनौपचारिक शिक्षा के प्रमुख साधन परिवार, पड़ोस, राज्य आदि है। (सही/गलत)
- 7 निरौपचारिक शिक्षा का पाठ्यक्रम निश्चित होता है। (सही/गलत)

7.6 सारांश

प्रत्येक शिक्षा की एक संस्कृति होती है और इस संस्कृति का संरक्षण या रक्षा करने का दायित्व विद्यालय का होता है, परन्तु इस संरक्षण के साथ ही साथ विद्यालय का यह दायित्व भी है कि वह संस्कृति का मूल्यांकन करे एवं उसकी अच्छी बातों को सुरक्षित रखा जाये। विद्यालय का कार्य बालक की तर्क कल्पना, चिन्तन व निर्णय शक्ति का विकास करना, जिससे बालक स्वतंत्र, स्पष्ट व

तार्किक रूप से चिन्तन कर सके। जबकि विद्यालय के द्वारा अनौपचारिक कार्य करने की अपेक्षा समाज द्वारा की जाती है। शिक्षा शास्त्री विद्यालय के औपचारिक कामों को अनिवार्य या प्राथमिक कार्यों की श्रेणी में रखते हैं। जैसे-बालक का शारीरिक विकास करने का दायित्व परिवार पर है। परन्तु परिवार के लिए यह संभव नहीं कि वह बालक का शारीरिक विकास शारीरिक क्रियाओं के माध्यम से कर सके। इस जिम्मेदारी को विद्यालय अच्छी तरह निभा सकता है। पुस्तकालय भी बालक के चर्तुमुखी विकास में अपना योगदान देते हैं। एक अच्छा अध्यापक वही होता है, जिसके पास किताबों का भण्डार हो, किताबों को इकट्ठा करना व उनको छात्रों के लिए उपलब्ध कराना अध्यापक की जिम्मेदारी होती है। अतः शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक व निरौपचारिक विकास की जिम्मेदारी को अध्यापक महसूस करें व इन साधनों के द्वारा छात्रों का विकास करें।

7.7 शब्दावली

निरौपचारिक शिक्षा :. एक समय में बहुत अधिक लोगों को शिक्षित किया जा सकता है। अतः जिन देशों में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है, वहाँ यह बहुत उपयोगी है।

औपचारिक शिक्षा :- . औपचारिक शिक्षा में शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, स्थान, समय, अध्यापक आदि सुनिश्चित कर लिए जाते हैं।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग-एक (PART-I)

1. औपचारिक साधन - विद्यालय, पुस्तकालय एवं संग्रहालय।
2. अनौपचारिक साधन - परिवार, समाज व राज्य।
3. व्यावसायिक साधन - प्रेस, रेडियो, समाचार-पत्र।
4. अव्यावसायिक साधन - खेल संघ, समाज कल्याण केन्द्र।

भाग-दो (PART-II)

- 5 सत्य
- 6 सत्य
- 7 असत्य

भाग-तीन (PART-III)

- 8 गलत
- 9 सही
- 10 सही

7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक अग्रवाल प्रकाशन आगरा।

-
2. सक्सेना (डॉ) सरोज शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार साहित्य प्रकाशन आगरा।
 3. मित्तल एम एल (2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउसमेरठ।
 4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
-

7.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक अग्रवाल प्रकाशन आगरा।
 2. सक्सेना (डॉ) सरोज शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार साहित्य प्रकाशन आगरा।
 3. मित्तल एम एल (2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउसमेरठ।
 4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य रजत प्रकाशन नई दिल्ली।
-

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. शिक्षा के अभिकरणों से आप क्या समझते हैं ? शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक व निरौपचारिक साधनों में अन्तर बताइये।
2. छात्रों के विकास हेतु विभिन्न साधनों में समन्वय होना आवश्यक है। इस कथन की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
3. विद्यालय से आप क्या समझते हैं ? औपचारिक साधन के रूप में विद्यालय की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. शिक्षा के अनौपचारिक साधन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
5. शिक्षा के निरौपचारिक साधन से आप क्या समझते हैं ? शिक्षा के निरौपचारिक साधनों के दोष बताइये।

**इकाई .08 दर्शन का अर्थ और भारतीय दर्शन,
अध्यापक के लिय शिक्षा का महत्व (Meaning of
Philosophy and Educational Philosophy, Importance of
Education for Teacher)**

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- भाग-एक
- 8.3 भारतीय दर्शन
- 8.3.1 भारतीय परिवेश में दर्शन का अर्थ
- 8.3.2 दर्शन की परिभाषाएं
अपनी उन्नति जानिए
- भाग-दो
- 1.4 शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन की उपादेयता
अपनी उन्नति जानिए
- भाग-तीन
- 8.5 दर्शन के कार्य
अपनी उन्नति जानिए
- 8.6 सारांश
- 8.7 शब्दावली
- 8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 8.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव जीवन मनुष्य को बड़े पुण्य व अच्छे कार्यों के फलस्वरूप प्राप्त होता है। इसलिए हमें अपने सत्-कार्यों के द्वारा मानव के कल्याण हेतु उन कार्यों को करना चाहिए, जिससे स्वयं के साथ संसार का कल्याण हो सके। मनुष्य का वास्तविक स्वरूप क्या है? विश्व में उसकी स्थिति क्या है? किस सत्ता से प्रेरित होकर सारा संसार नियमानुसार कार्य करने में रत है? विश्व के सृजन तथा संहार के पीछे कौन-सी शक्ति अपने ऐश्वर्य का परिचय दे रही है? क्यों प्रकृति अपने नियमों का उल्लंघन कभी नहीं करती है? इस वसुन्धरा के प्राणियों में क्यों सुख है? क्यों दुःख है? इनके सुख-दुःख में इतनी विषमता क्यों है? क्या दुःख की इस स्थिति एवं विषमता को पार करने का कोई उपाय भी है? क्या पाप है? क्या पुण्य है? उत्तम समाज की कौन-सी ऐसी व्यवस्था हो सकती है जो मनुष्य के लिए श्रेयस्कर हो? मनुष्य के वास्तविक कल्याण का क्या साधन है? ये सभी ऐसे प्रश्न हैं, जिनके उत्तर को मानवता अनादि काल से संपूर्ण विश्व में किसी न किसी प्रकार से खोजती आई है और इस अन्वेषण के फलस्वरूप जिस साहित्य की रचना हुई है, उसे दर्शन शास्त्र कहा जाता है। इस अध्याय में आप शिक्षा दर्शन व अध्यापक के लिए शिक्षा दर्शन की उपयोगिता को समझ सकेंगे।

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

1. दर्शन का अर्थ भारतीय परिपेक्ष्य में समझ सकेंगे।
2. दर्शन का अर्थ पश्चिमी परिपेक्ष्य में समझ सकेंगे।
3. भारतीय व पाश्चात्य दार्शनिकों की परिभाषा का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. दर्शन व अध्यापक के सम्बन्धों को समझ सकेंगे।
5. दर्शन के कार्यों को समझ सकेंगे।

भाग-एक (PART- I)

8.3 भारतीय दर्शन (Indian Philosophy)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत ही नहीं, अपितु समस्त संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ 'वेद' ही हैं। भारतीय दर्शन का स्रोत वेद है। वेद कोई दार्शनिक ग्रन्थ नहीं है, वरन् दर्शनों के आधारभूत ग्रन्थ है। वेदों ने बाद के भारतीय दर्शनों पर अत्यधिक प्रभाव डाला, जिन्हें आज हम 'षड्दर्शन' कहते हैं-वे सभी वेदों को मानने वाले हैं। कुछ दर्शन वेदों को नहीं मानते। ऐसे दर्शन तीन हैं-चार्वाक, बौद्ध तथा जैन। इस दृष्टि से भी वेदों का महत्व है। अर्थात् भारत में जो चिन्तन हुआ, वह या तो वेदों के समर्थन के लिए या फिर खण्डन के लिए। वस्तुतः पहले 'नास्तिक' शब्द वेदनिन्दक के

लिए ही प्रयुक्त होता था, बाद में इसका अर्थ 'अनीश्वरवादी' हो गया। 'नास्तिक' शब्द के पहले अर्थ में केवल चार्वाक, बौद्ध तथा जैन दर्शन 'नास्तिक' है और दूसरे अर्थ में मीमांसा और सांख्य भी आते हैं, क्योंकि ये भी ईश्वर को नहीं मानते। एक अन्य अर्थ के अनुसार- 'नास्तिक उसे कहते हैं, जो परलोक में विश्वास नहीं करता है।' इस अर्थ में षड्दर्शन तथा जैन एवं बौद्ध दर्शन भी आस्तिक दर्शन हो जाते हैं और केवल चार्वाक दर्शन आस्तिक है।

'वेद' वास्तव में एक ही है और उसी से चार वेद बन गये हैं, जैसा कि सनत्सुजात के निम्नलिखित कथन से विदित होता है-

“एकस्य वेदास्याज्ञानाद् वेदास्ते बहवः कृताः।”

अर्थात्-अज्ञानवश एक ही वेद के अनेक वेद कर दिये गये हैं।

स्थूल दृष्टि से वेद को 'कर्म-काण्ड' एवं 'ज्ञान काण्ड' में विभक्त किया गया है। 'कर्म-काण्ड' में उपासनाओं का तथा 'ज्ञान-काण्ड' में आध्यात्मिक तत्व का विवेचन है। देवताओं की स्तुतियों में अनेक मंत्र हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल के 121वें सूक्त में हिरण्यगर्भ की स्तुति की गई है। इस सूक्त से आध्यात्मिक चिन्तन का अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता नीतिशास्त्र का विश्वविख्यात ग्रन्थ है। इसमें भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है। गीता का मुख्य सन्देश 'निष्काम कर्म' है। अर्थात् बिना फल की इच्छा किये हुए कर्म करना चाहिए। आत्मा अजर-अमर है। न तो इसको कोई मार सकता है और न ही यह किसी को मार सकता है। गीता में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म-तीनों मार्गों की महिमा बताई गई है। किन्तु निष्काम कर्म को सुगम एवं उत्तम साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। लक्ष्य के रूप में 'मुक्ति' ही स्वीकार्य है।

चार्वाक दर्शन भौतिकवादी दर्शन है। इसके अनुसार जड़-जगत सत्य है और यह वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी-इन चार भौतिक तत्वों से बना है। चेतना की उत्पत्ति भौतिक तत्वों से ही है। आत्मा शरीर को ही कहा जाता है। शरीर के नष्ट होने पर चैतन्य जो भौतिक तत्वों का विशेष है, नष्ट हो जाता है। मृत्यु के बाद कुछ नहीं बचता। परलोक, वेद, ईश्वर आदि को यह दर्शन स्वीकार नहीं करता। इसके अनुसार जब तक जिएं सुख से जिएं का सिद्धान्त सर्वोत्तम सिद्धान्त है।

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमान एवं शब्द भी प्रमाण हैं। भौतिक जगत को जैन दार्शनिक भी चार्वाक की भाँति वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी-इन्हीं चार तत्वों के मिश्रण से निर्मित मानते हैं। जैन दार्शनिकों के अनुसार चैतन्य की उत्पत्ति जड़-पदार्थों से नहीं हो सकती। जैन दर्शन के अनुसार जितने सजीव शरीर हैं, उतने ही चैतन्य जीव हैं। प्रत्येक जीव में अनन्त सुख पाने की क्षमता है। मोक्ष-प्राप्ति सर्वथा संभव है। सांसारिक बंधन से छुटकारा पाने के लिए सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र-तीन उपाय बताये गये हैं।

बौद्ध दर्शन - जगत के सभी प्राणियों में एवं दिशाओं में दुःख विद्यमान है और इस दुःख का कारण तृष्णा है। क्योंकि कोई भी भौतिक या आध्यात्मिक वस्तु अकारण नहीं है। संसार की सभी वस्तुएं परिवर्तनशील हैं। मरण का कारण जन्म है। जन्म का कारण तृष्णा है और तृष्णा का कारण अज्ञान है। दुःखों के कारण यदि नष्ट हो जायें तो दुःख का भी अन्त हो जायेगा। चौथा सत्य 'दुःख-निवृत्ति' के उपाय के रूप में है।

8.3.1 दर्शन का अर्थ

भारतीय परिवेश में दर्शन का अर्थ

'दर्शन' पद की व्युत्पत्ति दो से है। पहले, 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्'। इस व्युत्पत्ति के अनुसार संस्कृत में 'दर्शन' का अर्थ होता है- 'जिसके द्वारा देखा जाये।' 'दर्शन' शब्द से वे सभी पद्धतियां अपेक्षित हैं, जिनके द्वारा परमार्थ का ज्ञान होता है। 'देखा जाये' इस पद का अर्थ यों तो 'ज्ञान प्राप्त किया जाये' यह भी हो सकता है, फिर भी इस संबंध में यह ध्यान रखना उचित है कि ज्ञान प्राप्त करने के अनेक साधन हैं। जैसे-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द आदि। लेकिन इन सभी में सबसे प्रसिद्ध और प्रमुख साधन है-प्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष के भी इन्द्रिय-भेद से पांच प्रकार होते हैं, लेकिन इन सभी में जो ज्ञान चक्षु-इन्द्रिय से प्राप्त होता है-जिसे चाक्षुष प्रत्यक्ष कहते हैं-उसकी प्रामाणिकता सर्वोपरि है। शब्द भी एक प्रकार का प्रत्यक्ष है, जिसको आप्त पुरुषों ने अपनी अविचलित बुद्धि और शुद्ध अंतःकरण से प्राप्त करके लौकिक जनों के उत्थान हेतु गुरु-शिष्य परम्परा से प्रसारित किया है। प्रायः चार्वाक को छोड़कर जितने भी भारतीय दार्शनिक हैं वे सभी आप्त वाक्यों की श्रेष्ठ प्रामाणिकता में विश्वास करते हैं। वेद में आस्था रखने वाले शास्त्रकार तो ऐसा मानते ही हैं, किन्तु जैनों एवं बौद्धों के भी अपने-अपने वचन अथवा आगम हैं, जिन्हें वे प्रमाण-स्वरूप मानते हैं। इन सबसे प्रत्यक्ष को सर्वोपरि प्रमाण मानने की बात सिद्ध होती है।

दूसरे 'दृश्यते इति दर्शनम्' जो देखा, समझा जाये वह दर्शन है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रामाणिक विषय-ज्ञान दर्शन है। इस प्रकार 'दर्शन' के अर्थ में दोनों व्युत्पत्तिमूलक अर्थ शामिल हैं। संक्षेप में, 'दर्शन' शब्द से भारतीय शास्त्रकारों का तत्त्वसाक्षात्कार अभीष्ट है। दर्शनशास्त्र में प्रायः उसी साक्षात्कार की कल्पना की जाती है, जिसकी तार्किक विवेचना भी हो सके। दर्शन शास्त्र का इतिहास ही पुरुषों द्वारा प्रदर्शित तत्व की युक्तिसंगत विवेचना है। इसके वास्तविक अर्थ को तर्क की कसौटी पर कस कर लाने का एक क्रमबद्ध प्रयास है। इस सबसे यह ज्ञात होता है कि दर्शन का अर्थ केवल अर्न्तज्ञान ही नहीं अपितु वे समस्त विचारधारार्य हैं, जो अर्न्तज्ञान से उद्भूत होती हुई भी युक्तियों के आधार पर प्रमाणित की जाती हैं। भारतीय विद्वानों के दर्शन का यही अर्थ अभिमत है।

दर्शन शास्त्र सत्ता संबंधी ज्ञान कराकर मनुष्य का परम कल्याण करता है। यह परम कल्याण ही दर्शन का लक्ष्य है। अब प्रश्न है कि इस परम कल्याण का क्या स्वरूप है? यद्यपि इस प्रश्न का उत्तर देने में भारतीय दर्शन के आचार्यों में मतभेद हैं, तथापि इन सबमें एक समानता है, जो न केवल वेदपथगामी

दार्शनिक सम्प्रदायों की विशेषता है वरन् जैन और बौद्ध-सरीखे अवैदिक सम्प्रदाय दो दार्शनिक विचारकों की भी आधारभूत मान्यता है।

संसार के विषयों से उत्पन्न होने वाले जितने भी सुख हैं, उनमें दुःख किसी न किसी रूप में छिपा रहता है। इसी दुःख की ज्वाला से तप्त होकर दार्शनिकों ने उसकी निवृत्ति के उपायों की खोज की है। जैनों के अर्हतत्व, बौद्धों के निर्वाण, नैयायिकों की आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति तथा वेदान्तियों के मोक्ष में दुःख के नाश की कल्पना अन्तर्निहित है। इस प्रकार दुःख का समूल नाश ही भारतीय दर्शन का परम लक्ष्य रहा है। भारतीय दर्शनकारों ने इसी लक्ष्य के साधनभूत अन्यान्य दर्शनों की रचना करके तथा उन्हें अधिकारभेद से मनुष्य की परमार्थसिद्धि में उपयोगी बताकर मनुष्य को परमपद प्राप्त करने का प्रयत्न किया है।

8.3.2 दर्शन की परिभाषाएं

दर्शन क्या है तथा दर्शन के बिना व्यक्ति का जीवन सहज तरीके से नहीं चल सकता, ये बातें दर्शन के अर्थ तत्व से स्पष्ट हो जाती हैं। “मनुष्य अपने जीवन तथा संसार के विषय में अपनी-अपनी धारणाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करता है। यह बात अधिक से अधिक विचारहीन मनुष्य के विषय में भी सत्य है, बिना दर्शन के जीवन व्यतीत करना असंभव है।” - हक्सले

(क) पाश्चात्य दार्शनिकों द्वारा दी गई परिभाषाएं:-

1. “दर्शन ऐसा विज्ञान है, जो चरम तत्व के यथार्थ स्वरूप की जांच करता है।” - अरस्तू
("Philosophy is the science which investigates the nature of being as it is in itself." - (Aristotle))
2. “पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान ही दर्शन है।” – प्लेटो
("Philosophy aims at the knowledge of the eternal nature of things." - Plato)
3. “ज्ञान का विज्ञान ही दर्शन है।” – फिक्टे
("Philosophy is the science of knowledge." - Fichte)
4. “दर्शन विज्ञानों का विज्ञान है।” - कामटे
("Philosophy is the science of Science." - Comte)
5. “दर्शनशास्त्र विश्वव्यापी विज्ञान तथा सभी विज्ञानों के संकलन का नाम है।” – स्पेन्सर
("Philosophy is the synthesis of the science and universal science." - Spencer)

(ख) भारतीय दार्शनिकों एवं शैक्षिक चिन्तकों द्वारा दी गई परिभाषाएं:-

1. “दर्शन एक ऐसा दीपक है, जो सभी विधाओं को प्रकाशित करता है।”
कौटिल्य के अनुसार-“आन्वीक्षिकी विद्या” ही दर्शन है। दर्शन-
“प्रदीपः सर्व विद्यानानुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रमः सर्वधर्माणम् शश्वदान्वीक्षिकीमता॥” - अर्थशास्त्र, कौटिल्य
2. “दर्शन एक ठोस सिद्धान्त है, न कि अनुमान या कल्पना, इसे व्यवहार में लाकर व्यक्ति निर्धारित लक्ष्य मार्ग प्रशस्त कर लेता है।” - डॉ. बलदेव उपाध्याय
3. “दर्शन के द्वारा प्रत्यक्षीकरण होता है। अर्थात् चाहे जितना ही सूक्ष्म क्यों न हो उसे दर्शन (दिव्य चक्षुओं) से अनुकूल किया जा सकता है।” - डॉ. उमेश मिश्र
4. “यथार्थता के स्वरूप का तार्किक विवेचन ही दर्शन है।” - डॉ. राधाकृष्णन
5. “दर्शन एक प्रयोग है जिसमें मानव व्यक्तित्व एवं सत्य उसकी विषय वस्तु होती है और उसको जानने के लिए हम प्रमाण एकत्रित करते हैं।” - महात्मा गांधी

अपनी उन्नति जानिए

1. भारतीय दर्शन का स्रोत क्या है ?
2. तीन ऐसे दर्शनों के नाम बताइये जो वेदों को नहीं मानते।
3. वेदों के बाद भारतीय दर्शन पर सर्वाधिक प्रभाव किसने डाला है ?
4. नास्तिक से आप क्या समझते हैं ?
5. “अज्ञानवश एक ही वेद के अनेक वेद कर दिये गये हैं।” यह कथन किसका है ?

8.4 शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन की उपादेयता -

जॉन ड्यूवी के अनुसार, “शिक्षा-दर्शन बने बनाये विचारों को व्यवहार की एक व्यवस्था पर लागू करना नहीं है, जिसमें पूर्णतया भिन्न उद्गम और प्रयोजन होते हैं। वह तो समकालीन सामाजिक जीवन की समस्याओं के विषय में सही मानसिक और नैतिक अभिवृत्तियों के निर्माण की समस्याओं से सम्बन्धित है। दर्शन की सबसे अधिक व्यापक परिभाषा जो दी जा सकती है, यह है कि वह अधिकतम सामान्य रूप में शिक्षा का सिद्धान्त है।” इस प्रकार शिक्षक शिक्षा-दर्शन से शिक्षण सिद्धान्त प्राप्त करता है। शिक्षण प्रणालियों का भी शिक्षक के शिक्षा-दर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्पेंसर के अनुसार “केवल एक सच्चा दार्शनिक ही शिक्षा को व्यवहारिक रूप दे सकता है। वह विद्यार्थियों से कैसे व्यवहार करता है और उन्हें अपनी बात कैसे समझाता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि शिक्षार्थी उसके लिए क्या है।”

विभिन्न दार्शनिक व्यवस्थाओं में मानव प्रकृति की भिन्न-भिन्न व्यवस्था की गई है। अस्तु, शिक्षक का शिक्षा-दर्शन शिक्षण प्रणाली के प्रति उसकी अभिवृत्ति निर्धारित करता है। यह ठीक है कि दर्शन शिक्षक के विषय के ज्ञान की जगह नहीं ले सकता, किन्तु फिर भी वह शिक्षक के लिए नितान्त

आवश्यक है। बर्ट्रेड रसल के शब्दों में- “दर्शन शास्त्र का अध्ययन प्रश्नों के सुनिश्चित उत्तर प्राप्त करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि स्वयं प्रश्नों के लिए किया जाना चाहिए। क्योंकि ये प्रश्न संभावनाओं की हमारी अवधारणा को व्यापक बनाते हैं। हमारी बौद्धिक कल्पना को समृद्ध करते हैं और हठवादी सुनिश्चितता को कम करते हैं, जो कि कल्पना के विरुद्ध मस्तिष्क को बन्द कर देती है, बल्कि सर्वोपरि क्योंकि विश्व की महानता जिस पर दर्शन विचार करता है मस्तिष्क को भी महान और विश्व से एकीकरण के योग्य बना देती है जो कि उसके सर्वोच्च शुभ का निर्माण करता है।”

शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन का सबसे बड़ा योगदान शिक्षा के लक्ष्यों और आदर्शों को लेकर है। शिक्षा दर्शन के बिना अध्यापन के कार्य में शिक्षक का कोई प्रयोजन नहीं होगा। चाहे हम वर्तमान शिक्षा में विज्ञान के योगदान की कितनी भी प्रशंसा क्यों न करें, यह कार्य विज्ञान के द्वारा संभव नहीं है। वास्तव में वर्तमान विज्ञान केवल साधन देता है जबकि साध्य दर्शन शास्त्र से मिलते हैं।

शिक्षा दर्शन शिक्षा के पाठ्यक्रम को निर्धारित करने में शिक्षक की सहायता करता है। दार्शनिक की व्याख्या करते हुए प्लेटो ने कहा था- “वह जो कि प्रत्येक प्रकार के ज्ञान में रुचि रखता है और जो कि सीखने के लिए जिज्ञासु है और कभी भी संतुष्ट नहीं है, उसे ही दार्शनिक कहना न्यायोचित है।” दर्शनशास्त्र शिक्षा की परिस्थिति को संपूर्ण रूप में देखता है। उसका दृष्टिकोण सर्वांग है। वह संपूर्ण रूप में देखता है।” अस्तु, वह सब प्रकार की एकांगिता का सही उपचार है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में एकांगिता की समस्या की आलोचना करते हुए ए.एम. श्लेजिंगर ने ठीक कहा है- “हमें अनिवार्य रूप से एक समृद्ध भावात्मक जीवन की आवश्यकता है, जिसमें व्यक्ति और समुदाय में वास्तविक संबंधों की प्रतिष्ठा हो।”

वर्तमान काल में विश्व में पूर्व और पश्चिम के दो भिन्न दृष्टिकोण दिखलाई पड़ते हैं। ये दो भिन्न सांस्कृतिक दृष्टिकोण, दो भिन्न जीवन दर्शन उपस्थित करते हैं। मानव जाति ने विभिन्न देशकाल में मानव के लिए उपयुक्त जीवन की खोज में अनेक प्रयोग किये हैं। आधुनिक मनुष्य को चाहिए कि वह विभिन्न संस्कृतियों की बुद्धिमताओं का समन्वय करे। आदर्श शिक्षक को पूर्व और पश्चिम, दर्शन और विज्ञान का समन्वय करना चाहिए। प्रौद्योगिकी से भाराक्रान्त जटिल आधुनिक सभ्यता से मानव के बर्बरता की ओर लौट जाने का खतरा उत्पन्न हो गया है। आज मनुष्य को आणविक युग और उद्योगवाद से उत्पन्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। सब जगह अव्यवस्था और हताशा दिखलाई पड़ती है। सब ओर से समस्याओं के सुलझाव उपस्थित किये जाते हैं। विज्ञान और अन्तर्राष्ट्रीय कानून असहाय दिखलाई पड़ते हैं। ऐसे समय में विचारशील व्यक्ति, धर्म, नैतिकता और आध्यात्मिकता की ओर देख रहे हैं। जैसा कि हाइनीमैन ने कहा है- “हमारे सामने जो विकल्प है, वह इस प्रकार है, या तो मस्तिष्क की शक्ति समाप्त हो, मानव का पतन हो, उसकी बौद्धिक और आध्यात्मिक क्रिया में गिरावट आये जो कि अधिकाधिक यंत्रवत हो रही है और अंत में अत्यधिक केन्द्रीयकृत नियंत्रण वाले नये तानाशाही प्रशासन की दासता की स्थापना हो, अथवा एक

आध्यात्मिक क्रान्ति हो, मानव इस तथ्य की ओर जागे कि अंत में वह असीम आध्यात्मिक शक्तियों वाला एक आध्यात्मिक प्राणी है और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने और तथाकथित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति को एक जनतंत्रीय व्यवस्था में नैतिक और आध्यात्मिक लक्ष्य के अधीन करने का कठोर निर्णय करे।”

अस्तु, शिक्षक के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता उसका शिक्षा दर्शन है। सांस्कृतिक अथवा किसी भी अन्य प्रकार की एकांगिता का एकमात्र उपचार दार्शनिक दृष्टिकोण है। यह दार्शनिक दृष्टिकोण उसके सर्वांग रूप में श्री अरविन्द के इन शब्दों में उपस्थित किया गया है-“हृदय और मस्तिष्क सार्वभौम देवता है और न तो हृदय के बिना मस्तिष्क और न मस्तिष्क के बिना हृदय मानव आदर्श हो सकता है।”

दर्शन शास्त्र की उपादेयता न केवल आदर्शों, लक्ष्यों और पाठ्यक्रम को निर्धारित करने में है बल्कि शिक्षा के व्यवहार के नित्य प्रति के कार्यक्रम में है। एडलर के शब्दों में- “इस प्रकार हम यह देखना शुरू करते हैं कि न केवल शिक्षा दर्शन का विशिष्ट क्षेत्र, प्रश्नों का उत्तर देते हुए विज्ञान द्वारा अनुत्तरीय है बल्कि शिक्षा दर्शन की आवश्यकता है क्योंकि उसके बिना मौलिक व्यवहारिक सिद्धान्तों का निश्चित निर्णय संभव नहीं है जो कि शैक्षिक व्यवहार के नित्य प्रति की नीतियों के अंतर्गत होता है।”

के.एल. श्रीमाली के शब्दों में-“इस प्रकार न केवल शिक्षक को एक शिक्षा-दर्शन रखना चाहिए, उसे अपने विद्यार्थियों में एक जीवन दर्शन विकसित करने के लिए भी तैयार होना चाहिए।” शिक्षक शिक्षार्थियों को जानकारी और ज्ञान प्रदान करता है, किन्तु उसकी व्यक्तिगत छाप उसके जीवन दर्शन के रूप में ही पड़ती है। महान शिक्षकों ने संसार को जानकारी नहीं बल्कि जीवन दर्शन प्रदान किये हैं।

अपनी उन्नति जानिए

1. “वास्तविक शिक्षा का संचालन वास्तविक दार्शनिक ही कर सकता है” यह कथन किसका है?
2. “दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा के उद्देश्य कभी भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सकते हैं।” यह कथन किसका है?
3. “हृदय और मस्तिष्क सार्वभौम देवता है, न तो हृदय के बिना मस्तिष्क और न मस्तिष्क के बिना हृदय मानव आदर्श हो सकता है।” यह कथन किसका है ?
4. “जिस प्रकार शिक्षा दर्शन पर आधारित है, उसी प्रकार दर्शन शिक्षा पर आधारित है।” यह कथन किसका है ?
5. “किसी भी मनुष्य के बारे में सबसे अधिक व्यवहारिक और सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात विश्व का उसका दृष्टिकोण, उसका दर्शन है।” यह कथन किसका है ?

भाग-तीन (PART- III)

8.5 दर्शन के कार्य

दर्शन के कार्यों पर दृष्टिपात करने पर हमें निम्नलिखित कार्य महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं:-

1. दर्शन व्यक्ति की जिज्ञासा की तृप्ति करके ज्ञान प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है।
2. यह ध्यान को केन्द्रित करने में व्यक्ति की सहायता करता है। सांसारिक इच्छाएं एवं इन्द्रियजन्य कामनाएं संयम, प्राणायाम, धारणा द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध करना संभव है और इस कार्य में दर्शन सहायता करता है।
3. यह शब्दों और अर्थों का विश्लेषण करके कार्य की सही दिशा निश्चित करता है।
4. यह वास्तविक सत्य की खोज करने का प्रयत्न करता है। विभिन्न विज्ञानों द्वारा प्राप्त सत्यों में अन्तर्विरोधों को यह दूर करता है।
5. यह मानव-जीवन के आदि-अंत पर विचार करके जीवन को सोद्देश्य बनाता है।
6. जीव, जगत्, सत्, चित्, आनन्द, आत्मन्, परमात्मन्, मनस् आदि से सम्बद्ध प्रश्नों का हल ढूंढने का यह प्रयत्न करता है।
7. जीवन की विभिन्नताओं और विसंगतियों को सामंजस्य में लाने का यह प्रयास करता है।
8. यह तथ्यों का मात्र संग्रह करके उनमें व्याप्त संबंधों को देखता है और प्रत्येक अनुभवगम्य वस्तु की आत्मा को देखने का प्रयास करता है।

अपनी उन्नति जानिए

1. “पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान ही दर्शन है।” यह परिभाषा किसकी है ?
2. “ज्ञान का विज्ञान ही दर्शन है।” यह परिभाषा किसकी है ?
3. “यथार्थता के स्वरूप का तार्किक विवेचन ही दर्शन है।” यह परिभाषा किसकी है ?
4. मूल्य शास्त्र को मुख्यतः कितने भागों में विभाजित किया जाता है ? उनके नाम लिखिए।
5. सूत्र काल को दूसरे किस नाम से जाना जाता है ?

8.6 सारांश

ऐतिहासिक दृष्टि से वैदिक युग भारतीय दर्शन का प्राचीनतम युग है। उस काल में प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता एवं अल्प जनसंख्या के कारण भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का कार्य सरल था। अतः तपोवनों में महान् आध्यात्मिक संस्कृति का उदय हो सका। ऋग्वेद हमें यह संदेश देता है कि भौतिक वातावरण से दूर रहकर और अन्तर्मुखी प्रकृति अपनाने से ही परम शान्ति मिल सकती है। अथर्ववेद लौकिक सामग्री से भरा हुआ है और सामवेद में संगीत प्रमुख तत्व है। यजुर्वेद में कर्मकाण्ड की प्रधानता है। वैदिक साहित्य मूलरूपेण ऋग्वेद का विकसित रूप है और परवर्ती संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों एवं उपनिषदों का काल उत्तर वैदिक काल के रूप में जाना जाता है। समग्र

वैदिक वाङ्मय परस्पर सम्बद्ध होते हुए भी वर्णवस्तु में भिन्न होता गया है। पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा उत्तर वैदिक काल में ब्रह्म की खोज एवं आत्म तत्व का अन्वेषण प्रमुख लक्ष्य था।

उपनिषदों के पश्चात् ब्राह्मण साहित्य का एक प्रमुख भाग सूत्र रूप में मिलता है। इसीलिए इस काल को सूत्रकाल कहा जा सकता है।

सूत्रकाल को शास्त्रीय युग भी कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में विभिन्न शास्त्रीय साहित्यों का निर्माण हुआ और उनके दर्शनों का उदय हुआ, जिसमें षड्दर्शनों की परम्परा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। षड्दर्शनों में सांख्य योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा है।

सांख्य दर्शन जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, योग उसी का व्यवहारिक रूप प्रस्तुत करता है। अतः सांख्य योग दर्शन साथ-साथ चलते हैं। सांख्य का अर्थ है सम्यक् ख्याति का यथार्थ ज्ञान। कपिल की यह धारणा है कि प्रकृति और पुरुष दो स्वाधीन सत्ताएं हैं, जिनमें संयोग की क्षमता है और इसी संयोग से प्रकृति के गुणों का सामंजस्य टूटता है और सृष्टि का निर्माण होता है।

जैमिनि द्वारा प्रस्तुत पूर्व मीमांसा दर्शन पूर्णरूपेण वेदाश्रित है। यह धर्म एवं नीति-परायण अधिक है। ईश्वर को स्वीकार करते हुए भी पूर्व मीमांसक बहुदेववादी हैं। स्वर्ग, नरक, कर्म, नियम, पुनर्जन्म, आत्म की नित्यता, अनेक देवों की सत्ता में इनका विश्वास है। उत्तर मीमांसा को वेदान्त भी कहते हैं और यह वेदों के अंतिम भाग उपनिषदों पर आधारित है। इसमें बहुदेववाद का विरोध है। वेदान्त अनुयायियों की एक लम्बी श्रृंखला है, जिसमें शंकर, रामानुज, मध्य, निम्बार्क, वल्लभ आदि प्रमुख हैं। वादरायण द्वारा प्रस्तुत ब्रह्मसूत्र पर ही मूल रूप से वेदान्त आधारित है। 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' समग्र वेदान्त दर्शन का निचोड़ है। सृष्टि के मूल में एक अखण्ड, अनन्त, अनादि चेतन शक्ति है और समस्त सृष्टि उसी का आभास (शंकर) या परिणाम (रामानुज) है। वेदान्त दर्शन पूर्णतः अध्यात्मवादी है।

8.7 शब्दावली

1. पूर्व मीमांसा:- पूर्व मीमांसा दर्शन पूर्णरूपेण वेदाश्रित है। यह धर्म एवं नीति-परायण अधिक है। ईश्वर को स्वीकार करते हुए भी पूर्व मीमांसक बहुदेववादी हैं। स्वर्ग, नरक, कर्म, नियम, पुनर्जन्म, आत्म की नित्यता, अनेक देवों की सत्ता में इनका विश्वास है।
2. उत्तर मीमांसा:- उत्तर मीमांसा को वेदान्त भी कहते हैं और यह वेदों के अंतिम भाग उपनिषदों पर आधारित है। इसमें बहुदेववाद का विरोध है।
3. आप्त:-

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग-एक (PART-I)

1. भारतीय दर्शन का स्रोत वेद है।
2. चार्वाक, बौद्ध तथा जैन दर्शन वेदों को नहीं मानते।
3. षड्दर्शन।
4. नास्तिक से हमारा अभिप्राय जो परलोक में विश्वास नहीं करता।
5. सनत्सुजात के अनुसार।

भाग-दो (PART-II)

1. दशम मण्डल के 121वें सूक्त में।
2. निष्काम कर्म है।
3. गीता में ज्ञान, भक्ति और कर्म तीन मार्ग की महिमा बताई गई है।
4. यह कथन चार्वाक दर्शन का है।
5. वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी-चार तत्व, जैन दर्शन।

भाग-तीन (PART-III)

1. प्लेटो की।
2. फिस्टो की।
3. डॉ. राधाकृष्णन की।
4. मूल्य शास्त्र को तीन भागों में- 1. तर्क शास्त्र, 2. नीति शास्त्र एवं 3. सौन्दर्य शास्त्र
5. सूत्रकाल को दूसरे शास्त्रीय नाम से भी जाना जाता है।

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठा।
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. शर्मा, रामनाथ व शर्मा राजेन्द्रकुमार (2006) एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

8.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।

3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग् हाउस,मेरठा।
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. 5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दर्शन का अर्थ बताइये तथा दर्शन की प्रकृति की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
2. दर्शन की परिभाषाएं लिखिए तथा दर्शन की उपयोगिता लिखिए।
3. दर्शन की आवश्यकता तथा क्षेत्र का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. शिक्षा-दर्शन का शिक्षक के लिए क्या उपयोग है ? विस्तृत व्याख्या कीजिए।
5. शिक्षा-दर्शन के महत्व का विवेचन कीजिए।
6. एक अध्यापक को शिक्षा दर्शन को पढ़ना चाहिए। क्या शिक्षा मनोविज्ञान पर्याप्त नहीं है ?

**इकाई 9 आदर्शवाद और शिक्षा: उद्देश्य, प्रक्रिया,
पाठ्यक्रम, अनुशासन व अध्यापक की भूमिका
(Idealism and Education: Aims, Process, Curriculum,
Discipline and Role of Teacher)**

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- भाग-एक
- 9.3 आदर्शवाद और शिक्षा
- 9.3.1 आदर्शवाद का अर्थ
- 9.3.2 आदर्शवाद की परिभाषाएं
- 9.3.3 आदर्शवाद प्रक्रिया
अपनी उन्नति जानिए
- भाग-दो
- 9.4 शिक्षा के उद्देश्य
- 9.4.1 आदर्शवाद व शिक्षा के उद्देश्य
- 9.4.2 आदर्शवाद और पाठ्यक्रम
- 9.4.3 आदर्शवाद और अनुशासन
अपनी उन्नति जानिए
- भाग-तीन
- 9.5 आदर्शवाद व शिक्षक
- 9.5.1 आदर्शवाद एवं बालक
अपनी उन्नति जानिए
- 9.6 सारांश
- 9.7 कठिन शब्द
- 9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ

9.11 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव सभ्यता के उदभव और विकास के समय से ही आदर्शवादी विचारधारा का किसी न किसी रूप में अस्तित्व रहा है। आधुनिक काल में जब मानव ने चिन्तन एवं मनन आरम्भ किया तब से आदर्शवादी विचारधारा निरन्तर पुष्पित एवं पल्लवित होती है। आदर्शवादी विचारधारा जीवन की निश्चितताओं से जुड़ी हुई है। इसका आशय है-जीवन के लिए निश्चित आदर्शों व मूल्यों का निर्धारण कर मनुष्य को उनके अनुकरण हेतु निर्देशित करना। यह विचारधारा भौतिक वस्तुओं की अपेक्षा विचारों पर अधिक बल देती है। आदर्शवादी दर्शन का प्रतिपादन सुकरात, प्लेटो, डेकार्टो, स्पिनोसा, वर्कलकान्ट, फिटशे, रोलिंग, हीगल, ग्रीन जेन्टाइल आदि अनेक पाश्चात्य तथा वेदों व उपनिषदों के प्रणेता महर्षियों से लेकर अरविन्द घोष तक अनेक पूर्वी दार्शनिकों ने किया है।

9.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

1. आदर्शवाद का ज्ञान प्राप्त करा सकेंगे।
2. आदर्शवाद का अर्थ, परिभाषाएं व जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद को समझ सकेंगे।
3. आदर्शवाद व शिक्षा के उद्देश्यों को जान सकेंगे।
4. आदर्शवाद में पाठ्यक्रम व शिक्षण पद्धति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
5. आदर्शवाद में शिक्षक व बालक के गुणों को समझ सकेंगे।

भाग-एक

9.3 आदर्शवाद और शिक्षा (Idealism and Education)

आदर्शवाद दार्शनिक जगत में प्राचीनतम विचारधाराओं में से है। एडम्स के शब्दों में “आदर्शवाद एक अथवा दूसरे रूप में दर्शन के समस्त इतिहास में व्याप्त है। आदर्शवाद का उदगम स्वयं मानव प्रकृति में है। आदर्शवाद शास्त्रीय दृष्टि से आध्यात्मवाद है। अर्थात् इसके अनुसार विश्व में परम सत्ता की प्रकृति आध्यात्मिक है। समस्त विश्व आत्मा या मनस से अवस्थित है। प्रमाण शास्त्र की दृष्टि से

आदर्शवाद प्रत्यवाद है। अर्थात् इसके अनुसार विचार ही सत्य है। यह प्रत्यवाद प्राचीन यूनानी दार्शनिक प्लेटो के विचारों में मिलता है। जिसके अनुसार विचारों का जगत वस्तुजगत से कहीं अधिक यथार्थ है। मूल्यात्मक दृष्टि से इस दर्शन को आदर्शवाद कहा जाता है।

आदर्शवाद के दर्शन को संक्षेप में उपस्थित करते हुए जी.टी. डब्ल्यू पैट्रिक ने लिखा है, “आदर्शवादी यह मानने से इन्कार करते हैं कि जगत् एक विशाल यंत्र है। वे हमारे जगत् की व्याख्या में जड़त्व, यंत्रवाद और ऊर्जा के संरक्षण को सर्वोच्च महत्व से इन्कार करते हैं। वे अनुभव करते हैं कि किसी न किसी प्रकार से कुछ विज्ञान जैसे मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र आदि का आधारभूत और अंतरंग चीजों से संबंध है। वे प्रकृति के रहस्यों को समझने के लिए वैसी ही कुंजी हैं जैसे कि भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र हैं। वे यह विश्वास करते हैं कि जगत् का एक अर्थ है एक प्रयोजन है। शायद एक लक्ष्य है। अर्थात् जगत् के हृदय और मानव की आत्मा में एक प्रकार का आन्तरिक समन्वय है, जिसमें कि मानवबुद्धि प्रकृति के बाहरी आवरण को छेद सकती है। आदर्शवाद की इस व्याख्या में जड़वाद के विरुद्ध आदर्शवाद के लक्षण बतलाए गये हैं।

कोई भी दार्शनिक सिद्धान्त दो प्रकार से समझा जा सकता है- एक तो उन सिद्धान्तों को समझकर, जिनका कि वह प्रतिपादन करता है और दूसरे उन बातों को जानकर जिनका कि वह निराकरण करता है। क्योंकि प्रत्येक दर्शन कुछ सिद्धान्तों के समर्थन और कुछ बातों के निराकरण पर आधारित होता है। इस दृष्टि से आदर्शवाद की स्थिति की व्याख्या करते हुए डब्ल्यू.ई. हाकिंग ने लिखा है कि आदर्शवाद के अनुसार प्रकृति आत्मनिर्भर नहीं है। वह स्वतंत्र दिखलाई पड़ती है। किन्तु वास्तव में वह मनस पर आधारित है। दूसरी ओर मनस, आत्मा या प्रत्यय ही वास्तविक सत्ता है।

9.3.1 आदर्शवाद का अर्थ Meaning of Idealism

आदर्शवाद, जिसे हम अंग्रेजी में (Idealism) कहते हैं, दो शब्दों से मिलकर बना है- Ideal+ism लेकिन कुछ विचारक यह मानते हैं कि इसमें दो शब्द हैं - Ideal+ism इसमें सुविधा के लिए जोड़ दिया गया है। वास्तव में यदि देखा जाये तो इसे Idea या विचार से ही उत्पन्न होना माना जाना चाहिए। चूंकि इसके प्रवर्तक दार्शनिक विचार की निरन्तर सत्ता में विश्वास करते हैं, इस कारण इसे विचारधारा के प्रत्ययवाद की संज्ञा दी जाती है। परन्तु प्रचलन में हम आदर्शवाद का प्रयोग ही करते हैं। यह दर्शन वस्तु की अपेक्षा विचारों, भावों तथा आदर्शों को महत्व देते हुए यह स्वीकार करता है कि जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति तथा आत्मा का विकास है। इसी कारण यह आध्यात्मिक जगत् को उत्कृष्ट मानता है और उसे ही सत्य व यथार्थ के रूप में स्वीकार करता है।

9.3.2 आदर्शवाद की परिभाषाएं Definition of Idealism

रॉस (Ross) . “आदर्शवादियों के अनेक रूप हैं, किन्तु सबका सार यह है कि मन या आत्मा ही इस जगत का पदार्थ है और मानसिक स्वरूप सत्य है।” (Idealism Philosophy takes many and varied from, but the postulate underlying all is that mind or spirit is essential word stuff that the true reality is of a Mental character)

ब्रूबेकर (Brubacher) “आदर्शवादियों के अनुसार- इस जगत को समझने के लिए मन केन्द्रीय बिन्दु है। इस जगत को समझने हेतु मन की क्रियाशीलता से बढ़कर उनके लिए अन्य कोई वास्तविकता नहीं है।” (The Idealism point out that It is mind that is central in understanding the world . To them nothing gives greater sense of reality then the activity of mind lugged in typing to comprehended its words.

हैण्डरसन (Handerson) “आदर्शवाद मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है, क्योंकि आदर्शवादियों के लिए आध्यात्मिक मूल्य जीवन के तथा मनुष्य के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है। एक तत्वज्ञानी आदर्शवादी का विश्वास है कि मनुष्य का सीमित मन असीमित मन से पैदा होता है। व्यक्ति और जगत दोनों बुद्धि की अभिव्यक्ति है और भौतिक जगत की व्याख्या मन से की जा सकती है।”

डी.एम.दत्ता (D.M.datta) “आदर्शवाद वह सिद्धान्त है जो अन्तिम सत्ता आध्यात्मिकता को मानता है।”

राजन के अनुसार . “आदर्शवादियों का विश्वास है कि ब्रह्माण्ड की अपनी बुद्धि एवं इच्छा है और सब भौतिक वस्तुओं को उनके पीछे विद्यमान मन द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।”

9.3.3 आदर्शवाद प्रक्रिया (Idealism process)

आदर्शवाद जीवन की एक प्राचीन विचारधारा है। आज भी इस बात का पर्याप्त सम्मान है। जीवन दर्शन के रूप में इसने विश्व के उच्च कोटि के दार्शनिकों को आकृष्ट किया है।

आदर्शवाद विकास में विश्वास करता है, किन्तु उसका विकासवाद प्रकृतिवादी विकासवाद से भिन्न है। आदर्शवाद के अनुसार विकास का अन्तिम लक्ष्य आत्मा की प्राप्ति ही है न कि निचले स्तर से ऊंचे स्तर के प्राणी में विकास करना। आदर्शवाद के अनुसार पदार्थ अन्तिम सत्य नहीं है। पदार्थ का प्रत्यय वास्तविक है, पदार्थ का भौतिक रूप असत्य है। भौतिक जगत नश्वर है, परिवर्तनशील है। सत्य को स्थायी एवं अपरिवर्तनशील होना चाहिए। अतः सत्य विचारात्मक एवं मानसिक है, क्योंकि विचार एवं प्रत्यय में स्थायित्व होता है। इस आधार पर शरीर नश्वर है, अतः असत्य है, आत्मा अनश्वर सत्य है। अन्तिम सत्य का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है, शेष तो अज्ञान अथवा ज्ञानाभास है। यह

ज्ञान तर्कजन्य है, चिन्तन एवं मनन तथा अंतर्दृष्टि का परिणाम है। यह इन्द्रियों का विषय नहीं है। आदर्शवाद अनेकता में एकता का दर्शन करता है। सत्य मानसिक है। सृष्टि के अनेक रूपों में उस एक चरम सत्य को देखना ही अनेकता में एकता का दर्शन करना है।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

1. निम्न परिभाषा किस विद्वान की है ?
 ‘‘आदर्शवाद एक अथवा दूसरे रूप में दर्शन के समस्त इतिहास में व्याप्त है’’
 (अ) एडम्स (ब) जी.टी. डब्ल्यू पैट्रिक (स) डब्ल्यू.ई. हाकिंग (द) हटसन
2. आदर्शवाद का दूसरा नाम है-
 (अ) आत्मवाद (ब) विचारधारा का प्रत्यवाद (स) प्रकृतिवाद (द) प्रमाण-शास्त्र
3. शरीर नश्वर है अतः असत्य है, आत्मा अनश्वर अतः असत्य है। यह विचारधारा है-
 (अ) प्रकृतिवाद (ब) प्रयोजनवाद (स) अस्तित्ववाद (द) आदर्शवाद
4. प्रकृति अपने आप में अपूर्ण है। वह स्वयं किसी सत्य पर आश्रित है। अतः प्रकृति का ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान नहीं है। यह विचारधारा है-
 (अ) प्रकृतिवादी (ब) आदर्शवादी (स) प्रयोजनवादी (द) अस्तित्ववादी
5. निम्न में कौन विचारक आदर्शवादी थे ?
 (अ) सुकरात (ब) लॉक (स) गैलीलियो (द) हांकिंग

भाग-दो

9.4 शिक्षा के उद्देश्य (Objective of Education)

आदर्शवादी दार्शनिकों के मतानुसार मानव के जीवन का लक्ष्य, मोक्ष की प्राप्ति, आध्यात्मिक विकास करना या उसे जानना है। इस कार्य के लिए मानव को चार चरणों पर सफलता प्राप्त करनी होती है। प्रथम चरण पर उसे अपने प्राकृतिक ‘स्व’ का विकास करना होता है। इसके अंतर्गत मनुष्य का शारीरिक विकास आता है। दूसरे चरण पर उसे अपने सामाजिक ‘स्व’ का विकास करना होता है। इसके अंतर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, चारित्रिक एवं नागरिकता का विकास आता है। तीसरे चरण पर उसे अपने मानसिक ‘स्व’ का विकास करना होता है। इसके अंतर्गत मानसिक, बौद्धिक एवं विवेक शक्ति का विकास करना होता है। और चौथे तथा अंतिम चरण पर उसे अपने आध्यात्मिक ‘स्व’ का विकास करना होता है। इसके अंतर्गत आध्यात्मिक चेतना का विकास आता है। आदर्शवादी इन्हीं सबको शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करते हैं।

9.4.1 आदर्शवाद व शिक्षा के उद्देश्य (Idealism and Objectives of Education)

1. **आत्मानुभूति का विकास (Development of self –realization)** - आदर्शवादी विचारधारा यह मानती है कि प्रकृति से परे यदि कोई चेतन सत्ता के अनुरूप है तो वह है 'मनुष्य'। इस कारण विश्व व्याप्त चेतन सत्ता की अनुभूति मनुष्य तब तक नहीं कर सकता, जब तक उसके अंदर व्याप्त चैतन्यता का विकास न हो। इस कारण शिक्षा का सर्वोच्च कार्य यह है कि वह मनुष्य को इतना सक्षम बनाये कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचाने व उसकी अनुभूति कर सके। इस आत्मानुभूति के प्रमुख रूप से चार सोपान होते हैं:-

- i. शारीरिक व जैविकीय (Physical Self)
- ii. सामाजिक 'स्व' (Social self)
- iii. बौद्धिक 'स्व' [Intellectual self]
- iv. आध्यात्मिक 'स्व' (spiritual self)

शारीरिक 'स्व' आत्मानुभूति का निम्नतम सोपान है, जिसे प्रकृतिवादी आत्माभिव्यक्ति (Self expression) संज्ञा देते हैं। सामाजिक 'स्व' को अर्थ क्रियावादी महत्व देता है, इसमें व्यक्ति सामाजिक हित की परिकल्पना करता है व सामाजिक कल्याण हेतु व्यक्तिगत स्वार्थों का परित्याग कर देता है। बौद्धिक अनुभूति के स्तर पर व्यक्ति विवेक द्वारा 'स्व' की अनुभूति करता है व सामाजिक नैतिकता से ऊपर उठकर सद्-असद् में भेद कर सकता है और उसका आचरण चिन्तन तथा विश्वास विवेकपूर्ण हो जाता है। आध्यात्मिक 'स्व' स्वानुभूति का सर्वोच्च स्तर है, जहां व्यक्ति गुणों को अपने व्यक्तित्व में अंगीकृत सहज प्रक्रिया द्वारा ही कर लेता है व अपने अंदर विश्वात्मा का तादाम्य करने लगता है। इस विश्वात्मा को हम तीन रूपों में अभिव्यक्त करते हैं:- सत्य, शिव व सुन्दर। आदर्शवादी जब आत्मानुभूति के लिए शिक्षा देने की बात करते हैं, तो उनका एक ही लक्ष्य होता है, "अपने आपको पहचानो" (To Know Thyself)

2. **आध्यात्मिक मूल्यों का विकास (Development of Spiritual Values)** - आदर्शवादी विचारधारा भौतिक जगत की अपेक्षाकृत आध्यात्मिक जगत को महत्वपूर्ण मानती है। अतः शिक्षा के उद्देश्यों में भी बालक के आध्यात्मिक विकास को महत्व देते हैं। यह मनुष्य को एक नैतिक प्राणी के रूप में अवलोकित करते हैं व शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण को मानते हैं। वह 'सत्यं शिवं सुन्दरं' के मूल्यों का विकास करते हुए इस बात की भी चर्चा करते हैं कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक में आध्यात्मिक दृष्टि से विकास करना है।
3. **बालक के व्यक्तित्व का उन्नयन (To Exalt Child's Personality)** - बोगोस्लोवस्की के अनुसार-" हमारा उद्देश्य छात्रों को इस योग्य बनाना है कि वे सम्पन्न तथा सारयुक्त जीवन बिता सकें , सर्वांगीण तथा रंगीन व्यक्तित्व का निर्माण कर सकें, सुखी रहने के उल्लास का उपभोग कर सकें। यदि तकलीफ आये तो गरिमा एवं लाभ के साथ

उनका सामना कर सकें तथा इस उच्च जीवन को जीने में दूसरे लोगों की सहायता कर सकें'।

व्यक्तित्व के उन्नयन की चर्चा करते हुए प्लेटो व रॉस भी यह मानते हैं कि शिक्षा के द्वारा मानव व्यक्तित्व को पूर्णता प्राप्त की जानी चाहिए और साथ ही उसके व्यक्तित्व का उन्नयन होना चाहिए।

4. **अनेकता में एकता के दर्शन (To Establish Unity in Diversity)** - आदर्शवाद इस विचारधारा का समर्थन करते हुए इस बात पर बल देता है कि शिक्षा का उद्देश्य बालक को इस दृष्टि से समर्थ बनाना होना चाहिए कि वह संसार में विद्यमान भिन्न-भिन्न बातों को एकता के सूत्र में बाँध सके अर्थात् बालक के अंदर यह समझ उत्पन्न करनी चाहिए कि वह इस संसार के संचालन करने वाली एक परम सत्ता है जो ईश्वर के नाम से जानी जाती है और यह ईश्वर की सत्ता जगत के सभी प्राणियों का संचालन करती है। इस ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति कराना ही शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। इसकी अनुभूति होने पर ही व्यक्ति इस संसार के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकता है व व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान कर सकता है।
5. **सभ्यता एवं संस्कृति का विकास Development of Culture and Civilization** आदर्शवाद यह मानता है कि व्यक्ति जिस समाज का सदस्य है, उस समाज की संस्कृति से उसका परिचय होना परम आवश्यक है। साथ ही बालक यदि समाज को जीवित रखना चाहता है तो उसे समाज की धरोहर के रूप में जो सभ्यता व संस्कृति प्राप्त होती है, उसकी भी रक्षा करनी चाहिए। सभ्यता व संस्कृति तो वह आधार प्रस्तुत करती है जिसके द्वारा समाज का विकास संभव होता है। आदर्शवाद व्यक्ति की अपेक्षा समाज को महत्व देता है। इसी कारण वह शिक्षा का उद्देश्य सभ्यता व संस्कृति का विकास करना मानते हैं। रस्क का विचार है कि “सांस्कृतिक वातावरण मानव का स्वरचित वातावरण है अथवा यह मनुष्य की सृजनात्मक क्रिया का परिणाम है जिसकी रक्षा व विकास करना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।” (Cultural Environment is an environment of man's creative activity. The aim of idealistic education is the preservation as well as environment of Culture. Rusk)
6. **वस्तु की अपेक्षा विचारों का महत्व (Idea are Important than Objective)** - आदर्शवाद यह मानता है कि इस संसार में पदार्थ नाशवान है व विचार अमर। विचार सत्य, वास्तविक व अपरिवर्तनशील है। विचार ही मनुष्य को ज्ञान प्रदान करने का माध्यम है। यह संसार मनुष्य के विचारों में ही निहित होता है। वह यह मानते हैं कि यह जगत यंत्रवत् नहीं है। चूंकि इस जगत में विद्यमान वस्तुओं का जन्म मानसिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप ही होता है। इनका विचार है कि “यह विश्व विचार के समान है, यंत्रवत् नहीं। (Universe is like a thought than a machine)
7. **जड़ प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य का महत्व (Man is Important then Nature)** -

आदर्शवादी मनुष्य का स्थान ईश्वर से थोड़ा ही नीचा मानते हैं। (Man is little lower than angels) इनका विचार है कि मनुष्य इतना सक्षम होता है कि वह आध्यात्मिक जगत का अनुभव कर सके व ईश्वर से अपना तादात्म्य स्थापित कर सके या उसकी अनुभूति कर सके। इस कारण वह जड़ प्रकृति से बहुत महत्वपूर्ण है। वह यह भी मानते हैं कि मनुष्य बुद्धिपूर्ण व विवेकपूर्ण प्राणी है और बुद्धि ही मनुष्य के विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलापों का आधार बनती है, जिससे मानव अपने आपको पशुवत् गुणों से ऊँचा उठा लेता है।

8. आदर्शवादी विचारधारा ने मुख्यतया शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा की है, परन्तु इन्होंने शिक्षा के अन्य पक्षों पर भी थोड़ा प्रकाश डाला है, उनकी उपेक्षा नहीं की है। अब हम इस बात की चर्चा करेंगे कि आदर्शवाद ने पाठ्यक्रम, पाठन विधि, शिक्षक, अनुशासन आदि के संबंध में क्या विचार दिये हैं।

9.4.2 आदर्शवाद और पाठ्यक्रम (Idealism and Curriculum)

अब प्रश्न उठता है कि उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम किस प्रकार का होना चाहिए? छात्र जिस प्रकार के वातावरण में जन्म लेता है उसी प्रकार के वातावरण में रहने का आदी हो जाता है। यह निश्चित है कि हम पाठ्यक्रम की योजना बनाते समय इस वातावरण की उपेक्षा नहीं कर सकते। संभव है कि हम पाठ्यक्रम में ऐसी सूचनाओं एवं क्रियाओं को भी स्थान दें, जिन्हें हम पूर्णतः सत्य नहीं मानते। आदर्शवाद भौतिक जगत को अंतिम सत्य नहीं मानता किन्तु सत्य का आभास तो मानता ही है। सत्य को इसी भौतिक जगत में रहकर एवं भौतिक वातावरण के सहयोग से ही आदर्शवाद चरम सत्य को प्राप्त करने का परामर्श देता है। मनुष्य का आध्यात्मिक वातावरण अधिक महत्वपूर्ण होता है किन्तु प्राकृतिक वातावरण की उपेक्षा नहीं की जा सकती। व्यक्ति शरीर और मन का संयोग है, जिसमें मन अधिक महत्वपूर्ण है। किन्तु यदि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति न की गयी तो मानसिक क्रिया भी दुःसाध्य हो जायेगी। व्यक्ति आत्मानुभूति की ओर तभी आगे बढ़ सकता है, जबकि उसने शारीरिक आवश्यकताओं को वश में कर लिया हो। अतः भौतिक जगत की जानकारी भी आवश्यक है। छात्र को प्राकृतिक वातावरण का ज्ञान होना चाहिए। इसके साथ ही आध्यात्मिक वातावरण पर विशेष दृष्टि होनी चाहिए। आध्यात्मिक वातावरण में व्यक्ति के बौद्धिक, सौन्दर्यानुभूति संबंधी, नैतिक एवं धार्मिक सभी क्रिया-कलाप आते हैं। उसका ज्ञान, कला, नीति तथा धर्म इसी आध्यात्मिक वातावरण के अंतर्गत है। समाज की प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की आवश्यकताएं हैं। प्राकृतिक वातावरण से मानव समाज प्रभावित होता रहता है। उसने कला, धर्म एवं नीति आदि का विकास करके आध्यात्मिक वातावरण का सृजन किया है। समाज अपने ज्ञान को स्थायी बनाना चाहता है कि उसके भावी सदस्य प्राकृतिक विषयों एवं आध्यात्मिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करें। वह यह नहीं चाहता कि समाज में एक प्रकार के ही व्यक्ति हों। अतः समाज एवं व्यक्ति दोनों की दृष्टि से ही पाठ्यक्रम में प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक वातावरण के ज्ञान का समावेश होना

चाहिए। व्यक्ति आत्मानुभूति भी तभी कर सकता है जब दोनों प्रकार की आवश्यकता की पूर्ति में सचेष्ट हो।

इस दृष्टि से आदर्शवाद शारीरिक प्रशिक्षण की उपेक्षा नहीं कर सकता। शारीरिक शिक्षा भी उसके पाठ्यक्रम में होगी। प्राकृतिक वातावरण की जानकारी प्राकृतिक विज्ञानों से होती है, अतः भौतिकी, रसायनिकी, भूमिति, भूगोल, खगोल, भूगर्भ विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, जीव-विज्ञान आदि विषयों को आदर्शवाद तिलांजलि नहीं देता। आध्यात्मिक विकास के लिए कला, साहित्य, नीतिशास्त्र, दर्शन, धर्म, मनोविज्ञान, संगीत आदि विषय अधिक महत्वपूर्ण हैं। इन विषयों के अध्ययन से मानव की आत्मा का विकास होता है। यदि इन विषयों का अध्ययन न किया जाये तो व्यक्ति प्राकृतिक वातावरण तक ही सीमित रह जायेगा।

9.4.3 आदर्शवाद और अनुशासन Idealism and discipline

आदर्शवाद में अनुशासन को शिक्षा के लिये महत्वपूर्ण माना गया है। आदर्शवादी बालक को पूर्ण स्वतंत्रता देने के पक्ष में नहीं है, जबकि प्रकृतिवाद पूर्ण स्वतंत्रता का पक्षपाती था। सम्पूर्ण शिक्षा आदर्श केन्द्रित होती है। आदर्शवादी शिक्षक छात्रों को इस बात के लिये सचेत करता है कि स्वतंत्रता की अधिक मात्रा हानिकारक होती है। प्रकृतिवाद का नारा है 'स्वतंत्रता' और आदर्शवाद का नारा है 'अनुशासन'। अनुशासित जीवन से ही आध्यात्मिक उपलब्धि सम्भव है। किंतु अनुशासन बाह्य नियन्त्रण द्वारा संभव नहीं है, बल्कि यह स्वयं पर स्वेच्छा से लागू किया गया प्राकृतिक नियंत्रण है। जिसे अनुशासित जीवन के लिए आवश्यक माना गया। आदर्शवाद नैतिक गुणों के विकास का समर्थन करता है। नैतिक गुणों के विकास के लिए अनुशासन आवश्यक है। नम्रता, ईमानदारी, समय प्रबन्ध, आज्ञाकारिता, निष्ठा, सत्यवादिता आदि ऐसे गुण हैं। जिनका विकास आवश्यक है। इनका विकास अनुशासनपूर्ण वातावरण में ही सम्भव है।

अपनी उन्नति जानिए ((Check your Progress))

1. आदर्शवादियों के अनुसार मानव को मोक्ष प्राप्त करने के लिए कितने चरणों (सोपान) पर सफलता प्राप्त करनी होती है?
(अ) पांच चरणों में (ब) चार चरणों में (स) तीन चरणों में (द) दो चरणों में
2. "अपने आपको पहचानो" (To Know Thyself) यह विचारधारा है-
(अ) प्रकृतिवाद (ब) अस्तित्ववाद (स) आदर्शवाद (द) प्रयोजनवाद
3. "संसार में पदार्थ नाशवान है, विचार अमर, विचार सत्य, वास्तविक व अपरिवर्तनशील है" यह विचारधारा है-
(अ) आदर्शवाद (ब) प्रकृतिवाद (स) प्रयोजनवाद (द) अस्तित्ववाद
4. "सृष्टि की आत्मा चरम सत्य है, वही शिव है, वही सुन्दर है", यह कथन है-

- (अ) प्रकृतिवादी (ब) प्रयोजनवादी (स) अस्तित्ववादी (द) आदर्शवादी
5. आदर्शवाद का नारा है:-
- (अ) स्वतंत्रता (ब) अनुशासन (स) प्रयोग (द) इनमें से कोई नहीं
- भाग-तीन

9.5 आदर्शवाद व शिक्षक (Idealism and Teacher)

जेण्टील (Gentile) का कथन है कि “अध्यापक सही चरित्र का आध्यात्मिक प्रतीक है” (Teacher is Spiritual Symbol of right Conduct)। आदर्शवादी विचारक शिक्षक को उस अनुपम स्थिति में रखते हैं, जिसमें शिक्षण प्रक्रिया का कोई अन्य अंश नहीं रखा जा सकता। आदर्शवादी दार्शनिक शिक्षक में जिन गुणों की परिकल्पना करते हैं, उनकी चर्चा बटलर ने इस प्रकार की है-

1. शिक्षक बालक के लिए सत्ता का साकार रूप होता है।
2. अध्यापक को छात्रों की व्यक्तिगत, सामाजिक व आर्थिक विशेषताओं का ज्ञाता होना चाहिए।
3. शिक्षक को अध्यापन कला का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए व उसमें व्यवसायिक कुशलता होनी चाहिए।
4. अध्यापक का व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए, जिससे वह छात्रों को अपनी ओर आकर्षित कर सके।
5. अध्यापक एक दार्शनिक, मित्र व पथ-प्रदर्शक के रूप में होना चाहिए।
6. अध्यापक का व्यक्तित्व अच्छे गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए, जिससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में वह छात्रों को सद्गुणों के ढाँचे में ढाल सके।
7. छात्रों के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करना अध्यापक के जीवन का परम लक्ष्य होना चाहिए।
8. शिक्षक को अपने विषय का पूर्ण एवं सही ज्ञान होना चाहिए।
9. अध्यापक में स्व-अध्ययन का गुण होना चाहिए, जिससे वह निरन्तर नवीन ज्ञान की ओर उन्मुख हो सके।
10. अध्यापक को प्रजातंत्र की सुरक्षा रखने का प्रयास करना चाहिए।

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री फ्राबेल ने कहा है कि बालक एक पौधे के समान है और अध्यापक एक माली के सदृश, जो पौधे को आवश्यकतानुसार सींचकर, खाद आदि डालकर तथा काट-छांटकर

सुव्यवस्थित रूप में पनपाता है, जिससे वह एक सुन्दर और मनमोहक वृक्ष बन सके। शिक्षक के महत्व के संबंध में रॉस ने भी कहा है-“प्रकृतिवादी तो जंगली गुलाब से संतुष्ट हो सकता है, किन्तु आदर्शवादी तो एक सुन्दर व सुविकसित गुलाब की परिकल्पना करता है।” यह दार्शनिक विचारधारा यह मानकर चलती है कि बालक के विकास हेतु उपर्युक्त सामाजिक वातावरण एवं शिक्षक का सही मार्गदर्शन आवश्यक है।

9.5.1 आदर्शवाद एवं बालक (Idealism and Child)

आदर्शवाद में बालक को शिक्षण प्रक्रिया का मुख्य बिन्दु नहीं माना जाता। उनके अनुसार शिक्षण प्रक्रिया में भावों, विचारों व आदर्शों का महत्वपूर्ण स्थान है और इनको प्रदान करने के माध्यम के रूप में वह अध्यापक को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं व बालक को गौण। वह छात्रों को एक आध्यात्मिक प्राणी मानते हैं। वह यह स्वीकार करते हैं कि आध्यात्मिक सत्ता भी होती है। वे मन को शरीर से अधिक महत्व देते हैं। हॉर्न ने इस संबंध में कहा है, “विद्यार्थी एक परिमित व्यक्ति है किन्तु उचित शिक्षा मिलने पर वह परम पुरुष के रूप में विकसित होता है। उसकी मूल उत्पत्ति दैविक है, स्वतंत्रता उसका स्वभाव है और अमरत्व की प्राप्ति उसका लक्ष्य है।”

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

1. “अध्यापक सही चरित्र का आध्यात्मिक प्रतीक है” यह परिभाषा है-
(अ) फ्रॉवेल (ब) जेण्टील (स) रॉस (द) फिक्टे
2. “प्रकृतिवादी तो जंगली गुलाब से संतुष्ट हो सकता है किन्तु आदर्शवादी तो एक सुन्दर व सुविकसित गुलाब की परिकल्पना करता है।” यह परिभाषा है-
(अ) फ्रॉवेल (ब) जेण्टील (स) रॉस (द) फिक्टे
3. “अध्यापक में स्व-अध्ययन का गुण होना चाहिए, जिससे वह निरन्तर नवीन ज्ञान की ओर उन्मुख हो सके।” यह विचारधारा है-
(अ) प्रकृतिवादियों की (ब) आदर्शवादियों की (स) अस्तित्ववादियों की (द) प्रयोजनवादियों की
4. “सत्यम् शिवम् सुन्दरम्” को शिक्षा का आधार मानते हैं-
(अ) प्रकृतिवादी (ब) आदर्शवादी (स) अस्तित्ववादी (द) प्रयोजनवादी
5. आत्मानुशासन व आत्म-नियंत्रण पर बल देता है-
(अ) आदर्शवादी (ब) प्रकृतिवादी (स) प्रयोजनवादी (द) अस्तित्ववादी

9.6 सारांश

आदर्शवादी शिक्षा को पवित्र कार्य मानता है। शिक्षार्थी का व्यक्तित्व उसके लिए महान है। अतः वह छात्र के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना चाहता है। यह विकास सही दिशा में होना चाहिए। विकास की दिशा ऐसी हो कि बालक आत्मानुभूति की ओर बढ़ सके और “सत्यम् शिवम् सुन्दरम्” का दर्शन कर सके। विश्व में इससे बढ़कर न तो कोई लक्ष्य हो सकता है, न ही इससे बढ़कर कोई उपलब्धि हो सकती है। आदर्शवादी परम-सत्य में विश्वास करता है। वह परम-सत्य लक्ष्यों का लक्ष्य है, विभिन्न सत्यों का आधार, सुन्दरों में सौन्दर्य का मूल तथा साक्षात् शिवम् है। जीवन की पूर्णता उसी दिशा में चलने में है। अतः हम यह कह सकते हैं कि आदर्शवाद ने शिक्षा की दिशा निश्चित करने में शिक्षाशास्त्रियों का मार्ग-दर्शन किया है। शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करते समय हम कभी-कभी दूर दृष्टि से काम नहीं लेते। आदर्शवाद हमें इस खतरे से सावधान करता है। आदर्शवाद ने आत्मानुभूति जैसा शिक्षा का उद्देश्य देकर, अनेकता में एकता की अंतर्दृष्टि प्रदान करके एवं “सत्यम् शिवम् सुन्दरम्” की प्राप्ति की दूर-दृष्टि देकर शिक्षा का बड़ा उपकार किया है।

आदर्शवाद ने शिक्षक के स्थान को बड़ा महत्व दिया है। इसका परिणाम यह होता है कि शिक्षक अत्यधिक सक्रिय रहता है और छात्र निष्क्रिय हो जाते हैं। छात्र इससे निरूत्साहित होता है और स्वयं सीखने के लिए इच्छा नहीं करता।

उपर्युक्त दोषों में कुछ सत्यता अवश्य है, किन्तु कभी-कभी किसी दार्शनिक विचारधारा को ठीक से न समझने के कारण ही उसकी आलोचना की जाती है। आदर्शवाद का परम-सत्य सबकी समझ में नहीं आ पाता। अतः वे उसे काल्पनिक और अयथार्थ समझते हैं। जहां तक शिक्षण-विधियों का प्रश्न है, आदर्शवाद ने अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जिस विधि को उचित समझा, उसे अपनाया।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि जहाँ तक शिक्षा के उद्देश्यों का संबंध है, आदर्शवाद के सामने कोई दूसरी विचारधारा टिक नहीं सकती। शिक्षा के अन्य अंगों के क्षेत्र में आदर्शवाद ने अधिक ध्यान नहीं दिया।

9.7 शब्दावली

जगत - जगत से हमारा अभिप्राय संसार अर्थात् पूरे विश्व में व्याप्त भूमण्डल।

आध्यात्मिक - आध्यात्मिक से हमारा अभिप्राय धार्मिक क्रिया-कलापों, पूजा-पाठ व ईश्वर में ध्यान, सत्य का मार्ग आदि।

नश्वर - इस संसार में प्रत्येक वस्तु नश्वर है। अर्थात् जिसका जन्म हुआ है या निर्माण हुआ वह एक दिन समाप्त अवश्य ही होती है।

संस्कृति - संस्कृति से हमारा अभिप्राय हमारे रीति-रिवाज, परम्पराएं, आचरण व धार्मिक क्रिया-कलाप, हमारी संस्कृति है।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग-एक

1. (अ) एडम्स
2. (ब) विचारधारा या प्रत्यवाद
3. (द) आदर्शवाद
4. (ब) आदर्शवाद
5. (अ) सुकरात

भाग दो

1. चार चरणों में
2. आदर्शवाद
3. आदर्शवाद
4. आदर्शवादी
5. अनुशासन

भाग तीन

1. जेण्टील
2. रॉस
3. आदर्शवादियों की
4. आदर्शवाद

9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।

9.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस,मेरठ।
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार 2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स: नई दिल्ली।
5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शिक्षा दर्शन , एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स: नई दिल्ली।

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. आदर्शवाद से आप क्या समझते हैं? जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद की विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. आदर्शवाद में शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. आदर्शवादी पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धतियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. आदर्शवादी शिक्षक एवं बालकों के प्रमुख गुणों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
5. आदर्शवादी दृष्टिकोण से अनुशासन के स्वरूप और शिक्षक की कल्पना को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 10: प्रकृतिवाद और शिक्षा: उद्देश्य, प्रक्रिया, पाठ्यक्रम, अनुशासन, अध्यापक की भूमिका (Naturalism and Education: Aims, Progress, Curriculum, Discipline, Role/place of Teacher)

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 उद्देश्य
- भाग-1
- 10.3 प्रकृतिवाद और शिक्षा
 - 10.3.1 प्रकृतिवादी दर्शन का अर्थ
 - 10.3.2 प्रकृतिवाद की परिभाषाएं
 - 10.3.3 प्रकृतिवाद व प्रक्रिया अपनी उन्नति जानिए
- भाग-2
- 10.4 प्रकृतिवाद व शिक्षा के उद्देश्य
 - 10.4.1 प्रकृतिवाद व पाठ्यक्रम
 - 10.4.2 प्रकृतिवाद व अनुशासन अपनी उन्नति जानिए
- भाग-3
- 10.5 प्रकृतिवाद व अध्यापक
 - 10.5.1 शिक्षा में प्रकृतिवाद की देन अपनी उन्नति जानिए
- 10.6 सारांश
- 10.7 शब्दावली
- 10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 10.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ
- 10.11 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

दर्शन की समस्या के रूप में तत्व की खोज तो अनादि काल से हो रही है और इसी आधार पर दार्शनिकों को समूहों में बाँट दिया गया है। जो एक तत्व मानते हैं वे एकतत्ववादी अथवा अद्वैतवादी, जो दो तत्वों में विश्वास करते हैं वे द्वितत्ववादी अथवा द्वैतवादी और बहुतत्व मानने वाले बहुततत्ववादी कहलाते हैं। साधारणतया एकतत्ववादी विचारधारा ही प्रबल है। ब्रह्माण्ड का मूल कारण चेतन है अथवा अचेतन? उसका रूप पौद्गलिक है अथवा मानसिक? इन प्रश्नों का उत्तर यह प्रकट कर देगा कि विचारक विचारवादी है अथवा प्रकृतिवादी। विचारवादी प्रत्ययों को शाश्वत मानता है और उन सब प्रत्ययों का भी मूल किसी एक प्रत्यय को ही मानता है। यह मूल तत्व उसके अनुसार मानसिक है। यह तत्व चेतन है। इस पर आधारित शिक्षा-प्रणाली उस शिक्षा प्रणाली से भिन्न होगी जो पुद्गल को ही प्रथम कारण मानते हैं और साथ-साथ उसे स्वयं प्रेरक, परिवर्तनशील और प्रयोजनहीन मानते हैं। यह मूल तत्व पुद्गल है और प्रयोजनहीन है तो शिक्षा का उद्देश्य प्रयोजनशील नहीं हो सकता। केवल जीवित रहने के योग्य बनाना ही शिक्षा का लक्ष्य रहेगा।

एक प्रकृतिवादी विचारधारा यांत्रिक भौतिकवाद से मिलती है। भौतिकवादी के लिए पुद्गल मूल तत्व है, मनस् है मस्तिष्क उसकी क्रिया। पुद्गल ही मनस् का उद्गम है, न कि मनस् पुद्गल का प्रेरक। चेतना इस मस्तिष्क का उपफल है। भौतिकवादी संसार को एक यंत्र मानते हैं और उनके लिए जीवित प्राणी तो केवल अणु-परमाणु इत्यादि का जोड़ है। प्राकृतिक चुनाव के द्वारा उच्च प्रकार की चेतन-मशीनों की उत्पत्ति संभव है। अतः भौतिकवादियों के लिए मनुष्य एक यंत्र है। प्रयोजनहीन, लक्ष्यहीन और निर्माण की शक्ति से च्युत मनुष्य केवल एक यंत्र है और मनोविज्ञान के लिए व्यवहारवादी शाखा इस दर्शन की देन है। व्यवहारवादी मनोविज्ञान के अनुसार मनोविज्ञान मनुष्य के केवल बाह्य व्यवहार का अध्ययन करता है और जिन्हें हम मानसिक क्रियायें कहते हैं वे केवल बाह्य उत्तेजन की प्रतिक्रिया मात्र हैं। आत्मा और परमात्मा की मान्यता इस विचारधारा के अनुसार नहीं के बराबर है। चार्वाक का मत भी इस विचारधारा से मिलता-जुलता सा ही है।

10.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

1. प्रकृतिवाद के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. प्रकृतिवाद व शिक्षा के संबंध में जान सकेंगे।
3. प्रकृतिवादी दर्शन के अर्थ का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

4. प्रकृतिवाद के दार्शनिक रूपों का अध्ययन कर सकेंगे।
5. प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे।
6. प्रकृतिवाद की प्रमुख विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे।

10.3 प्रकृतिवाद और शिक्षा (Naturalism and Education) -

प्रकृतिवाद यह मानता है कि “वास्तविक संसार भौतिक संसार है” (Material world is the real world) इसी कारण हम प्रकृतिवाद को भौतिकवादी दर्शन भी कहते हैं। प्रकृतिवाद इस सृष्टि की रचना के लिए प्रकृति को ही उत्तरदायी मानता है। इसके अनुसार सभी दार्शनिक समस्याओं का प्रत्युत्तर प्रकृति में निहित होता है। (Nature alone Contains the final answer to all philosophical Problems)

दार्शनिक प्रकृति की व्याख्या सामान्यतया इस रूप में करते हैं कि प्रकृति सामान्य व स्वाभाविक रूप से विकसित होने वाली एक प्रक्रिया है। इस ब्रह्माण्ड की वह सभी वस्तुएं जिनकी रचना या निर्माण में मनुष्य का शून्य योगदान है, वही प्रकृति है। इसके साथ ही कुछ दार्शनिक विचारधारा मानती है कि प्रकृति वह है जो सर्वत्र तथा सर्वदा विद्यमान है और इसकी गतिविधियां निश्चित व प्राकृतिक नियमों द्वारा संचालित व नियंत्रित होती है। साथ ही इनका यह भी विचार है कि प्रकृति में अनेक पदार्थ होते हैं जिनके परस्पर सहयोग से विभिन्न प्रकार की रचनाएं जन्म लेती हैं। यह पदार्थ गतिशील व क्रियाशील होते हैं। इसी कारण प्रकृतिवाद को भौतिकवाद भी कहा जाता है। दर्शनशास्त्र में प्रकृति को ही सर्वोपरि सत्ता के रूप में स्वीकार किया जाता है परन्तु प्राकृतिक दार्शनिक विचारधारा बहुत ही व्यापक रूप में प्रकृति को स्वीकार करती है। एक ओर तो वह प्रकृति को भौतिक जगत के रूप में देखती है, जिसका हम प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं तो दूसरी ओर प्रकृति की व्याख्या जीव-जगत के रूप में भी की जाती है। साथ ही तीसरे अर्थ में देश-काल की सभी बातें भी प्रकृति में निहित होती हैं।

10.3.1 प्रकृतिवादी दर्शन का अर्थ (meaning of Naturalistic Philosophy)-

प्रो. सोर्ले के अनुसार प्रकृतिवाद को नकारात्मक रूप से भली-भांति समझाया जा सकता है। यह वह विचारधारा है जिसके अनुसार स्वाभाविक या निर्माण की शक्ति मनुष्य के शरीर को नहीं दी जा सकती। प्रकृतिवादी विचारक बुद्धि का स्थान मानते हैं, पर कहते हैं कि उसका अर्थ केवल बाह्य परिस्थितियों तथा विचारों को काबू में लाना है, जो उसकी शक्ति से बाहर जन्म लेते हैं। एक प्रकार से प्रकृतिवादी भी भौतिकवादियों की भांति आत्मा-परमात्मा, स्पष्ट प्रयोजन, इत्यादि की सत्ता में विश्वास नहीं करते। प्रकृतिवाद सभ्यता की जटिलता की प्रतिक्रिया के रूप में हमारे सम्मुख आया है।

इसके मुख्य नारे “प्रकृति की ओर लौटो”, “समाज के बंधनों को तोड़ो” इत्यादि हैं। सभ्यता का लचीलापन समाप्त होने पर यह वाद जन्म लेता है। पर प्रकृति का अर्थ क्या है ? सर जान एडम्स ने कहा है कि यह शब्द बड़ा ही जटिल है। इसकी अस्पष्टता के कारण बहुत सी भूलें और अन्धकार का फैलाव होता है। इसका अर्थ तीन प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम अर्थ में प्रकृति का तात्पर्य है निहित गुण और विशेषकर वे गुण जो जीवन के विकास और क्रमशः उन्नति की ओर ले जाने के लिए सहायक हों। यदि हम बालक को पढ़ाना चाहते हैं, तो उसके विकास के नियम हमें ज्ञात होने चाहिए। प्रकृति का इस प्रकार अर्थ करने का गौरव रूसो को प्राप्त है। डॉ. हॉल जिसे बाल-केन्द्रित शिक्षा कहते हैं, उसे रूसो ने प्रेरणा दी थी, यद्यपि उससे पूर्व क्विन्टिलियन भी इसे जानता था। इस संदर्भ में हम कह सकते हैं कि प्रथम अर्थ में प्रकृति का तात्पर्य बहुत कुछ स्वभाव से लगाया जाता है।

प्रकृति का द्वितीय अर्थ है बनावट के ठीक विपरीत। जिस कार्य में मनुष्य ने सहयोग न दिया वही प्राकृतिक है। यह सत्य है कि मनुष्य प्रकृति में अपनी क्रियात्मकता से परिवर्तन लाया करता है। पर इसका अर्थ बनावट तो नहीं है। क्योंकि उक्त परिवर्तन अप्राकृतिक कैसे हो सकता है, जबकि मनुष्य स्वयं प्रकृति के कारण जीवित है और वह प्राकृतिक प्राणी है। बस इसका अर्थ यह है कि हम आदि काल की बात सोचने लगें। उस समय मनुष्य पशु था अथवा एक साधु अवस्था में, इसका निर्णय कठिन है। फिर एक चोर चोरी करने में क्या अपने स्वभाव का सहारा नहीं लेता ? फिर उसे सजा क्यों मिलती है ? क्या हमें बालक को मूल्य प्रवृत्ति या संवेगों की शिक्षा देनी है ? हम ठीक नहीं बता सकते। हमारा हृदय केवल उपयुक्त और हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों को ही जीवित रहने में सहायता पहुँचाना नहीं है, वरन् आधे से अधिक मनुष्यों को जीवित रखने के योग्य बनाना है और हम यहां प्रकृति को स्वाभाविक तथा बनावटी दोनों ही रूपों में लेते हैं।

प्रकृति का तृतीय अर्थ है समस्त विश्व तथा उसकी क्रिया और इस अर्थ में मनुष्य जो कुछ भी करता है वह प्राकृतिक है। शिक्षा में इसका अर्थ होगा - विश्व की क्रिया का अध्ययन और उसे जीवन में उतार देना। इसका अर्थ हुआ कि एक सुस्त और कामचोर को भी इस प्रकार कहने का अवसर मिल सकता है कि वह बहुत से कीटाणुओं की भाँति स्वाभाविक रूप से कार्य नहीं कर सकता। इस प्रकार हिंसक प्रवृत्ति का व्यक्ति अपनी हिंसात्मक कार्यवाहियों को भी प्राकृतिक कहने की धृष्टता कर सकेगा। कुछ विद्वानों का मत है कि मनुष्य को प्रकृति की विकासवादी श्रृंखला में बाधक नहीं बनना चाहिए वरन् उसे उस क्रिया से अलग ही रहना ठीक है। विकास किसी व्यक्तित्व के बिना नहीं हो सकता, व्यक्तित्व बिना प्रयोजन काम नहीं कर सकता। इसलिए हमें कुछ विद्वानों के अनुसार इस विकास के नियम का अध्ययन करना चाहिए तथा प्रकृति का अनुयायी हो जाना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य इस विकास को समझाना तथा इसका अनुयायी बनने में सहायता करना है। शिक्षा संभव हो सके, इसलिए हमें बहुत सी बनावटी बातों पर भी बल देना होगा। इस प्रकार हमने देखा कि प्रकृति के

अर्थ का निर्णय कठिन है। फिर भी हम इस बात को जानते हैं कि हरबर्ट स्पेसर तथा रूसो को प्रकृतिवादी माना जाता है।

10.3.2 प्रकृतिवाद की परिभाषाएं (Definition of Naturalism) -

प्रकृतिवाद की परिभाषा को हम निम्न प्रकार समझ सकते हैं:-

जेम्स बार्ड- “प्रकृतिवाद वह सिद्धान्त है, जो प्रकृति को ईश्वर से पृथक करता है, आत्मा को पदार्थ के अधीन करता है और अपरिवर्तनीय नियमों को सर्वोच्चता प्रदान करता है।”

थॉमस और लेंग के अनुसार- “प्रकृतिवाद आदर्शवाद के विपरीत मन को पदार्थ के अधीन मानता है, और यह विश्वास करता है कि अंतिम वास्तविकता-भौतिक है, आध्यात्मिक नहीं।”

जायस के अनुसार- “प्रकृतिवाद एक ऐसा दार्शनिक तंत्र है, जिसमें प्रभुत्व विशेषता के रूप में आध्यात्मिक, अन्त ज्ञानात्मक एवं पदार्थ जगत से परे की अनुभूतियों को बहिष्कृत किया जाता है।”

पैरी के अनुसार - “प्रकृतिवाद, विज्ञान नहीं है, वरन् विज्ञान के बारे में दावा है। अधिक स्पष्ट रूप में यह इस बात का दावा है कि वैज्ञानिक ज्ञान अंतिम है, जिसमें विज्ञान से बाहर या दार्शनिक ज्ञान का कोई स्थान नहीं है।”

ब्राइस के अनुसार- “प्रकृतिवाद एक प्रणाली है और जो कुछ आध्यात्मिक है, उसका बहिष्कार ही उसकी प्रमुख विशेषता है।”

रस्क के अनुसार- “प्रकृतिवाद एक दार्शनिक स्थिति है जिसे वे लोग अपनाते हैं, जो दर्शन की व्याख्या वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करते हैं।”

10.3.3 प्रकृतिवाद व प्रक्रिया (Naturalism and process)

प्रकृति ही वास्तविकता है (Nature is Ultimate Reality), प्रकृतिवाद प्रकृति को अंतिम सत्ता मानता है और मानव प्रकृति पर अधिक बल देता है। यह इस बात पर विश्वास करता है कि वास्तविकता व प्रकृति (Reality and Nature) में कोई अन्तर नहीं है। अर्थात् जो वास्तविक है, वह प्रकृति है या जो प्रकृति है, वह वास्तविक है। हॉकिंग (Hocking) के शब्दों में- “प्रकृतिवाद इस बात को अस्वीकार करता है कि प्रकृति से परे, प्रकृति के पीछे या प्रकृति के अलावा कोई चीज अपना अस्तित्व रखती है, चाहे वह सांसारिक परिधि में हो या आध्यात्मिक परिधि में।” (Naturalism denies existence of anything nature, behind nature such as the supernatural of other worldly) प्रकृतिवादी विचारधारा मन व शरीर में कोई अंतर नहीं करती। वह यह मानती है कि मानव पदार्थ है, चाहे उसका मन हो या शरीर, दोनों ही इस पदार्थ का परिणाम हैं।

प्रकृतिवाद यह भी मानता है कि वैज्ञानिक ज्ञान ही उचित ज्ञान होता है और हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि हम इस वैज्ञानिक ज्ञान को जीवन से जोड़ सकें। वैज्ञानिक विधि द्वारा ज्ञान प्राप्ति पर बल (Emphasis on acquiring knowledge through scientific method) - प्रकृतिवाद के अन्तर्गत आगमन (Inductive) विधि द्वारा ज्ञानार्जन की चर्चा की गई है, साथ ही वह इस बात की भी चर्चा करते हैं कि ज्ञान-प्राप्ति का सर्वोचित तरीका निरीक्षण विधि है। ज्ञान-प्राप्ति हेतु इन्द्रियों की आवश्यकता (Need of sense for Acquiring Knowledge) है मानव इस जगत पर जो भी ज्ञान प्राप्त करता है, उसका माध्यम इन्द्रियां होती हैं। बिना इन्द्रिय सहयोग के मानव ज्ञानार्जन नहीं कर सकता। इस संसार में सर्वोच्च शक्ति प्रकृति के हाथों में ही निहित रहती है और प्रकृति के नियम अपरिवर्तनशील हैं। प्रकृतिवाद किसी आध्यात्मिक शक्ति में या आत्मा में विश्वास नहीं रखते। वह मानते हैं कि मानव की रचना प्रकृति के द्वारा हुई है और मनुष्य के शरीर का नाश होते ही उसका चेतन तत्व भी समाप्त हो जाता है।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

1. पुद्गल से क्या अभिप्राय है ?
2. प्रकृति से आप क्या समझते हैं ?
3. “प्रकृतिवाद आदर्शवाद के विरुद्ध मन को पदार्थ के अधीन मानता है और यह विश्वास करता है कि अंतिम वास्तविकता भौतिक है, आध्यात्मिक नहीं।” यह परिभाषा किस विद्वान की है ?
4. जेम्स वार्ड (ब) थॉमस और लैंग (स) जायस (द) पैरी
5. यांत्रिक प्रकृतिवाद से आप क्या समझते हैं ?

10.4 प्रकृतिवाद व शिक्षा के उद्देश्य (Naturalism and aims of Education)

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रूसो (Rousseau) ने कहा कि शिक्षा का उद्देश्य मानव को प्रकृति के अनुकूल जीवन व्यतीत करने हेतु योग्य बनाना है। शिक्षा के द्वारा हम मानव में कुछ नया उत्पन्न नहीं करते वरन् मानव की मौलिकता को बनाये रखने का प्रयास करते हैं और मानव संसर्ग के फलस्वरूप उसमें जो कृत्रिमता आ जाती है, उसका विनाश करने का प्रयास करते हैं। रूसो ने कहा कि “रोजमर्रा के व्यवहार को (समाज-सम्मत व्यवहार को) बदल डालो और सदा सर्वदा तुम्हारा कृत्य सही होगा।” रूसो ने हर स्थान पर सामाजिक संस्थाओं की अवहेलना की है। वह कहता है कि “मानवीय संस्थाएं मूर्खता तथा विरोधाभास के समूह हैं।” परन्तु वह प्रकृति को ईश्वरीय सृष्टि मानता है और मनुष्य को ईश्वरीय कृति।

जैवकीय प्रकृतिवाद के अनुसार शिक्षा के तीन प्रमुख उद्देश्य माने जाते हैं:-

1. व्यक्ति को इस योग्य बनाना जिससे कि वह इस जगत में अपने आपको जीवित रख सके, जीवन के संघर्षों का मुकाबला कर सके तथा सफलता प्राप्त करने हेतु प्रयास कर सके।
2. शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्ति को उसके वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने की योग्यता प्रदान करना।
3. बर्नार्ड शॉ के अनुसार, “शिक्षा का उद्देश्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जातीय संस्कृति का संरक्षण, हस्तान्तरण व वृद्धि होना चाहिए। यह उद्देश्य आदर्शवादी उद्देश्य के निकट है।”

संक्षेप में, प्रकृतिवाद के अनुसार हम शिक्षा के निम्न उद्देश्य बता सकते हैं -

1. शिक्षा द्वारा बालक को प्राकृत जीवन व्यतीत करने हेतु तैयार करना।
2. बालक की प्राकृतिक शक्तियों का विकास करना।
3. बालक को इस प्रकार का ज्ञान व दक्षता प्रदान करना जिससे कि वह अपने पर्यावरण के साथ समायोजित हो सके।
4. मानव में उचित तथा उपयोगी सहज क्रियाओं को उत्पन्न करना अर्थात् मनुष्य में शिक्षा द्वारा ऐसी आदतों एवं शक्तियों का विकास करना जो मशीन के पुर्जे की भांति अवसरानुकूल प्रयुक्त की जा सकें।
5. बालक को जीवन संघर्षों के योग्य बनाना।
6. जातीय निष्पत्तियों का संरक्षण करना व विकास करना।
7. बालक का आत्मसंरक्षण व आत्मसंतोष की प्राप्ति।
8. मूल प्रवृत्तियों का शोधन एवं मार्गान्तरीकरण।
9. बालक के व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास।

10.4.1 प्रकृतिवाद व पाठ्यक्रम Naturalism of Curriculum-

प्रकृतिवाद के शिक्षा के उद्देश्य के संबंध में स्पेन्सर ने पांच उद्देश्यों की चर्चा की है। वह प्रकृतिवाद के पाठ्यक्रम को भी इन उद्देश्यों की पूर्ति का एक साधन मानते हुए कहते हैं:-वास्तव में यदि देखा जाए तो प्रकृतिवादी पाठ्यक्रम का संगठन अपने ही ढंग से करते हैं और मानते हैं कि बालक की प्रकृति, नैसर्गिक रुचि, योग्यता, अनुभव व स्वाभाविक क्रियाओं के आधार पर ही पाठ्यक्रम का संगठन होना चाहिए और पाठ्यक्रम में वह विषय रखे जाने चाहिए जो बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं के अनुरूप हों। पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्तों के संबंध में प्रकृतिवादी विचारधारा इस प्रकार है:-

1. पाठ्यक्रम निर्माण का आधार बालक हो।
2. पाठ्यक्रम में विज्ञान विषयों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाए।
3. पाठ्यक्रम व्यवहारिक व जीवनोपयोगी हो।
4. पाठ्यक्रम अनुभव-केन्द्रित हो।

10.4.2 प्रकृतिवाद व अनुशासन Naturalism and Discipline

प्रकृतिवादी दार्शनिक बाध्य अनुशासन पर विश्वास नहीं करते। वे स्वतंत्रता के पक्षधर हैं। रूसो के अनुसार “बच्चों को कभी दंडित नहीं किया जाना चाहिए, स्वतंत्रता, न कि शक्ति, सबसे अच्छी चीज है।” प्रकृतिवादी प्राकृतिक परिणामों के द्वारा प्रेरित अनुशासन पर बल देते हैं। उदाहरणार्थ – जब बालक गिरता है या अपने सिर को मेज पर पटकता है, तो उसे दर्द मालूम पड़ता है। इस की याद उसे और अधिक सावधान बना देती है। दर्द के इस प्रकार के बार-बार होने वाले अनुभवों के कारण वह अंत में अपने कार्यों में अनुशासित हो जाता है। परंतु यह सिद्धांत प्रत्येक आयु वर्ग के बालकों पर लागू नहीं हो सकता।

10.5 प्रकृतिवाद व अध्यापक Naturalism and Teacher

शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक का स्थान मुख्य है। लेकिन प्रकृतिवादी दर्शन शिक्षक को शिक्षा व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान नहीं देता है, उनके अनुसार प्रकृति ही बालक का वास्तविक शिक्षक है। बालक स्वतः प्रकृति के इशारे पर जीवन की शिक्षा ग्रहण करता है। उसे किसी शिक्षक की आवश्यकता नहीं है। केवल उसे ऐसे वातावरण में रखा जाय जो समाज के दोषों से रहित और प्रकृति का शांत वातावरण हो। ऐसे वातावरण में शिक्षक का कोई स्थान नहीं है। क्योंकि शिक्षक भी समाज का सदस्य होता है। अतः समाज की कमियों की छाप भी शिक्षक पर पड़ना आवश्यक है। रॉस का विचार है “यदि शिक्षक का कोई स्थान है तो वह पर्दे के पीछे है वह बालक के विकास का निरीक्षण करने वाला है- न कि उसको सूचनाओं, विचारों, आदर्शों और इच्छा-शक्ति को देने वाला या उसके चरित्र का निर्माण करने वाला। बालक इन बातों को स्वयं ही कर लेगा। वह किसी भी शिक्षक की अपेक्षा अच्छी तरह जानता है कि उसे क्या, कब और कैसे सीखना है? उसकी शिक्षा – उसकी रुचियों और प्रेरणाओं का स्वतंत्र विकास है, न कि इसके लिए शिक्षक द्वारा किया गया कृत्रिम प्रयास।

10.5.1 शिक्षा में प्रकृतिवाद की देन (Contribution of naturalism in education)

1. बालक का प्रमुख स्थान प्रकृतिवाद की विशेषता है। आज हमें इस बात पर आश्चर्य नहीं होता किन्तु 19वीं शताब्दी के अन्त तक लोग बालक को प्रौढ़ का छोटा रूप मानते थे, उसे अलग व्यक्तित्व मानने को तैयार न थे। ‘बाल केन्द्रित शिक्षा’ प्रकृतिवाद की देन है।
2. बाल-मनोविज्ञान के अध्ययन की प्रेरणा भी इसी विचारधारा ने दी। बालक को पढ़ाने के लिए उसके मनोविज्ञान को जानने की आवश्यकता की पूर्ति हेतु मनोविज्ञान के क्षेत्र में खोज प्रारम्भ हुई। मनोविज्ञान ने बताया कि बालक विकास काल में विभिन्न स्थितियों से होकर गुजरता है। यही नहीं मनोविज्ञान की एक विशेष शाखा-मस्तिष्क विश्लेषण को तो विशेष प्रोत्साहन मिला। बालक को

व्यर्थ ही दबाना नहीं चाहिए। लिंग-भेद की ओर इस मनोविज्ञान की विशेष देन है। इसके प्रति इसने एक स्वस्थ विचारधारा को जन्म दिया।

3. शिक्षा की विधि में प्रकृतिवाद ने शब्दों की अपेक्षा अनुभवों पर बल दिया। केवल शब्द शिक्षा के लिए आवश्यक गुण नहीं है, अनुभव भी आवश्यक है। इसलिए अब भूगोल तथा इतिहास के पाठ केवल कक्षा की चाहरदीवारी के अन्दर न पढ़ाकर परिभ्रमण एवं शिक्षा-यात्राओं के माध्यम से पढ़ाये जाते हैं।

4. शिक्षा में खेल की प्रमुखता इस विचारधारा की ही देन है। इससे पूर्व खेल व्यर्थ की चीज समझा जाता था। प्रकृतिवाद ने खेल को स्वाभाविक तथा आवश्यक सिद्ध किया।

5. 'प्रकृति की ओर लौटो' इस विचारधारा का नारा है। इसका कथन है 'सभ्यता की जटिलता से दूर प्रकृति की शान्तिमयी गोद की ओर चलो।' इस प्रवृत्ति ने प्रकृति-प्रेम में वृद्धि की।

6. केवल पुस्तकीय ज्ञान को हटाकर अनुभव तथा ज्ञान को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया।

अन्त में यह कह देना आवश्यक होगा कि इंग्लैण्ड में नील के स्कूल में तथा डोरा रसेल के स्कूल में इस प्रक्रियावादी विचारधारा पर आधारित, स्वतंत्रता तथा सरलता के वातावरण में, मूल प्रवृत्ति के आधार पर, स्वयंचालित शिक्षा दी जाती थी। इन स्कूलों में भेद न होने के कारण तथा स्वस्थ विचारधाराओं के कारण चरित्र संबंधी शिकायत कभी नहीं चलती थी। यहां शिक्षा भी खेल के ऊपर आधारित थी। पुस्तकीय ज्ञान का महत्व कम है। अतः डोरा रसेल के विद्यालय में इस पर अधिक बल नहीं था। पर, यह कहना भ्रामक न होगा कि केवल प्रकृतिवाद ही बालक की रुचि पर बल देने वाली विचारधारा नहीं है। आदर्शवाद भी बालक के महत्व को कम न करेगा। कहना न होगा कि यदि प्रकृति को आदर्शवाद का संबल मिल जाये तो पाशविक एवं आध्यात्मिक दोनों अवस्थाओं से मनुष्य का उचित संबंध स्थापित हो जाएगा।

अपनी उन्नति जानिए ((Check your Progress))

1. "मन व शरीर में कोई अन्तर नहीं है" ;(No distinction between mind and body) विचारधारा है-
(अ) आदर्शवाद (ब) प्रयोजनवाद (स) अस्तित्ववाद (द) प्रकृतिवाद
2. "वैज्ञानिक ज्ञान ही उचित ज्ञान होता है। हम इस वैज्ञानिक ज्ञान को जीवन से जोड़ सकें।" यह विचारधारा है-
(अ) आदर्शवाद (ब) प्रकृतिवाद (स) प्रयोजनवाद (द) अस्तित्ववाद
3. "इस संसार में सर्वोच्च शक्ति प्रकृति के हाथों में निहित है और प्रकृति के नियम अपरिवर्तनशील है"। यह विचारधारा है-

- (अ) आदर्शवाद (ब) प्रकृतिवाद (स) अस्तित्ववाद (द) प्रयोजनवाद
4. किसने शिक्षा की विधि में शब्दों की अपेक्षा अनुभवों पर बल दिया है ?
- (अ) प्रकृतिवाद (ब) प्रयोजनवाद (स) आदर्शवाद (द) अस्तित्ववाद
5. “सभ्यता की जटिलता से दूर प्रकृति की शान्तिमयी गोद की ओर चलो”। यह विचारधारा है-
- (अ) अस्तित्ववाद (ब) प्रकृतिवाद (स) प्रयोजनवाद (द) आदर्शवाद

10.6 सारांश

शिक्षा के क्षेत्र में प्रकृतिवाद का प्रभाव दो रूपों में दिखलाई पड़ता है- एक तो दर्शन के रूप में उसने शिक्षा के लक्ष्यों और उद्देश्यों को निश्चित किया है। दूसरे उसने मानव प्रकृति की व्याख्या करके शिक्षण विधियों और शिक्षा के साधनों की व्याख्या की है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रकृतिवाद न तो भौतिक जगत का प्रकृतिवाद है, न यांत्रिक प्रकृतिवाद और न जैवकीय प्रकृतिवाद। इन तीनों से भिन्न वह एक नमनीय व्याख्या है, जो कि शिक्षा को बालक के संपूर्ण अनुभव पर आधारित करना चाहती है और किताबी ज्ञान के विरुद्ध अर्थात् प्रकृतिवाद के बनाए हुए शिक्षा के चित्र में बालक सबसे आगे होता है। शिक्षक, विद्यालय, पुस्तकें, पाठ्यक्रम आदि सब पृष्ठभूमि में होते हैं। सर जॉन एडम्स ने इस प्रवृत्ति को बाल केन्द्रित अभिवृत्ति (Paiocentric attitude) कहा है। प्रकृतिवादियों के अनुसार बालक पर पूर्ण आयोजित शिक्षा लादी नहीं जानी चाहिए। चाहे वह कितनी भी वैज्ञानिक क्यों न हो। शिक्षा में बालक को स्वतंत्र चुनाव का अवसर देना चाहिए। वह क्या पढ़ेगा, किस तरह व्यवहार करेगा, किस तरह खेलेगा-कूदेगा, कैसे बैठेगा आदि बातें उसकी इच्छा पर छोड़ देनी चाहिए। साथ ही शिक्षा का स्थान शासक का नहीं बल्कि मित्र और साथी का है। शिक्षक का कार्य उसे सामग्री जुटाना, अवसर उत्पन्न करना, आदर्श परिवेश का निर्माण करना है। जिससे बालकों का सर्वांगीण विकास हो सके। प्रकृतिवादी शिक्षा-प्रणालियों के विषय में खेल प्रणाली पर जोर देता है तथा पाठ्यक्रम बहुमुखी और व्यापक हो, इसमें समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक प्रवृत्ति के अतिरिक्त शिक्षा के लक्ष्यों और पाठ्यक्रम की ओर समाहारक प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। लगभग बहुमुखी पाठ्यक्रमों और पाठ्यक्रमोत्तर कार्यक्रमों का महत्व स्वीकार किया गया है।

10.7 शब्दावली

1. भौतिक जगत का प्रकृतिवाद- यह सिद्धान्त मानव-क्रियाओं, व्यक्तिगत अनुभवों, संवेगों, अनुभूतियों आदि की भौतिक विज्ञान से व्याख्या करना चाहता है। यह भौतिक विज्ञान के द्वारा समस्त जगत की व्याख्या करना चाहता है।

2. स्वचालित आत्म-क्रिया (Spontaneous Self-activity) - स्पेन्सर का विचार है कि बालक किन्हीं अन्य के प्रयासों द्वारा नहीं सीखता, अपितु वह स्वयं अपनी आत्म-क्रिया से सीखता है और स्वयं के प्रयासों द्वारा अर्जित ज्ञान ही वास्तविक व चिरस्थायी होता है।

3. प्रकृतिवाद की ओर लौटो- प्रकृतिवादी चाहते हैं कि सभ्यता की जटिलता से दूर प्रकृति की शान्तिमयी गोद की ओर चलो ताकि बालक का नैसर्गिक विकास हो सके।

4. यांत्रिक प्रकृतिवाद- इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त जगत एक यंत्र के समान कार्य कर रहा है। व्यक्ति एक सक्रिययंत्र से अधिक कुछ नहीं है। उसमें परिवेश के प्रभाव के कारण कुछ सहज क्रिया होती है। यंत्रवाद के प्रभाव से मनोविज्ञान में व्यवहारवादी सम्प्रदाय का जन्म हुआ।

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग-1

1. भौतिकवाद के लिए पुदगल मूल तत्व है, मनस् है मस्तिष्क और उसकी क्रिया। पुदगल ही मनस का उद्गम है, न कि मनस पुदगल का प्रेरक। चेतना इस मस्तिष्क का उपफल है। भौतिकवादी संसार को एक यंत्र मानते हैं और उनके लिए जीवित प्राणी तो केवल अणु-परमाणु इत्यादि का जोड़ है।
2. प्रकृति से हमारा अभिप्राय समस्त विश्व तथा उसकी क्रिया और इस अर्थ में मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह प्राकृतिक है। शिक्षा में इस का अर्थ होगा विश्व की क्रिया का अध्ययन और उसे जीवन में उतार देना।
3. (ब) थॉमस और लैंग
4. यांत्रिक प्रकृतिवाद (Mechanical Naturalism) समस्त जगत एक यंत्र के समान कार्य कर रहा है और वह यंत्र जड़त्व का बना है, जिसमें स्वयं उसको चलाने की शक्ति है। इस प्रकार प्रकृतिवाद का यह रूप जड़वाद है। व्यक्ति एक सक्रिय यंत्र से अधिक कुछ नहीं है। उसमें परिवेश के प्रभाव के कारण कुछ सहज क्रियाएं होती हैं।

भाग-2

1. (i) प्रकृतिवाद के अनुसार समाज व्यक्ति के लाभ के लिए है। अतः समाज का स्थान व्यक्ति के बाद आता है।
(ii) प्रकृति के नियम अपरिवर्तनीय हैं। अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियम सब घटनाओं को भली प्रकार स्पष्ट करते हैं।
2. (A) रूसो
3. (i) शिक्षा द्वारा बालक को प्राकृत जीवन व्यतीत करने हेतु तैयार करना।

(ii) बालकों को इस प्रकार का ज्ञान व दक्षता प्रदान करना जिससे कि वह अपने पर्यावरण के साथ समायोजित हो सके।

4. प्रकृतिवाद की दो शिक्षण विधियाँ हैं:-

(i) प्रकृति के अनुरूप शिक्षा (Education According to Nature)

(ii) शिक्षा आनन्द प्रदायनी (Education is for Enjoyment)

5. उत्तर-5 प्रकृतिवाद में नियमानुसार शामिल है, जैसे-शरीर विज्ञान, रोजगार हेतु गणित, सामाजिक अध्ययन के सभी विषय, साहित्य, संगीत, ललितकला, मनोविज्ञान आदि।

भाग-3

1. (D)
2. (D)
3. (A)
4. (B)

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठा।
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड
5. डिस्ट्रीब्यूटर्स।
6. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई
7. दिल्ली।
8. शर्मा, रामनाथ व शर्मा राजेन्द्रकुमार (2006) एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

10.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।

3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस,मेरठा
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई

दिल्ली।

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रकृतिवाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों और पाठ्यक्रम के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
2. प्रकृतिवादी शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
3. प्रकृतिवाद का क्या अर्थ है? शिक्षा के सिद्धान्त को इसने किस प्रकार प्रभावित किया है ?
4. प्रकृतिवादी दर्शन की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं ? व्याख्या कीजिए।
5. प्रकृतिवादी शैक्षिक उद्देश्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
6. प्रकृतिवाद के विविध रूप कौन-कौन से हैं? व्याख्या कीजिए।

**इकाई-11: प्रयोजनवाद और शिक्षा- उद्देश्य, प्रक्रिया,
पाठ्यक्रम, अनुशासन, अध्यापक की भूमिका
(Pragmatism and Education : Aims, Process,
Curriculum, Discipline, Role of teacher)**

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

भाग-1

11.3 प्रयोजनवाद और शिक्षा

11.3.1 प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, आचार मीमांसा

11.3.2 प्रयोजनवाद का अर्थ

11.3.3 प्रयोजनवाद की परिभाषाएं

11.3. प्रयोजनवाद प्रक्रिया

अपनी उन्नति जानिए

भाग-2

11.4 प्रयोजनवाद की शिक्षा के उद्देश्य

11.4.1 प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम

11.4.2 प्रयोजनवादी तथा अनुशासन

अपनी उन्नति जानिए

भाग-3

11.5 प्रयोजनवाद व शिक्षक

11.5.1 प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव

अपनी उन्नति जानिए

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.9 सन्दर्भ

11.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रयोगवाद एक आधुनिक अमेरिकी जीवन दर्शन है। यह अमेरिकी राष्ट्र के जीवन तथा विचार का प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुतः अमेरिका नव निवासियों का देश है। विशेषकर पश्चिमी यूरोप के प्रगतिशील निवासी ही वहाँ जाकर 16वीं-17वीं शताब्दी में बस गए। वहाँ उन्हें सर्वथा नई स्थितियाँ, समस्याओं एवं वातावरण का सामना करने के लिए कोई पूर्व निर्मित समाधान नहीं था। इसलिए उन्होंने अपने जीवन का मार्ग खुद प्रशस्त किया। व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान भी उन्हें नये तरीके से स्वयं ढूँढना पड़ा। यहाँ तक कि पूर्व मान्यताएं स्वतः ही बिखरने लगीं तथा नवीन उपयोगी विचारधारा का जन्म हुआ। यही विचारधारा प्रयोजनवाद के नाम से अभिहित हुई। उसके अनुसार वही दर्शन सही है जिसका नाता मानव जीवन तथा मानव क्रियाकलापों से ही प्रयोजनवाद निश्चित एवं शाश्वत् मूल्यों के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता है। वह तो जीवन और समाज के लिए उपयोगी एवं व्यवहारिक सिद्धान्तों को स्वीकार करता है। जिनके सहारे मानव अपनी जीवनगत समस्याओं का समाधान ढूँढने में सफल होता है। यह आसमान को कम, धरती को ज्यादा महत्व देता है।

प्रयोजनवाद का उत्पत्ति स्थल अमेरिका है, जहाँ एक दर्शन के रूप में इसका विकास हुआ। चार्ल्स पियर्स तथा विलियम जेम्स इस विचारधारा के प्रतिपादक माने जाते हैं। जेम्स ने मानव अनुभव के महत्व को स्पष्ट किया और मानव को समस्त वस्तुओं और क्रियाओं की सत्यता की कसौटी बताया। जेम्स के बाद अमेरिका के ही एक विचारक जॉन ड्यूवी ने इस विचारधारा को आगे बढ़ाया। ड्यूवी ने व्यक्ति की इच्छा को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्वीकार किया। उनके अनुसार मानव प्रगति का आधार सामाजिक बुद्धि ही होती है। ड्यूवी के बाद अमेरिका में उनके शिष्य क्लिपैट्रिक ने इस विचारधारा को आगे बढ़ाया और इंग्लैण्ड में शिलर महोदय ने। इन सबमें ड्यूवी का योगदान सबसे अधिक है। प्रयोजनवादी किसी निश्चित सत्य में विश्वास नहीं करते। उनके विचार से दर्शन भी सदा निर्माण की स्थिति में रहता है। चूंकि मानव जीवन परिवर्तनशील है, अतः इस प्रकार की शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्य चर्चा आदि का निर्माण न करके उनके निर्माण के सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं। इस विचारधारा के प्रमुख दार्शनिक एवं शिक्षाविद् जॉन ड्यूवी माने जाते हैं।

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

1. प्रयोजनवाद व शिक्षा के संबंध में जान सकेंगे।
2. प्रयोजनवाद दर्शन के अर्थ और परिभाषाएं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. प्रयोजनवाद के दार्शनिक रूपों का अध्ययन कर सकेंगे।
4. प्रयोजनवाद के प्रमुख सिद्धान्तों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
5. प्रयोजनवाद की प्रमुख विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे।
6. अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
7. अस्तित्ववादी शिक्षक, विद्यार्थी व शिक्षण विधि के बारे में जान सकेंगे।

भाग-1

11.3 प्रयोजनवाद (Pragmatism)

प्रयोजनवाद एक व्यवहारिक व अद्वितीय दर्शन है, जिसमें प्रकृतिवाद व आदर्शवाद की प्रमुख विशेषताओं को समन्वित करने का प्रयास किया है। जॉन ड्यूवी ने अर्थ क्रियावाद की उपयोगिता को शिक्षा के क्षेत्र में भी बहुत अधिक माना है। कुछ शिक्षा दार्शनिक तो यहां तक कहते हैं कि आधुनिक शिक्षा का युग प्रयोजनवाद का युग है। प्रसिद्ध दार्शनिक ड्यूवी ने शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है, “शिक्षा अनुभव का पुनर्निर्माण अथवा पुनर्रचना करने वाली प्रक्रिया है जिससे कि विवृद्ध वैयक्तिक कुशलता के माध्यम द्वारा उसे अधिक सामाजिक मूल्य प्राप्त होता है।” वह यह मानता है कि मनुष्य की शिक्षा की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है। चूंकि अनुभव द्वारा वह कुछ न कुछ ग्रहण करता रहता है। नित्य प्रति मानवीय परिस्थितियां बदलती हैं और मनुष्य उनके अनुकूल अपनी क्रियाओं को भी बदल लेता है। नये परिवेश में व्यक्ति जब अपनी समस्याओं का हल ढूंढता है तो उसके अनुभव विकसित होने लगते हैं। यह समृद्ध अनुभव ही शिक्षा है। जॉन ड्यूवी शिक्षा को एक व्यापक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं, जो विद्यालय के साथ ही समाज में भी चलती रहती है। इसी कारण अर्थ क्रियावादी यह मानता है कि शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली एक प्रक्रिया है अथवा शिक्षा जीवन है और जीवन शिक्षा।

11.3.1 प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, आचार मीमांसा

Metaphysics, Epistemology and Ethics of Pragmatism

प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा Metaphysics of Pragmatism

प्रयोजनवादी इस ब्रह्माण्ड की रचना के संबंध में विचार करने के स्थान पर मनुष्य जीवन के वास्तविक पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। वे इस ब्रह्माण्ड के बारे में केवल इतना ही कहते हैं कि यह अनेक वस्तुओं और अनेक क्रियाओं का परिणाम है, वस्तु और क्रियाओं की व्याख्या के झमेले में ये नहीं पड़ते। इस इन्द्रियग्राह संसार के अतिरिक्त ये किसी अन्य संसार के अस्तित्व को

स्वीकार नहीं करते। ये आत्मा-परमात्मा के अस्तित्व को भी नहीं स्वीकारते हैं। इनके अनुसार मन का ही दूसरा नाम आत्मा है और मन एक पदार्थ जन्म क्रियाशील तत्व है।

प्रयोजनवाद की ज्ञान मीमांसा Epistemology of Pragmatism

प्रयोजनवादियों के अनुसार अनुभवों की पुनर्रचना ही ज्ञान है। ये ज्ञान को साध्य नहीं अपितु मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने का साधन मानते हैं। इसकी प्राप्ति सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने से स्वयं होती है। कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को ये ज्ञान का आधार मानते हैं और मस्तिष्क तथा बुद्धि को ज्ञान का नियंत्रक।

प्रयोजनवाद की आचार मीमांसा Ethics of Pragmatism

प्रयोजनवादी निश्चित मूल्यों और आदर्शों में विश्वास नहीं करते। इसलिए ये मनुष्य के लिए कोई निश्चित आचार संहिता नहीं बनाते। इनका स्पष्टीकरण है कि मनुष्य जीवन में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है इसलिए उसके आचरण को निश्चित नहीं किया जा सकता। उसमें तो वह शक्ति होनी चाहिए कि वह बदले हुए पर्यावरण में समायोजन कर सके। वे बच्चों में केवल सामाजिक कुशलता का विकास करना चाहते हैं। सामाजिक कुशलता से व्यवहारिकतावादियों का तात्पर्य समाज में समायोजन करने, अपनी जीविका कमाने, मानव उपयोग की वस्तु एवं क्रियाओं की खोज करने और नई-नई समस्याओं का समाधान करने की शक्ति से होता है।

11.3.2 प्रयोजनवाद का अर्थ Meaning of Pragmatism

प्रयोजनवाद आंग्ल भाषा के 'प्रैग्मैटिज्म' (Pragmatism) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है, जिसकी व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा के 'प्रैग्मा' (Pragma) शब्द से हुई है, जिसका तात्पर्य है 'क्रिया' अर्थात् 'व्यवहारिक' या 'व्यवहार्य'। दूसरे शब्दों में प्रयोजनवाद वह विचारधारा है जो उन्हीं बातों को सत्य मानती है, जो व्यवहारिक जीवन में काम आ सके। प्रयोजनवादी मूर्त वस्तुओं, शाश्वत सिद्धान्तों और पूर्णता तथा उत्पत्ति में विश्वास नहीं करते। इनके अनुसार सदैव देशकाल तथा परिस्थिति के अनुसार सत्य परिवर्तित होता रहता है, क्योंकि एक वस्तु जो एक देश, काल तथा परिस्थिति में उपयोगी होती है वह दूसरे में नहीं। प्रयोगवाद को 'प्रयोजनवाद' भी कहा जाता है, क्योंकि यह 'प्रयोग' (Experiment) को ही सत्य की एकमात्र कसौटी मानता है। इसे हम 'फलवाद' भी कह सकते हैं, क्योंकि इसमें किसी कार्य का आधार उसके परिणाम या फल के आधार पर आँका जाता है।

इस प्रकार, "प्रयोजनवाद जिसे हम प्रयोगवाद या फलवाद भी कह सकते हैं, वह विचारधारा है जो उन्हीं क्रियाओं, वस्तुओं, सिद्धान्तों तथा नियमों को सत्य मानती है, जो किसी देश, काल और परिस्थिति में व्यवहारिक तथा उपयोगी हो।"

11.3.3 प्रयोजनवाद की परिभाषाएं Definition of Pragmatism

1. रस्क के अनुसार (According to Rusk) - “प्रयोजनवाद एक प्रकार से नवीन आदर्शवाद के विकास की अवस्था है, एक ऐसा आदर्शवाद जो वास्तविकता के प्रति पूर्ण न्याय करेगा, व्यवहारिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का समन्वय करेगा और इसके परिणामस्वरूप उस संस्कृति का निर्माण होगा जिसमें निपुणता का प्रमुख स्थान होगा, न कि उसकी उपेक्षा होगी।”
2. जेम्स के अनुसार (According to Jams) - “प्रयोजनवाद मस्तिष्क का स्वभाव तथा मनोवृत्ति है। यह विचारों की प्रकृति एवं सत्य का भी सिद्धान्त है और अपने अंतिम रूप में यह वास्तविकता का सिद्धान्त है।” (Pragmatism is a temper of mind an attitude. It is also a thing of nature of ideas and truth and finally it is a thing about reality)
3. रॉस के अनुसार (According to Ross)- “प्रयोजनवाद एक मानवीय दर्शन है जो यह स्वीकार करता है कि मनुष्य क्रिया की अवधि में अपने मूल्यों का निर्माण करता है और यह स्वीकार करता है कि वास्तविकता सदैव निर्माण की अवस्था में रहती है।” (Pragmatism is essentially a humanistic philosophy, maintain that man creates his own values in course of activity, that reality is still in making and awaits its past of completion from that future)
4. जैम्स प्रैट के अनुसार (According to Jams Prett) - “प्रयोजनवाद हमें अर्थ का सिद्धान्त, सत्य का सिद्धान्त, ज्ञान का सिद्धान्त और वास्तविकता का सिद्धान्त देता है।” (Pragmatism offers us a theory of meaning, a theory of truth, a theory of knowledge and a theory of reality.)
5. रोजन के अनुसार (According to Rosen) - “प्रयोजनवाद के अनुसार सत्य को उसके व्यवहारिक परिणामों द्वारा जाना जा सकता है। इस कारण सत्य निरपेक्ष न होकर व्यक्तिगत या सामाजिक समस्या है।” (Pragmatism states that truth can be known only through its practical consequence and is thus an Individual or social matter rather than an absolute)

वास्तव में देखा जाए तो अर्थ क्रियावाद व्यवहारिकता या क्रिया पर बल देता है।

11.3.4 प्रयोजनवाद प्रक्रिया (Pragmatism Process)

प्रयोजनवाद किसी निश्चित अथवा शाश्वत सत्य अथवा सिद्धान्त की सत्ता को स्वीकार नहीं करता। वह यह मानते हैं कि मूल्य तो मानव की व्यक्तिगत व सामाजिक घटनाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं जो सदैव परिवर्तनशील होते हैं। वह यह मानते हैं कि विश्व गतिशील है। अतः मूल्य भी गतिशील

होते हैं। वास्तव में मूल्यों का निर्माण तो व्यक्ति स्वयं अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप करता है। आज जो 'सत्य' है, वह कल भी 'सत्य' होगा। सोचना गलत है चूंकि सत्य तो देश, काल व परिस्थितियों के अनुकूल बदलता रहता है। प्रयोजनवाद क्रिया को सर्वोच्च स्थान देता है व यह मानता है कि कोई भी विचार तभी सार्थक हो सकता है, जब हम उसे क्रिया रूप में हस्तांतरित करें। वास्तव में देखा जाए तो क्रिया ही विचारों को अर्थ प्रदान करती है और उनका महत्व निर्धारित करती है। हाँ, इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि विचार आंतरिक वस्तु है व क्रिया बाह्य। अर्थ क्रियावाद निर्धारित आस्थाओं का विरोधी है। प्रकृतिवाद द्वारा प्रकृति के अस्तित्व में विश्वास रखना अथवा आदर्शवाद द्वारा एक चिरस्थायी सत्य को यह स्वीकार नहीं करता। यह विचारों की अपेक्षा क्रिया को अधिक महत्व देता है व यह मानता है कि वास्तविकता एक निर्माणशील प्रक्रिया है और उसके संबंध में हम किसी भी सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं। वह यह मानते हैं कि सत्य तो व्यवहारिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है और ज्ञान भी क्रियाओं का ही परिणाम है। क्रियाओं को सुचारू रूप से चलाने हेतु ज्ञान की आवश्यकता होती है।

अर्थ क्रियावाद प्रजातंत्र शासन व्यवस्था पर बल देकर उसके प्रति अपनी आस्था अभिव्यक्त करता है। वह प्रजातंत्र को जीवन का एक तरीका व अनुभवों को आदान-प्रदान करने की एक व्यवस्था के रूप में देखता है। वह जीवन, शिक्षा व प्रजातंत्र को एक-दूसरे से संबंधित प्रक्रिया मानते हैं। प्रयोजनवाद ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार नहीं करता। वह यह मानता है कि ईश्वर मिथ्या है। आत्मा के अस्तित्व को वह मानता अवश्य है, परन्तु उसे एक क्रियाशील तत्व के रूप में स्वीकार करता है। उनके अनुसार सर्वोच्च सत्ता समाज की होती है। इस संसार की रचना अनेक तत्वों से मिलकर हुई है और इन तत्वों के मध्य क्रिया चलती रहती है, जिसके परिणामस्वरूप रचनात्मक कार्य होता है। सबसे बड़ी बात यह है कि यह क्रिया सदैव चलती रहती है व संसार की रचना करती रहती है। इसी कारण प्रयोजनवाद के अनुसार यह संसार सदैव निर्माण की अवस्था में रहता है। मनुष्य इस संसार का सृजनशील प्राणी है। अतः मनुष्य भी सदैव क्रियाशील रहता है। प्रयोजनवाद मनुष्य को एक मनोशारीरिक प्राणी मानता है। इनके अनुसार मनुष्य को विचार व क्रिया करने की शक्तियाँ प्राप्त हैं, जिनके माध्यम से मनुष्य समस्या को समझने व उनका हल ढूँढने का प्रयास करता है और अन्ततोगत्वा वह स्वयं को अपने वातावरण के अनुकूल ढालने का प्रयास करता है।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

1. प्रयोजनवाद की उत्पत्ति स्थल किस देश को माना जाता है?
A. भारत B. अमेरिका C. इंग्लैण्ड D. रूस
2. जॉन ड्यूवी किस देश के रहने वाले थे?
A. भारत B. चीन C. अमेरिका D. जर्मनी
3. प्रयोजनवाद को किस-किस नाम से जाना जाता है?

4. प्रयोजनवाद क्रिया को सर्वोच्च स्थान देता है। (सत्य/ असत्य)
5. प्रयोजनवाद क्रिया की अपेक्षा विचारों को अधिक महत्व देता है। (सत्य/ असत्य)
6. “शिक्षा बालक के लिए है, बालक शिक्षा के लिए नहीं” यह विचारधारा है-
A. प्रयोजनवाद B. प्रकृतिवाद C. आदर्शवाद D. अस्तित्ववाद

भाग-2

11.4 प्रयोजनवाद की शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Pragmatism)

प्रयोजनवादी मानव की शक्ति पर विशेष बल देता है, क्योंकि वह उसके द्वारा अपनी आवश्यकताओं के अनुसार वातावरण बना लेता है। वह सफलतापूर्वक समस्याओं का समाधान करके अपने लिए सुन्दर वातावरण निर्मित कर लेता है। प्रयोजनवाद बहुत्ववाद का समर्थक है। रस्क महोदय ने इस तथ्य पर विचार करते हुए लिखा है-“प्रकृतिवाद प्रत्येक वस्तु को जीवन या (भौतिक तत्व), आदर्शवाद मन या आत्मा मानता है। प्रयोजनवाद बहुत्ववादी है।” प्रयोजनवाद के अनुसार केवल वही वस्तु अथवा विचार ठीक हैं जो हमारे लिए उपयोगी हैं और इसके विपरीत जो वस्तु या विचार हमारे लिए उपयोगी नहीं है वह हमारे लिए व्यर्थ हैं। प्रयोजनवादी व्यवहारिक जीवन से संबंध रखना उचित समझते हैं। ईश्वर, आत्मा, धर्म इत्यादि का व्यवहारिक जीवन से संबंध न होने के कारण इनका कोई महत्व नहीं है। हाँ, यदि व्यवहारिक जीवन में उनकी आवश्यकता अनुभव हो तो वे उन्हें स्वीकार करने में भी नहीं चूकते। कुछ भी हो प्रयोजनवादी आध्यात्मिक तत्वों की उपेक्षा करते हैं।

प्रयोजनवाद की शिक्षा का उद्देश्य न केवल व्यक्ति के जीवन की सफलता है वरन् सामाजिक जीवन की सफलता है इसलिए सभ्यता, व्यवसायिक तथा उदार शिक्षा के मूल्य, सभी उसमें आवश्यक हैं। शिक्षा के उद्देश्यों को निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं।

1. जीवन का वास्तविक अनुभव प्रदान करना :- यह शिक्षा ‘क्रिया के द्वारा सीखने के सिद्धांत’ की पोषिका है। यह शिशू को जीवन का वास्तविक अनुभव प्रदान कर व्यवहारिक एवं सक्षम नागरिक बनाना चाहती है।
2. पूर्वाग्रह एवं रूढ़ि से मुक्ति :- मानव युगों से परम्पराओं एवं रूढ़ियों का शिकार रहा है। अतः प्रयोजनवादी शिक्षा उसे मुक्ति दिलाकर प्रगति एवं विकास के पथ पर अग्रसर करना चाहती है।
3. गतिशील निर्देशन :- प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षा का एक उद्देश्य छात्रों को गतिशील निर्देशन देना है। पर केवल इतना कह देना ही काफी नहीं है। गतिशील निर्देशन की व्याख्या की जानी आवश्यक है।
4. विद्यार्थियों का विकास :- प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षा का एक उद्देश्य है- विद्यार्थियों का विकास। इस उद्देश्य की दो कारणों से अति कटु आलोचना की गयी है। इस

विकास का न तो कोई अंत है। और न कोई लक्ष्य। सिवाय इसके कि विकास का और अधिक विकास हो। दूसरे विकास की दिशा गलत हो सकती है। अतः प्रयोजनवादियों को विकास की दिशा भी स्पष्ट होनी चाहिए थी।

5. सामाजिक एवं उपयोगी मानव का निर्माण:- इस शिक्षा का दूसरा बड़ा उद्देश्य है कि सामाजिक एवं मानव का निर्माण। सामाजिक दक्षता एवं नागरिकता के गुणों से मानव को विभूषित करना इस शिक्षा का विशेष उद्देश्य है।
6. मूल्यों एवं आदर्शों के निर्माण करने की क्षमता का विकास :- प्रयोजनवादी दार्शनिकों के अनुसार बालक को स्वयं अपने मूल्यों और आदर्शों का निर्माता होना चाहिए। इस प्रकार प्रयोजनवादी शिक्षा का कोई उद्देश्य हो सकता है। तो वह यह है- बालक को अपने मूल्यों और आदर्शों का निर्माण करने के योग्य बनाना। इस उद्देश्य की प्रप्ति के लिए प्रयोजनवादी उन परिस्थितियों का निर्माण करने में सहायता देती है।

11.4.1 प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम Pragmatism Curriculum)

प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं:-

1. उपयोगिता का सिद्धान्त (Principle of Utility) - प्रयोजनवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम में ऐसे नियमों को स्थान देना चाहिए, जो बालकों के भावी जीवन में काम दें और उन्हें ज्ञान तथा सफल जीवन की क्षमता प्रदान करें। इस दृष्टि से उनके अनुसार पाठ्यक्रम में भाषा, स्वास्थ्य विज्ञान, शारीरिक प्रशिक्षण, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान-बालिकाओं को गृह-विज्ञान आदि विषयों को स्थान देना चाहिए, जो कि मानव प्रगति में सहायक हों।
2. सानुबंधित का सिद्धान्त (Principle of Integration) - प्रयोजनवादियों का विचार है कि जो विषय पाठ्यक्रम में निर्धारित किए जायें उन सबमें आपस में संबंध होना चाहिए, क्योंकि ज्ञान का पृथक-पृथक विभाजन नहीं होता। उनका विचार है कि बालकों को समस्त विषय एक-दूसरे से संबंधित कर पढ़ाने चाहिए, जिससे न केवल बालकों का ज्ञान प्राप्त करना सार्थक हो वरन् शिक्षकों को पढ़ाने में भी सुविधा हो।
3. बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम (Child-Centered Curriculum)- प्रयोजनवादियों का विचार है कि पाठ्यक्रम का संगठन इस प्रकार करना चाहिए कि उसमें बालक की प्राकृतिक अभिरूचियों का पूर्ण स्थान हो। बालक की ये अभिरूचियाँ मुख्य रूप से चार हैं- 1. बातचीत करना, 2. खोज करना, 3. कलात्मक अभिव्यक्ति एवं 4. रचनात्मक कार्य करना। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम में लिखने, पढ़ने, गिनने, प्रकृति विज्ञान, हस्तकार्य एवं ड्राइंग का अध्ययन करने के साधनों को स्थान मिलना चाहिए।
4. बालक के व्यवसाय, क्रियाओं एवं अनुभव पर आधारित (On the base of Child's Occupation Activities and Experience)- प्रयोजनवादियों का विचार है कि पाठ्यक्रम का संगठन बालक के व्यवसायों एवं अनुभव पर आधारित होना चाहिए। उनका

विचार है कि किताबों को केवल रट लेना शिक्षा नहीं है बल्कि यह तो एक सुविचार प्रक्रिया है, फलस्वरूप पाठ्यक्रम में शिक्षा विषयों के अतिरिक्त सामाजिक, स्वतंत्र एवं उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं को स्थान मिलना चाहिए, जिससे कि बालकों में नैतिक गुणों का विकास होगा, स्वतंत्रता की भावना का संचार होगा, उनमें नागरिकता की भावना का विकास होगा तथा उनमें आत्म-अनुशासन की भावना पैदा होगी।

11.4.2 प्रयोजनवादी तथा अनुशासन Pragmatic and Discipline

प्रयोजनवादी विचार अथवा शब्द की अपेक्षा क्रिया पर अधिक जोर देते हैं। उनका विचार है कि बालकों को पुस्तकों की अपेक्षा क्रियाओं और अनुभवों से अधिक सीखना चाहिए, जिससे कि उनके ज्ञान का व्यवहारिक मूल्य अधिक हो, फलस्वरूप वह 'करके सीखने अथवा स्वानुभव द्वारा सीखने' (Learning by doing or Experience) पर विशेष महत्व देते हैं। शिक्षा इस प्रकार होनी चाहिए जो बालक की अभिरूचियों, आवश्यकताओं, उद्देश्यों आदि के अनुकूल हो, जिससे कि बालक प्रसन्नतापूर्वक अपने जीवन में काम आने वाली शिक्षा ग्रहण कर सके। समस्त विषयों को परस्पर संबंधित कर पढ़ाना चाहिए, जिससे बालक जो ज्ञान और कौशल सीखते हैं, उनमें एकता स्थापित हो जाती है।

शिक्षा जब छात्र की समस्याओं तथा आवश्यकता की पूर्ति के लिए होगी तो अनुशासनहीनता की समस्या ही नहीं उठेगी। सामूहिक वातावरण में, स्वतंत्रता तथा रचनात्मक क्रियाओं में बालक स्वभाव से ही नियंत्रित रहता है। उसमें आत्मनिर्भरता, स्वालम्बन, सामाजिकता, सहयोग तथा सहानुभूति आदि गुणों का विकास स्वाभाविक है। उसकी मूल-प्रवृत्तियों का सुधार स्वयं हो जायगा। वैयक्तिक अनुशासन की आवश्यकता इस प्रणाली में नहीं है।

अपनी उन्नति जानिए ((Check your Progress))

1. “सत्य सदैव देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है, जो वस्तु एक स्थान पर सत्य है आवश्यक नहीं कि वह दूसरे स्थान पर भी सत्य होगी।” यह विचारधारा है-
A. अस्तित्ववाद B. प्रयोगवाद C. आदर्शवाद D. प्रकृतिवाद
2. प्रयोजनवाद समर्थन करता है-
एकत्ववाद (Mononism) B. द्वैतवाद (Dualism) C. बहुत्ववाद (Pluralism)
3. “विभिन्नता में एकता के सिद्धान्त (Principal of Utility In Diversity) का समर्थन करते हैं।” यह विचारधारा है-
A. फलवाद/प्रयोजनवाद B. आदर्शवाद C. प्रकृतिवाद D. अस्तित्ववाद

4. “प्रत्येक शिक्षण पद्धति को बाल केन्द्रित (Child-Cented) होना चाहिए।” यह विचारधारा है-
- A. प्राचीनकालीन B. आधुनिक C. अस्तित्ववादी D. प्रयोजनवादी
5. “मूल्य तो मानव की व्यक्तिगत व सामाजिक घटनाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं जो सदैव परिवर्तनशील होते हैं।” यह विचारधारा है-
- A. प्रयोजनवाद B. अस्तित्ववाद C. प्रकृतिवाद D. आदर्शवाद
6. प्रयोग (Experiment) को ही सत्य की एकमात्र कसौटी कौन मानता है ?
- A. प्रकृतिवाद B. अस्तित्ववाद C. प्रयोजनवाद D. आदर्शवाद

भाग-3

11.5 प्रयोजनवाद व शिक्षक (Pragmatism and teacher)

1. किसी भी तरह की शिक्षण प्रक्रिया हो, शिक्षक की प्रमुख और निर्णायक भूमिका होती है। यथार्थवादी विचारकों के अनुसार शिक्षक को अपने विषय में विशेषज्ञता प्राप्त होनी चाहिए एवं उससे सम्बन्धित क्रियाओं में निपुण होना चाहिए। प्रयोजनवादी दार्शनिकों के मतानुसार शिक्षकों को छात्रों के अन्दर विद्या का विकास करना चाहिए, जिससे बच्चे स्वावलम्बी बनें और स्वयं सही निर्णय लेने में समर्थ हो सकें। इसके लिए अध्यापक को एक पथ प्रदर्शक और निरीक्षक की भूमिका निभानी चाहिए। शिक्षकों का कर्तव्य है कि वे बच्चों को समस्याओं के प्रति संवेदनशील और उनके हल ढूँढने के लिए क्रियाशील बनाएँ, जिससे वे अपने जीवन में किसी भी क्षण किसी भी समस्या को हल कर सकें। उसे हर समय बहुत सतर्क रहना चाहिए और बच्चों के साथ प्रेम एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। जिससे बच्चों में सामाजिक आदतों, सामाजिक रुचियों एवं सामाजिक दृष्टिकोण का विकास सम्भव हो सके। प्रयोजनवाद में शिक्षकों का महत्व निम्न दो बातों में निहित है।
1. उसे अपने विद्यार्थियों को उचित समस्याओं वाली परिस्थिति में रखना चाहिए।
 2. उसे विद्यार्थियों को इस बात के लिये प्रेरित करना चाहिए कि वे अपनी रुचियों के अनुसार समस्याओं को कुशलता, चतुराई, बुद्धिमानी एवं आपसी सहयोग से हल कर सकें।

11.5.2 प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव (Impact of Pragmatism on Modern Education)

दर्शन के रूप में नहीं वरन् व्यवहार के रूप में प्रयोजनवाद ने आधुनिक शिक्षा पर बहुत प्रभाव डाला है। शिक्षा एक व्यावहारिक कला है और व्यावहारिक दृष्टि से प्रयोजनवाद शिक्षा से पुनःनिर्माण में बहुत सहायक सिद्ध हुआ। प्रयोजनवादी शिक्षा की निम्नलिखित धाराएं आज भी भारतीय शिक्षा में स्पष्ट हैं:-

1. शिक्षा व्यापक रूप से विकास, वृद्धि या व्यवहार परिवर्तन का रूप लेती है।
2. शिक्षा के निकट के उद्देश्य बहुत महत्व रखते हैं और उनकी प्राप्ति के लिए शिक्षण विधियाँ प्रगतिशील हैं।
3. शिक्षा जीवन केन्द्रित हो और एक प्रगतिशील समाज में वह भी प्रगति का परिचय दे।
4. शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है और समाज का पोषण है।
5. समाज शिक्षा संस्थाओं को अपने आदर्शों की पूर्ति के लिए स्थापित करता है। अतः शिक्षण संस्थाएं समाज का बन्धु रूप हैं।
6. जनतंत्रीय समाज के लिए जनतंत्रीय शिक्षा की आवश्यकता है।
7. ज्ञान की उत्पत्ति क्रिया से होती है, क्रिया प्रधान है, सफलतापूर्वक क्रिया का संपादन करने के लिए वह ज्ञान आता है और बालक क्रिया द्वारा सीखता है।
8. शिक्षा बालक की नैसर्गिक प्रवृत्तियों, रुचियों, शक्तियों आदि को केन्द्र बनाकर दी जाए परन्तु उसको साथ ही साथ सामाजिक रूप भी दिया जाए। बालक अपने हित के साथ-साथ समाज का हित करने की क्षमता भी सीख ले।
9. शिक्षा जीवन की तैयारी ही नहीं जीवन का लक्ष्य है। भविष्य अनिश्चित है। अतः वर्तमान अधिक मूल्य रखता है। शिक्षा द्वारा बालकों को वह गुण, ज्ञान, मनोवृत्तियाँ व कौशल दिये जाएं, जो उन्हें एक बदलते हुए समाज में परिस्थितियों के अनुकूल अपना समाज में स्थान लेने योग्य बनाएं।

अपनी उन्नति जानिए ((Check your Progress))

1. प्रयोजनवादी शाश्वत मूल्यों पर विश्वास करते हैं। (सत्य/असत्य)
2. प्रयोजनवादी भावना तथा परिस्थितियों से अधिक बुद्धि को अधिक महत्व देते हैं। (सत्य/असत्य)
3. प्रयोजनवादी शिक्षा में गतिशीलता व परिवर्तनशीलता पायी जाती है। (सत्य/असत्य)
4. प्रयोजनवादी 'पुद्गल' (Matter) से संसार की समस्त वस्तुओं तथा विचारों की उत्पत्ति मानते हैं। इस तरह से वे एक तत्ववादी हैं। (सत्य/असत्य)
5. प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम मानवीय अनुभवों पर आधारित क्रिया प्रधान है। (सत्य/असत्य)

11.6 सारांश

शिक्षा दर्शन के रूप में प्रयोजनवाद का एक प्रगतिशील दर्शन है। वह शिक्षा को सामाजिक (Social) , गतिशील (Dynamic) और विकास की प्रक्रिया (Process of Development) मानता है। उसके इस विचार ने प्रगतिशील शिक्षा (Progressive Education) को जन्म दिया है। आदर्शवाद और प्रकृतिवाद ने शिक्षा को मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक आधार ही दिए थे, व्यवहारिकतावाद ने उसे एक तीसरा आधार भी दिया, जिसे हम सामाजिक आधार कहते हैं।

जहां तक शिक्षा के उद्देश्यों की बात है, व्यवहारिकतावाद उन्हें निश्चित करने के पक्ष में नहीं है। उसका स्पष्टीकरण है कि यह संसार और मनुष्य जीवन परिवर्तनशील है, इसलिए शिक्षा के कोई निश्चित उद्देश्य नहीं हो सकते, अगर शिक्षा का कोई उद्देश्य हो सकता है तो यही कि उसके द्वारा मनुष्य का सामाजिक विकास कर उसे इस योग्य बनाया जाए कि वह बदलते हुए समाज में अनुकूलन कर सके और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामाजिक पर्यावरण पर नियंत्रण रख सके और उसमें परिवर्तन कर सके। परन्तु जब तक मनुष्य यह नहीं जानता कि उसे सामाजिक पर्यावरण में किस सीमा तक अनुकूलन करना है और उसे अपनी किन आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है तब तक वह उचित मार्ग पर नहीं चल सकता। व्यवहारिकतावाद इन प्रश्नों के सही उत्तर नहीं देता, इसलिए उसके द्वारा निश्चित शिक्षा के ये उद्देश्य अपने में अपूर्ण हैं। ड्यूवी महोदय ने सामाजिक कुशलता के विकास और क्लिपेट्रिक महोदय ने लोकतंत्रीय जीवन के विकास पर बल दिया है। हमारी दृष्टि से तो शिक्षा को मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना चाहिए।

शिक्षण विधियों के क्षेत्र में प्रयोजनवादियों की देन बड़ी मूल्यवान है। जिन मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन एवं प्रयोग आदर्शवादियों और प्रकृतिवादियों ने किया, व्यवहारिकतावादियों ने उसमें सामाजिक पर्यावरण के महत्व को और जोड़ दिया। उन्होंने बच्चों की जन्मजात शक्तियों को पहचाना, उनके व्यक्तिगत भेदों का आदर किया और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सीखने, करके सीखने और अनुभव द्वारा सीखने पर बल दिया और इसके साथ-साथ इस बात पर भी बल दिया कि बच्चों को जो कुछ भी सिखाया जाये उसका संबंध उनके वास्तविक जीवन से होना चाहिए और उन्हें व्यवहारिक क्रियाओं के माध्यम से अनुभव करने के अवसर देने चाहिए। समस्त विषयों एवं क्रियाओं की शिक्षा एक ईकाई के रूप में देने पर भी इन्होंने बल दिया है। इन सिद्धान्तों पर ड्यूवी महोदय ने समस्या समाधान विधि (Problem Solving Method) और क्लिपेट्रिक ने प्रोजेक्ट विधि (Project Method) का निर्माण किया। ईकाई विधि (Unit Technique) भी इन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित है। आज संसार के सभी देशों की शिक्षा में इन विधियों को अपनाया जाता है। प्रयोजनवादी व्यक्ति और समाज दोनों के हित साधन के लिए विद्यालयों को समाज के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में देखना चाहते हैं। उनके इस विचार ने विद्यालयों को सामुदायिक केन्द्रों (Community Centered) में बदल दिया है। अब विद्यालय कोई कृत्रिम संस्थाएं नहीं माने जाते

अपितु बच्चों की जैविक प्रयोगशालाओं के रूप में स्वीकार किये जाते हैं, जहाँ बच्चे वास्तविक क्रियाओं में भाग लेते हैं, स्वयं क्रिया करते हैं, निरीक्षण करते हैं और वास्तविक जीवन की शिक्षा प्राप्त करते हैं।

11.7 शब्दावली

प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा Metaphysics of Pragmatism

यह अनेक वस्तुओं और अनेक क्रियाओं का परिणाम है, वस्तु और क्रियाओं की व्याख्या के झमेंले में ये नहीं पड़ते। इस इन्द्रियग्राह संसार के अतिरिक्त ये किसी अन्य संसार के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। ये आत्मा-परमात्मा के अस्तित्व को भी नहीं स्वीकारते। इनके अनुसार मन का ही दूसरा नाम आत्मा है और मन एक पदार्थ जन्म क्रियाशील तत्व है।

प्रयोजनवाद की ज्ञान मीमांसा Epistemology of Pragmatism

प्रयोजनवादियों के अनुसार अनुभवों की पुनर्रचना ही ज्ञान है। ये ज्ञान को साध्य नहीं अपितु मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने का साधन मानते हैं। इसकी प्राप्ति सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने से स्वयं होती है। कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को ये ज्ञान का आधार मानते हैं और मस्तिष्क तथा बुद्धि को ज्ञान का नियंत्रक।

प्रयोजनवाद की आचार मीमांसा Ethics of Pragmatism

प्रयोजनवादी निश्चित मूल्यों और आदर्शों में विश्वास नहीं करते इसलिए ये मनुष्य के लिए कोई निश्चित आचार संहिता नहीं बनाते। इनका स्पष्टीकरण है कि मनुष्य जीवन में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है इसलिए उसके आचरण को निश्चित नहीं किया जा सकता। उसमें तो वह शक्ति होनी चाहिए कि वह बदले हुए पर्यावरण में समायोजन कर सके।

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग-1

उत्तर-1 B. अमेरिका उत्तर-2 C. अमेरिका

उत्तर-3 प्रयोजनवाद को हम प्रयोगवाद, फलवाद, क्रियावाद, व्यवहारवाद, कारणवाद, नैमित्तिकवाद, अनुभववाद आदि नामों से पुकारते हैं।

उत्तर-4 A. सत्य उत्तर-5 B. असत्य

उत्तर-6 प्रयोजनवाद

भाग-2

उत्तर-1 B. प्रयोगवाद उत्तर-2 C. बहुत्ववाद उत्तर-3 A. फलवाद (प्रयोजनवाद)

उत्तर-4 D. प्रयोजनवाद उत्तर-5 A. प्रयोजनवाद उत्तर- C. प्रयोजनवाद

भाग-3

- उत्तर-1 B. असत्य उत्तर-2 B. असत्य उत्तर-3 A. सत्य
उत्तर-4 B. असत्य उत्तर-5 D.सत्य

11.9 सन्दर्भ

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठा।
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. डिस्ट्रीब्यूटर्स।
6. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. शर्मा, रामनाथ व शर्मा राजेन्द्रकुमार (2006) एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

11.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस,मेरठा।
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।

11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रयोजनवाद से आप क्या समझते हैं? प्रयोजनवाद एवं शिक्षा के संबंधों की चर्चा विस्तृत रूप से कीजिए।
2. प्रयोजनवाद में तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं आचार मीमांसा के बारे में विस्तृत रूप से वर्णन कीजिए।
3. प्रयोजनवाद की विशेषताओं की विस्तृत रूप से व्याख्या कीजिए।

4. प्रयोजनवाद के आधारभूत सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।
5. प्रयोजनवादी शिक्षण पद्धति की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
6. प्रयोजनवाद की दो परिभाषाएं देते हुए प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है? इसका विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई-12 क्षेत्रीय विकास और राष्ट्रीय एकता में शिक्षा की भूमिका (Role of Education for Regional Development and National Integration)

- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 उद्देश्य
- भाग-एक
- 12.3 क्षेत्रवाद का अर्थ
- 12.3.1 क्षेत्रवाद के कारण
- 12.3.2 क्षेत्रवाद के निवारण के उपाय
अपनी उन्नति जानिए
- भाग-दो
- 12.4 राष्ट्रीय एकता का अर्थ
- 12.4.1 राष्ट्रीय एकता की परिभाषाएं
- 12.4.2 भारत में राष्ट्रीयता के मार्ग में बाधाएं
- भाग-तीन
- 12.5 राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति हेतु शैक्षिक कार्यक्रम
अपनी उन्नति जानिए
- 12.6 सारांश
- 12.7 शब्दावली
- 12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 12.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 12.11 लघु उत्तरीय प्रश्न

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

यू तो भारतवर्ष में क्षेत्रवाद (Regionalism) किसी न किसी रूप में सदैव उपस्थित था, परन्तु न तो पहले वह कभी इतना बड़ा था और न वह राष्ट्रीय हित के लिए इतना हानिकारक हुआ था। देश में अनेक राज्य होने पर उनमें क्षेत्रवाद से इतनी हानि न थी। परन्तु आज जबकि पूरा देश एक राष्ट्र हो गया है, उस समय क्षेत्रवाद से राष्ट्रीय एकता को भारी खतरा है।

हमें राष्ट्रीय व भावात्मक एकता के आदर्श को प्राप्त करने के लिए देश की शिक्षा की योजना भी उसी के अनुरूप बनानी चाहिए। यदि उपर्युक्त सावधानियां बरती जाएं तो विघटनकारी तत्वों को शिक्षा द्वारा शनैः-शनैः समाप्त किया जा सकता है। देश में एकता की स्थापना करने के उत्तरदायित्व से शिक्षा अपना मुंह नहीं मोड़ सकती। भावात्मक एकता समिति ने अपने प्रतिवेदन के पृष्ठ 185 पर ठीक ही कहा है कि शिक्षा को एकता और राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना है। समिति के ही शब्दों में, “भावात्मक एकता को सुदृढ़ बनाने में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। यह अनुभव किया गया है कि शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान देना ही नहीं है, वरन् छात्र के व्यक्तित्व के सभी पक्षों का विकास करना है। इसको चाहिए कि छात्रों के दृष्टिकोण को विस्तृत करे, एकता और राष्ट्रीयता तथा त्याग एवं सहिष्णुता की भावना का विकास करे, जिससे कि संकीर्ण दलगत स्वार्थों को विशाल देश-हित में समाहित किया जा सके।

12.2 उद्देश्य Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

1. क्षेत्रवाद का अर्थ व क्षेत्रवाद के कारणों को जान सकेंगे।
2. क्षेत्रवाद को रोकने के उपायों को जान सकेंगे।
3. राष्ट्रीय एकता की भावना को समझ सकेंगे।
4. राष्ट्रीय एकता के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर कर सकेंगे।
5. राष्ट्रीयता के गुणों को अपने जीवन में उतार सकेंगे।

भाग-एक (PART-I)

12.3 क्षेत्रवाद का अर्थ ((Definition of Regionalism)

यह क्षेत्रवाद क्या है ? क्षेत्रवाद जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, अपने - अपने भौगोलिक क्षेत्रों के प्रति भक्ति और दूसरे क्षेत्रों के लोगों के प्रति भय, अविश्वास या घृणा का भाव है। इस प्रकार भारत में आज विभिन्न क्षेत्रों के लोग एक-दूसरे को विदेशी समझने लगे हैं। हर एक क्षेत्र अपने क्षेत्र में अपने

ही क्षेत्र के लोगों का राज्य चाहता है और उनमें दूसरे क्षेत्रों से आये हुए लोगों को बिल्कुल स्थान नहीं देना चाहते, चाहे वे वहां कितने ही दिनों से रह रहे हों। इस प्रकार नागा क्षेत्र में कुछ लोगों ने एक पृथक् राज्य की मांग की है। पंजाब में अकाली दल ने पंजाबी सूबे की मांग की है। क्षेत्र के आधार पर बम्बई राज्य महाराष्ट्र और गुजरात दो राज्यों में विभाजित हो गया। इसके अलावा कुछ लोग दक्षिणी भारत में एक बिल्कुल ही पृथक् राज्य बनाने की मांग लाये है। भारत एक संघ राज्य है। राज्य के कार्य कुछ संघ सरकार और कुछ राज्य सरकारों को मिले हुए हैं। ये सब राज्य अधिकतर आन्तरिक मामलों में स्वतंत्र हैं। इसलिए देश की एकता तभी तक रह सकती है, जब तक लोग पूरे देश को एक राष्ट्र और अपना देश समझें। यदि हर एक क्षेत्र के लोग अपने ही क्षेत्र के प्रति भक्ति रखें और उसमें राष्ट्रीय हितों की कोई परवाह न करें तो संघ सरकार का बने रहना कठिन हो जाएगा। इस प्रकार क्षेत्रवाद राष्ट्रीय हित के लिए एक भयंकर समस्या बन गई है।

12.3.1 क्षेत्रवाद के कारण (Reason of Regionalism)

देश के इस क्षेत्रवाद के मूल में निम्नलिखित कारण हैं:-

1. भौगोलिक कारण:- क्षेत्रवाद का मुख्य कारण भौगोलिक है। भिन्न-भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का रहन-सहन, पहनावा, खान-पान, रीति-रिवाज, इतिहास, भूगोल आदि कुछ न कुछ भिन्न होता ही है। इससे एक-दूसरे के प्रति भय और घृणा के भाव उत्पन्न हो जाते हैं।
2. ऐतिहासिक कारण:- जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, क्षेत्रवाद के मूल में एक कारण ऐतिहासिक भी है। उदाहरण के लिए भारतवर्ष में आर्यों के समय से ही दक्षिणी और उत्तर में कुछ न कुछ भेद बना रहा। उत्तर के बहुत से राजाओं ने दक्षिण को विजयी किया। दक्षिण में शायद ही कभी कोई ऐसा राज्य बन सका हो जो उत्तरी भारत तक फैला हो। इससे दक्षिण के बहुत से लोग दक्षिणी भारत को उत्तरी भारत से अलग समझते हैं।
3. सार्वजनिक कारण:- परन्तु यदि ध्यान से देखा जाये तो देश में फैले क्षेत्रवाद के मूल के मुख्य कारण राजनैतिक हैं। अलग-अलग क्षेत्रों में राजनैतिक स्वार्थों को लेकर और राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए कुछ लोगों ने क्षेत्रीय देशों की मांग की है। इस दिशा में फिजो (Phizo) के विद्रोही नागा दल, पंजाब के अकाली दल, दक्षिण के द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम (DMK) आदि विभिन्न राजनैतिक दलों का भारी हाथ था। सच तो यह है कि इन्हीं दलों के नेताओं ने इन क्षेत्रों में क्षेत्रवाद फैलाया है। केवल इतना ही नहीं बल्कि कुछ राष्ट्रीय दलों में भी भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि क्षेत्रीय हितों के सामने राष्ट्रीय हितों की परवाह नहीं करते।
4. मनोवैज्ञानिक कारण:- अन्त में क्षेत्रवाद के विकास और स्थायित्व में मनोवैज्ञानिक कारण भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। हर एक क्षेत्र में लोग यह चाहते हैं कि उनका क्षेत्र सबसे अधिक उन्नति करे। यह तो कोई बुरी बात नहीं है, परन्तु जब इसके लिए वे अन्य क्षेत्रों और पूरे राष्ट्र के हितों को तुच्छ समझते हैं तो यह भावना क्षेत्रवाद का रूप धारण कर लेती है। इसके

अलावा क्षेत्रवाद के पीछे बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं, जो अपने अंदर की ईर्ष्या, द्वेष, भय, क्रोध आदि की भावनाएं इस तरीके से निकालते हैं।

5. अन्य कारण:- उपरोक्त कारणों के अलावा कुछ अन्य कारण भी क्षेत्रवाद बढ़ाते हैं। उदाहरण के लिए भारत में बंगालियों और महाराष्ट्रियों और पंजाबियों आदि में परस्पर विवाह बहुत कम देखे जाते हैं। आमतौर से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लोगों में विवाह संबंध नहीं होते। इससे परस्पर घनिष्ठ संपर्क का अवसर कम आता है। इन सामाजिक कारणों के अलावा क्षेत्रगत तनाव के कुछ आर्थिक कारण भी हैं। देश में कुछ क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से बहुत पिछड़े हुए हैं। इससे उनमें हीनता की भावना रहती है और वे दूसरों से ईर्ष्या करने लगते हैं। कुछ क्षेत्रों में, जैसे-व्यापार में कुछ विशेष क्षेत्रों के लोग अधिक सफल दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए भारत में व्यापारी वर्ग में मारवाड़ियों, गुजरातियों और पंजाबियों ने अधिकतर अधिकार जमा रखा है। इसमें भी अन्य लोग उनसे जलते हैं और अपने क्षेत्रों से उनको निकालने की कोशिश करते हैं।

12.3.2 क्षेत्रवाद के निवारण के उपाय

क्षेत्रवाद के निवारण के मुख्य उपाय निम्नलिखित हो सकते हैं:-

1. यातायात और संदेशवहन का प्रोत्साहन:- क्षेत्रवाद को दूर करने के लिए देश में घूमने की और विभिन्न क्षेत्रों से संबंध बढ़ाने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। अभी पिछले दिनों साधुओं की एक ट्रेन भारत दर्शन के लिए निकली थी। इस तरह से राजस्थान के बहुत से किसानों ने ट्रेन के द्वारा भारत की यात्रा की। भारत में जो तीर्थ करने की परम्परा है उसके कारण भी लोगों को सारे देश में घूमना पड़ता है। देश के भिन्न-भिन्न भागों में जाने से देशवासियों में यह भावना बढ़ती है कि भारतवर्ष एक बड़ा देश है और उसका क्षेत्र विशाल भारत का एक अंग मात्र है। देश में यातायात और संदेशवहन को प्रोत्साहित करके क्षेत्रवाद को कम किया जा सकता है।
2. राष्ट्रीय इतिहास का प्रचार:- सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय इतिहास का प्रचार किया जाना चाहिए, जिससे लोगों के सामने यह स्पष्ट हो जाए कि भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। राष्ट्रीय इतिहास के प्रचार से क्षेत्रवाद की भावनाएं दूर होंगी।
क्षेत्रवादी राजनैतिक दलों पर रोक:- राष्ट्रीय एकता के लिए यह आवश्यक है कि क्षेत्रवाद का प्रचार करने वाले राजनैतिक दलों पर रोकथाम की जाए। खुल्लम-खुल्ला प्रचार करने पर उनको गैर-कानूनी घोषित कर दिया जाना चाहिए। यद्यपि जनतंत्र में हर एक व्यक्ति को अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए राजनैतिक दल बनाने का अधिकार है, परन्तु यदि इससे राष्ट्रीय हितों की हानि होती है तो यह अधिकार छीन लिया जाना चाहिए।
3. राष्ट्रीय भावना का प्रसार:- अन्त में क्षेत्रवाद के मूल के मनोवैज्ञानिक कारणों को दूर करने के लिए देश में भारतीय राष्ट्रीय भावना के प्रसार की चेष्टा की जानी चाहिए। इस दिशा में

रेडियो, चलचित्रों, पत्र-पत्रिकाओं, व्याख्यानों आदि सभी उपायों से प्रचार करने की आवश्यकता है। सरकारी नौकरियों, शिक्षा संस्थाओं आदि सभी जगह से क्षेत्रवादी प्रवृत्तियों को निकालने की कोशिश की जानी चाहिए और राष्ट्रीयता की भावना को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

क्षेत्रवाद एक जटिल समस्या है। इसको सुलझाने के लिए सभी ओर से प्रयास की आवश्यकता है।

अपनी उन्नति जानिए

सत्य/असत्य कथनों पर सही का निशान लगाएं:-

1. अपने-अपने भौगोलिक क्षेत्रों के प्रति भक्ति और दूसरे क्षेत्रों के लोगों के प्रति भय, अविश्वास या घृणा का भाव क्षेत्रवाद है। (सत्य/असत्य)
2. पंजाब में अकाली दल द्वारा पंजाबी सूबे की मांग राष्ट्रीयता को बढ़ावा देगी। (सत्य/असत्य)
3. आज भारत एक संघ राज्य नहीं है। (सत्य/असत्य)
4. क्षेत्रवाद का खुल्लम-खुल्ला प्रचार करना गैर-कानूनी घोषित कर दिया जाए। (सत्य/असत्य)

भाग-दो Part II

12.4 राष्ट्रीय एकता का अर्थ (Meaning of National Integration)

राष्ट्रीय एकता की भावना वास्तव में इस ओर इंगित करती है कि व्यक्ति राष्ट्र के लिए है, राष्ट्र व्यक्ति के लिए नहीं। यह वह भावना है जो व्यक्तियों को अपने व्यक्तिगत हितों को त्याग कर राष्ट्र-कल्याण के लिए प्रेरित करती है। इसका तात्पर्य एक राष्ट्र के निवासियों की उस आन्तरिक एकता से है, जिसमें वह अपनी जाति, धर्म, सम्प्रदाय, संस्कृति एवं प्रान्त के संकीर्ण हितों को भूलकर सम्पूर्ण राष्ट्र के हितों का ध्यान रखते हैं। इसी कारण विचारकों का मानना है कि राष्ट्रीय एकता एक मनोवैज्ञानिक स्थिति एवं एकीकरण की भावना है जो व्यक्ति को विघटनकारी प्रवृत्तियों से दूर रखती है। यह भावना व्यक्तियों के अंदर उन गुणों को पल्लवित करती है जो राष्ट्र के विकास में सहयोग देते हैं। वास्तव में यदि देखा जाए तो भारतवर्ष में राष्ट्रीय एकता एक सर्वोपरि आवश्यकता है। डॉ. श्रीमाली ने ठीक ही कहा है- “यदि हम मुश्किल से मिलने वाली अपनी आजादी की सुरक्षा एवं समृद्धि चाहते हैं तो हमें राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया को जारी रखना और शक्तिशाली बनाना पड़ेगा।

12.4.1 राष्ट्रीय एकता की परिभाषाएं (definition of National Integration)

1. ब्रूबेकर के अनुसार- “राष्ट्रीयता वह सम्बोध है, जो विद्या की जागृति के प्रमुख रूप धारण कर रहा है, विशेष तौर पर फ्रांसीसी क्रान्ति के बाद। सामान्य रूप यह देशभक्ति की बात

नहीं करता वरन् यह स्वामिभक्ति से सम्बन्ध रखता है। साथ ही साथ एकता के अतिरिक्त इसमें प्रजाति, इतिहास, भाषा, संस्कृति एवं परम्पराओं की भी एकता निहित होती है।”

("Nationalism is a term has come into prominence since the renaissance and particularly since the French revolution. It ordinarily indicates a wider scope of loyalty than patriotism. In addition to ties of place, nationalism is evidenced by such other ties as race, history, language, culture and tradition." - Brubacher)

2. **डॉ. वेदी के अनुसार-** “राष्ट्रीय एकता का अर्थ है-देश के विभिन्न राज्यों के व्यक्तियों की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तथा भाषा-विषयक विभिन्नताओं को वांछनीय सीमा के अंतर्गत रखना और उनमें भारत की एकता का समावेश करना।”

("National integration means bringing about economic, social, cultural and linguistic differences among the people of various states in the country within tolerable range and imparting to the people a feeling of the oneness of India." - **Dr. J.S. Bedi**)

3. **एम.के. मूर्ति के अनुसार-** “राष्ट्रीय एकता का अभिप्राय है देश के नागरिकों में एकता का भाव होना, यह कुछ नहीं है वरन् विभिन्नता में एकता स्थापित करना है। इसमें राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं संवेगात्मक एकता को सम्मिलित किया जाता है।”

("National integration means the feeling of oneness among all the people of the nation. It is nothing but achievement of unity in diversity, it includes political, economic, social, cultural and emotional integration." - **S.K. Murty**)

12.4.2 भारत में राष्ट्रियता के मार्ग में बाधाएं (Obstacles in the way of Nationality in india)

भारत में राष्ट्रियता का समुचित विकास नहीं हो रहा है। राष्ट्रियता के विकास के मार्ग में कई कठिनाईयाँ हैं। यहां पर हम केवल चार मुख्य बाधाओं की ओर संकेत करेंगे:-

1. **क्षेत्रीयता (Regionalism)** - भारत बहुत विशाल देश है। इसमें इस समय अनेक राज्य और कई केन्द्र-शासित क्षेत्र हैं। व्यक्ति को अपना क्षेत्र बहुत रूचिकर प्रतीत होता है। जहां पर उसने जन्म लिया है, जिस स्थान की मिट्टी में वह पका है, उसके प्रति प्रेम होना स्वाभाविक है। यहां तक तो ठीक है, किन्तु कुछ व्यक्ति इससे कई कदम आगे बढ़ जाते हैं। उनकी समझ में केवल उनका ही क्षेत्र सबसे अच्छा है। दूसरा क्षेत्र निकृष्ट है। वे अपने क्षेत्र के हितों को पूरे देश के हित के सामने भी नहीं त्यागते। यहां पर कठिनाई उत्पन्न हो जाती है और राष्ट्रियता का विकास नहीं हो पाता।

2. जातीयता (Castisem)- भारत में अनेक जातियाँ हैं। प्राचीन काल से व्यावसायिक दृष्टिकोण से भारतीय समाज को चार वर्गों में बाँटा गया था। अब वर्ग तो रहा नहीं। हाँ, वर्ग के नाम पर जन्म से निर्धारित जाति, उपजाति और उपजाति की उपजाति रह गयी है। हम कभी-कभी अपनी जाति के प्रति इतना प्रेम दिखाते हैं कि नियुक्ति, पदोन्नति आदि के समय केवल अपनी जाति के व्यक्ति का ही ध्यान रखते हैं। बड़ी-बड़ी जगहों पर भी ऐसा सुनायी पड़ जाता है। जहाँ पर जाति के प्रति भक्ति है वहाँ तो देश-भक्ति भी नहीं पनपेगी, तब राष्ट्रियता का विकास कैसे संभव है ?
3. साम्प्रदायिकता (Communalism) - भारत में विभिन्न सम्प्रदाय हैं। यहाँ पर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सम्प्रदाय के लोग रहते हैं। हिन्दुओं में भी सिख, जैन, बौद्ध, कबीरपंथ, गोरखपंथ, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, सनातन धर्म आदि सम्प्रदाय हैं। यदि हम किसी सम्प्रदाय विशेष में आस्था रखते हैं तो अच्छा है, लेकिन इस सम्प्रदाय के जोश में दूसरे सम्प्रदायों को हेय, काफिर एवं निकृष्ट समझना ठीक नहीं है। सामाजिक संबंधों में एवं लाभ के पदों पर हमें राष्ट्रियता के आधार पर कार्य करना चाहिए, न कि साम्प्रदायिकता के आधार पर।
4. भाषावाद (Linguism) - भारत में अनेक भाषाएँ हैं। चौदह भाषाओं का उल्लेख संविधान ने किया है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी भी है। हिन्दी जैसी भाषा की अनेक उपभाषाएँ या बोलियाँ भी हैं। हम मातृभाषा बोलते हैं। मातृभाषा से प्रेम होना स्वाभाविक है। किन्तु पूरे राष्ट्र के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना आवश्यक है तभी राष्ट्रियता का समुचित विकास होगा। कभी-कभी हम अपनी मातृभाषा के प्रेम में आकर अन्य भाषाओं की निन्दा करते हैं और राष्ट्रभाषा के विकास के मार्ग में बाधा उपस्थित करते हैं।

अपनी उन्नति जानिए

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

- 5 देश में एकता की स्थापना करने के उत्तरदायित्व से.....अपना मुँह नहीं मोड़ सकती।
(अ) क्षेत्रीयता (ब) राष्ट्रियता (स) शिक्षा (द) अशिक्षा
- 6 राष्ट्रिय एकता की भावना वास्तव में इस ओर इंगित करती है कि व्यक्ति राष्ट्र के लिए, राष्ट्रके लिए नहीं।
(अ) समाज (ब) व्यक्ति (स) जीव जन्तु (द) सैनिकों

भाग-तीन (PART-III)

12.5 राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति हेतु शैक्षिक कार्यक्रम (Educational programmes for achieving National Integration)

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतवर्ष में क्षेत्रीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता एवं भाषावाद की कठिनाईयाँ विद्यमान हैं। राष्ट्रीयता का विकास तभी संभव है, जब हम इन कठिनाईयों पर विजय पाएं। राष्ट्रीयता का विकास करना शिक्षा का आवश्यक कार्य है। विद्यालयों में हम कुछ ऐसे कार्य कर सकते हैं, जिनमें राष्ट्रगान को प्रोत्साहन मिल सके। आगे इन कार्यों की ओर संकेत किया जा रहा है:-

1. प्रतिदिन विद्यालय का कार्य प्रारम्भ होने से पहले 'राष्ट्रगान' गाया जाय।
2. राष्ट्रीय पर्वों यथा 'स्वतंत्रता दिवस' एवं 'गणतंत्र दिवस' को धूमधाम से मनाया जाय।
3. जिन महापुरुषों ने राष्ट्रीय एकता के लिए कार्य किया है, उनके जन्मदिन पर समारोह किये जाएं।
4. शिक्षक एवं शिक्षार्थी अपने दैनिक जीवन में राष्ट्रभाषा का अधिकाधिक उपयोग करें।
5. यदा-कदा राष्ट्रीय महत्व के व्यक्तियों से राष्ट्रीयता पर व्याख्यान करवाये जाएं।
6. छात्रों को भारतीय इतिहास एवं भारतीय संस्कृति से परिचित कराया जाए।
7. विद्यालय में जाति, सम्प्रदाय, एवं क्षेत्र के आधार पर पक्षपात न किया जाए। प्रवेश, कक्षोन्नति आदि के समय निष्पक्षता बरती जाए।
8. वर्ष में एक या दो बार छात्रों के सहभोज का आयोजन करना जिसमें सभी जाति एवं सम्प्रदाय के छात्र आपस में मिल-जुलकर खानपान कर सकें।
9. 9. राष्ट्रीय ध्वज के महत्व को बताना। उसके फहराने के अवसर पर पालन किये जाने वाले नियमों से अवगत करना।
10. देश की बुराईयों से परिचित कराकर उन्हें दूर करने के लिए छात्रों को प्रोत्साहित करना।
11. राष्ट्रीय चिन्ह, राष्ट्रीय पुष्प (कमल), राष्ट्रीय पक्षी (मयूर) के प्रति छात्रों में सम्मान की भावना उत्पन्न करना।

इस प्रकार हम चाहें तो विद्यालय में राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन दे सकते हैं।

अपनी उन्नति जानिए

प्र. 7 प्राचीन काल में भारतीय समाज को कितने भागों में बांटा गया है ?

प्र. 8 भारतीय संस्कृति की दो विशेषताएँ लिखिए।

12.6 सारांश

प्राचीन भारत में राष्ट्रीयता का व्यापक रूप था। यहां पर किसी क्षेत्र विशेष के प्रति अन्ध-भक्ति का प्रचलन नहीं था। पूरे देश के प्रति प्रेम था और पूरे देश के लिए सुख व शान्ति की कामना की जाती थी। मध्यकाल में भारत ने कई उतार-चढ़ाव देखे। एक प्रकार से यह भारत की निद्रा का काल था। राष्ट्रीयता मृतप्राय थी। राष्ट्र के प्रति प्रेम नाममात्र को भी न रहा। अंग्रेजों के शासनकाल में कुछ चेतना आई। पहले तो केवल लन्दन के प्रति ही भक्ति जागृत हुई किन्तु धीरे-धीरे लोगों में राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ। कुछ व्यक्तियों ने जन-साधारण को जागृत करने का संकल्प लिया। भारत ने अंगड़ाई ली और परतंत्रता की बेड़ी को उतार फेंका। स्वतंत्रता आयी, अनेक वर्ष पूरे हुए किन्तु जन-साधारण में राष्ट्रीयता का विकास अभी भी होना शेष है। राष्ट्र के कर्णधारों ने स्वतंत्रता के लगभग पन्द्रह वर्ष बाद सोचा कि भारत ने अभी भी राष्ट्रीयता का पाठ नहीं पढ़ा। अभी भी लोग छोटे-छोटे स्वार्थों में लगे हुए थे। राष्ट्रीय एकता की समिति बनायी गयी। चारों ओर भाषण हुए, नारे लगे, किन्तु हम जहाँ थे वहाँ से बड़ी मन्द गति से आगे बढ़े।

इकबाल ने लिखा है-“मजहम नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना।” बैर होना भी नहीं चाहिए। क्योंकि राम-रहीम और ईश्वर-खुदा एक ही है। जब एक ही है तो उनके बन्दे क्यों अलग-अलग राग अलापने लगे।

राष्ट्रीय एकता की पताका दूर-दूर तक फहराने में बुद्धिजीवियों का भी बहुत बड़ा योगदान रहा। उर्दू, फारसी, पश्तो, गुरुमुखी, प्रान्तीय भाषाओं और हिन्दी के माध्यम से न जाने कितनी पुस्तकें, कितनी हस्तलिखित पाण्डुलिपियों, कसीदे और शिलालेख हमारे खजाने में हैं। कवि, लेखक, इतिहासकार और वास्तुशिल्पी तथा चित्रकार-कलाकार तो यों भी सभी के होते हैं। इनकी कोई भी अलग जाति हो सकती है, ये लोग नहीं मानते। देश, समाज और काल ही इनकी पूरी पहचान होती है और इनका लेखन तथा कलम-अभिव्यक्ति ही कर्मक्षेत्र होता है। सब इनके होते हैं, ये सभी के होते हैं। चाहे ये लोग किसी भी प्रान्त, जलवायु के क्यों न हों। हमारी आजादी की लड़ाई में इनके लेखन ने वह काम किया जो लाखों-हजारों अन्य उपाय भी नहीं कर सकते। यहां प्रान्त, भाषा कोई दीवार खड़ी नहीं कर पाती।

12.7 शब्दावली

साम्प्रदायिकता (Communalism) - भारत में विभिन्न सम्प्रदाय है। यहां पर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सम्प्रदाय के लोग रहते हैं। हिन्दुओं में भी सिख, जैन, बौद्ध, कबीरपंथ, गोरखपंथ, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, सनातन धर्म आदि सम्प्रदाय हैं। यदि हम किसी सम्प्रदाय विशेष में आस्था रखते हैं तो अच्छा है, लेकिन इस सम्प्रदाय के जोश में दूसरे सम्प्रदायों को हेय, काफिर एवं निकृष्ट

समझना ठीक नहीं है। सामाजिक संबंधों में एवं लाभ के पदों पर हमें राष्ट्रीयता के आधार पर कार्य करना चाहिए, न कि साम्प्रदायिकता के आधार पर।

भाषावाद (Linguism) - भारत में अनेक भाषाएं हैं। चौदह भाषाओं का उल्लेख संविधान ने किया है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी भी है। हिन्दी जैसी भाषा की अने उपभाषाएं या बोलियां भी हैं। हम मातृभाषा बोलते हैं। मातृभाषा से प्रेम होना स्वाभाविक है। किन्तु पूरे राष्ट्र के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना आवश्यक है।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग-एक (PART-I)

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. सत्य

भाग-दो (PART-II)

5. शिक्षा
6. व्यक्ति

भाग-तीन (PART-III)

7. चार भागों में
8. अनेकता में एकता, प्राचीनता

12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मित्रल एम.एल (2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक इन्टरनेशनल पब्लिकेशन हाउस:मेरठा।
2. सक्सेना (डा.) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, साहित्य प्रकाशन: आगरा।
3. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
4. एलैक्स (डा.) शीलू मैरी (2008) शिक्षा के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य रजत प्रकाश: नई दिल्ली।

12.10 उपयोगी/ सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डेय रामशकल (2008), उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल पब्लिकेशन: आगरा।
 2. सक्सेना डा. सरोज शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, साहित्य प्रकाशन: आगरा।
 3. कुमार आनन्द सामाजिक विचारों का अध्ययन, विमल प्रकाशन मंदिर: आगरा।
 4. वर्मा ओम प्रकाशन व कुलश्रेष्ठ पीयूष कान्त, धर्म का समाजशास्त्र, पूजा ऑफसेट प्रिन्टर्स: आगरा।
 5. शोध पत्रिका, इन्टरनेट।
-

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय एकता के अर्थ की विवेचना कीजिए।
2. राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता का वर्णन कीजिए।
3. राष्ट्रीय एकता में शिक्षा की भूमिका बताइये।
4. क्षेत्रवाद से आप क्या समझते हैं ? क्षेत्रवाद को रोकने हेतु क्या उपाय किये जा सकते हैं ? वर्णन करें।
5. क्षेत्रवाद के क्या कारण है ? क्षेत्रवाद की भावना से लोगों को कैसे ऊपर उठाया जा सकता है?

इकाई-13 शिक्षा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय एकता में संवर्धन (Enhancement of International Integration Through Education)

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

भाग-एक

13.3 अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का अर्थ व परिभाषाएं

13.3.1 अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की आवश्यकता

भाग-दो

13.4 यूनेस्को के कार्य

भाग-तीन

13.5 शिक्षा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास

13.5.1 अन्तर्राष्ट्रीय एकता बनाने में अध्यापक की भूमिका

अपनी उन्नति जानिए

13.6 सारांश

13.7 शब्दावली

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

13.11 लघु उत्तरीय प्रश्न

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

अन्तर्राष्ट्रीय एकता के लिए शिक्षा का प्रारम्भ 20वीं शताब्दी में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुआ। इसका प्रमुख प्रवर्तक पियरे ड्यूबियस (Pierre Dubious) को माना जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय एकता

के लिए शिक्षा वह साधन बन जाती है जो अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव व सहयोग को विकसित करने में अपना योगदान देती है। आज के युग में प्रत्येक राष्ट्र एक-दूसरे के सहयोग का आकांक्षी है। आज विश्व एक-दूसरे से इतना समीप आ गया है कि उसके राष्ट्रों के बीच में एकता का भाव होना अति आवश्यक है। वास्तव में जब व्यक्ति अपने आपको राष्ट्रीयता की परिधि से हटा देता है तो वह सम्पूर्ण मानव जाति के साथ एकीकरण स्थापित करने लगता है, तब उसके अन्दर अंतर्राष्ट्रीय सूझ-बूझ उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति विश्व-बन्धुत्व व विश्व शान्ति की कल्पना करने लगता है। भारतवर्ष की संस्कृति तो सदैव ही विश्व बन्धुत्व या वसुधैव कुटुम्बकम् की रही है। यहां के हर मनीषी ने इस विचार का कठोर समर्थन किया है कि वसुधा पर रहने वाला हर प्राणी ईश्वर की संतान है। इस कारण हमें उसके साथ भ्रातृत्व का भाव रखना चाहिए। हमें अपने आपको संकीर्णता से युक्त राष्ट्रवादी विचारों से ऊपर उठाना चाहिए व स्वयं को सम्पूर्ण विश्व के नागरिक के रूप में देखना चाहिए। हमारा हर प्रयास विश्व में शान्ति तथा भाईचारे को बनाने की दिशा की ओर उन्मुख होना चाहिए व पूरा प्रयास यह होना चाहिए कि हम विश्व में अशान्ति फैलाने वाले तत्वों से दूर रहें।

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

1. अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का अर्थ व परिभाषाओं को समझ सकेंगे।
2. आज के समय में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना को समझ सकेंगे।
3. अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना हेतु यूनेस्को के कार्य को समझ सकेंगे।
4. शिक्षा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास कैसे किया जा सकता है, यह जान सकेंगे।
5. अन्तर्राष्ट्रीय एकता की भावना में अध्यापक की भूमिका को समझ सकेंगे।

भाग-एक (PART- I)

13.3 अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का अर्थ व परिभाषाएं (Meaning and definition of International Understanding)

1. सफाया व सईदा के अनुसार-“अन्तर्राष्ट्रीय एकता वह सूचित चेतना है जो विश्व समाज में एक राष्ट्र का अस्तित्व बनाये रखती है तथा एक राष्ट्र यदि अपना अस्तित्व कायम रखना चाहता है तो उसे विश्व समाज में शान्ति बनाये रखने का प्रयत्न करना होगा तथा युद्धों से बचना होगा।”
("International Understanding may be defined as informed consciousness of the place of one's own nation in the world society and the contribution that

it can make world society whose survival depends upon maintenance of peace and relief from wars." - **Safaya Shaida**)

2. गोल्डस्मिथ के अनुसार-“अन्तर्राष्ट्रीयता एक भावना है, जो व्यक्ति को बताती है कि वह अपने राज्य का ही सदस्य नहीं है वरन् विश्व का नागरिक भी है।”

("Inaternationalism is a feeling that the individual is not only a member of his state, but a citizen of the world." - **Goldsmith**)

3. डॉ. डब्ल्यू.एच.सी. लेव्ज के अनुसार-“अन्तर्राष्ट्रीय भावना इस ओर ध्यान दिये बिना कि व्यक्ति किस राष्ट्रीयता या संस्कृति के हैं, एक-दूसरे के प्रति सब जगह उनके व्यवहार का आलोचनात्मक और निष्पक्ष रूप से निरीक्षण करने और आँकने की योग्यता है।”

("International Understanding is the ability to observe cirically and objectively and appraise the conduct of men everywhere to each other irrespective of the nationality or culture to which they belong ." - **Dr. W.H. C. Laves**)

C. Laves)

13.3.1 अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की आवश्यकता (Need of International Understanding)

जब हम व्यक्ति को प्रारम्भ से ही यह सिखाते हैं कि अपने देश से प्रेम करो व अपने देश को महान समझो तो हम बालक के अंदर संकीर्ण दृष्टिकोण उत्पन्न कर देते हैं और यह संकुचित राष्ट्रवादी विचारधारा ही विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के मध्य संघर्षमयी परिस्थितियां उत्पन्न करती है। इसी कारण पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा है:- “पृथकता का अर्थ पिछड़ापन और पतन। दुनिया बदल गई है और पुराने खत्म होने जा रहे हैं और जीवन अंतर्राष्ट्रीय होता जा रहा है। हमें इस भावी अंतर्राष्ट्रीयता में अपनी भूमिका अदा करनी है।”

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा को समाप्त करें, जिससे हम सम्पूर्ण मानव जाति के बीच में मधुर संबंध स्थापित कर सकें। यदि वास्तव में हम युद्ध की राजनीति से दूर रहना चाहते हैं तथा व्यक्तियों के मध्य सहयोग, सहनशीलता, समायोजन व प्रेम को विकसित करना चाहते हैं तो हमें अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव को जागृत करना होगा। इस समबंध में रोमैन रालैण्ड ने ठीक ही कहा है - “दो महायुद्धों के दुष्परिणामों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मलिन व उत्तेजक राष्ट्रीयता का भाव समाप्त किया जाना चाहिए और मानवता का भाव स्थापित किया जाना चाहिए तथा मनुष्य में प्रेम व सहानुभूति का भाव उत्पन्न किया जाना चाहिए।

विश्व के सभी राष्ट्रों को समीप लाना वर्तमान वैज्ञानिक तकनीकी युग की एक आवश्यकता भी है। आज आवागमन व संचार के साधनों ने विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के मध्य की दूरी को समाप्त कर दिया है। आज के युग में कोई भी राष्ट्र स्वयं में आत्मनिर्भर नहीं है। सभी राष्ट्र आर्थिक, राजनैतिक व

सांस्कृतिक आवश्यकताओं के लिए एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। किसी भी देश में यदि कोई संकट आता है तो हम चिन्तित हो उठते हैं। चाहे वह राजनैतिक संकट हो या आर्थिक। हम आज इस बात की आवश्यकता भी अनुभव करते हैं कि विश्व में जो विनाशकारी यंत्र है, उनका प्रयोग मानव के विनाश के लिए न होकर मानव के कल्याण एवं विकास के लिए होना चाहिए। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर विश्व के हर राष्ट्र ने यह सोचा कि आपस में मिल-जुलकर रहना चाहिए व इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर जो कार्यवाही की गई, अब हम उसकी चर्चा करेंगे।

भाग-दो (PART- II)

13.4 यूनेस्को के कार्य (Function of UNESCO)

1. विभिन्न राष्ट्रों में व्याप्त भय को दूर करना व उन्हें एक-दूसरे का ज्ञान कराना जिससे वह विश्वास करके निकट आ सकें।
2. पिछड़े देशों से अज्ञानता और निरक्षरता को दूर करने का भरसक प्रयास करना।
3. विभिन्न देशों की संस्कृति, कला, विज्ञान व साहित्य को एक-दूसरे के समीप लाना, जिससे वह सब लाभान्वित हो सकें।
4. शोध छात्रों को वित्तीय सहायता देना, जिससे वह अधिक से अधिक शोध कार्य कर सकें।
5. विभिन्न देशों के विचारकों, अध्यापकों, वैज्ञानिकों व दार्शनिकों को एक-दूसरे से विचार-विमर्श करने के अवसर देना, जिससे वह समस्याओं का हल ढूँढ सकें।
6. गरीब व पिछड़े हुये देशों में स्कूल खोलने हेतु वित्तीय सहायता देना।
7. अन्तर्राष्ट्रीय कला एवं साहित्य की प्रदर्शनी द्वारा एकता के संकेतों को समझाया जाता है व सद्भावना और एकता के सूत्र में बाँधा जाता है।
8. अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटनों का प्रबंध करना जिससे विश्व के विभिन्न भागों के विद्यार्थियों में अच्छे संबंध स्थापित किये जा सकें।
9. भाई-चारे व 'हम' भावना का प्रसार दूरदर्शन या अन्य सामग्रियों के माध्यम से करना।
10. विश्व इतिहास द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की सुरक्षा करना सिखाना।
11. पाठ्यक्रम में विज्ञान के अध्ययन को प्रमुख स्थान देना।

भाग-तीन (PART-III)

13.5 शिक्षा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास (Development of International Understanding through Education)

यूनेस्को ने अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा के संबंध में विद्यालयों में सामाजिक विज्ञान को माध्यम बनाते हुए निम्न दस सिद्धान्त प्रस्तुत किये:-

1. सामाजिक अध्ययन द्वारा छात्रों को नागरिकता का प्रशिक्षण दिया जाएगा व कक्षा, विद्यालय तथा समाज ही इस शिक्षण को देने हेतु प्रयोगशाला का रूप लेगी।
2. यह विषय छात्रों को विश्व के प्रमुख अंगों के बारे में जानकारी देगा।
3. छात्रों के अंदर आवश्यक मनोवृत्तियों व कौशलों का विकास करना।
4. वर्तमान में विश्व की सभी समस्याओं में रूचि लेने हेतु छात्रों को प्रेरित करना।
5. छात्रों की तर्क, निर्णय व आलोचनात्मक शक्ति का विकास करना।
6. भूगोल के अध्ययन द्वारा छात्रों को प्राकृतिक सम्पदा का ज्ञान कराना व ख़ाद्य समस्या की उन्हें जानकारी देना।
7. विभिन्न धर्म, जाति, संस्कृति के आधार पर तथा आर्थिक आधार पर पाये जाने वाली विभिन्नता को दूर करना।
8. एक समुदाय का दूसरे समुदाय से संबंध बताना।
9. छात्रों को विभिन्न भाषा सिखाने हेतु प्रेरित करना।
10. मानव के व्यक्तित्व के समुचित विकास पर बल देने हेतु उपयुक्त मानवीय संबंधों को स्थापित किया जाए।
11. सामाजिक घटनाओं, तनावों व सहयोग पर विशेष ध्यान दिया जाए।

यूनेस्को के इन सिद्धान्तों की चर्चा करने के पश्चात् अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि विद्यालय में चलने वाले सामान्य कार्यक्रम में हम क्या परिवर्तन करें, जिससे हम छात्रों के अंदर अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव को उत्पन्न कर सकें। इसके लिए हमें जो मुख्य परिवर्तन करने होंगे, वे निम्न प्रकार हैं:-सामान्य कार्यक्रमों में परिवर्तन

1. शिक्षा के उद्देश्यों में परिवर्तन
2. शिक्षण विधियों में परिवर्तन
3. पाठ्यक्रम में परिवर्तन
4. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का आयोजन

1. शिक्षा के उद्देश्यों में परिवर्तन (Change in the aims of education)

अन्तर्राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए हमें विद्यालय के वातावरण पर विशेष रूप से ध्यान देना होगा। आज विद्यालय जो राजनीति व संकुचित राष्ट्रीयता के विकास का एक केन्द्र बनते जा रहे हैं, उनके उद्देश्यों में हमें प्रारम्भ से ही ध्यान देना होगा। जिन बातों को अपनाया जाना इस भावना के विकास हेतु अनिवार्य है, वह इस प्रकार हैं:-

1. छात्रों में स्वतंत्र विचार करने की क्षमता उत्पन्न करना (To develop the capacity for free thinking) :- शिक्षा के लिए यह अनिवार्य है कि वह बालक को यह क्षमता प्रदान करे कि वह अपने विचारों को अथवा अपनी राय को अन्य व्यक्तियों के समक्ष स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सके। दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति यह है कि व्यक्ति पढ़-लिखकर भी दूसरों के दबाव में आ जाता है व उन्हीं प्रभाव से अपने विचारों की अभिव्यक्ति करने लगता है, यह गलत है। आपके अन्दर इतनी सूझबूझ होना अनिवार्य है कि आप अपनी एक विचारधारा बना सकें। इसी का विकास शिक्षा द्वारा किया जाना चाहिए।
2. ज्ञान का व्यवहारिक प्रयोग करने की क्षमता (ability to use knowledge in practical form) :- हम जानते तो बहुत कुछ है, परन्तु क्या उन सबका हम व्यवहारिक प्रयोग कर रहे हैं ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। जैसे हम सभी जानते हैं कि हमें ईमानदार, निष्पक्ष, सत्यवादी होना चाहिए, पर क्या हम यह सब गुण व्यवहारिक रूप में प्रयोग करते हैं ? इस कारण आज आवश्यकता इस बात की भी है कि ज्ञान सिर्फ सैद्धान्तिक धरातल तक ही सीमित न रह जाये वरन् उसका व्यवहारिक प्रयोग भी किया जा सके।
3. विश्वबंधुत्व व विश्व नागरिकता की भावना का विकास (development of the feeling of world citizenship):- शिक्षा के द्वारा हमें इस विचारधारा की भी पूर्ण व्याख्या करनी होगी कि बालक स्वयं को यह न समझे कि मैं भारत का हूँ, मैं पाकिस्तान का हूँ बल्कि उसके अंदर यह दृष्टिकोण पैदा करना है कि वह संपूर्ण विश्व समुदाय का एक अभिन्न अंग है। यह भाव यदि हमने छात्रों के अंदर उत्पन्न कर दिया तो विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में समायोजन व सामंजस्य के भाव को उत्पन्न किया जा सकता है और यह भाव विश्व शान्ति बनाये रखने में अपनी सक्रिय भूमिका अदा करेगा।
4. पारस्परिक निर्भरता की भावना का विकास (Development of the feeling of interdependent) :- यदि हम अपने व्यक्तिगत जीवन को ही लें तो हमें इस जीवन को सुसंचालित करने में अपने लोगों का योगदान दिखाई देगा। यह बात एक राष्ट्र के स्तर पर भी लागू होती है। कोई भी राष्ट्र अपनी सभी आवश्यकताओं को स्वयं ही पूर्ण नहीं कर सकता। उसे कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दूसरे राष्ट्रों के सहयोग की आवश्यकता होती है। यह बात यदि सभी के समझ में आ जाये तो सभी देश एक-दूसरे के साथ अच्छे संबंध बनाये रखने का प्रयास करेंगे।
5. मानव जाति को समान विरासत का ज्ञान कराना (To give the knowledge about the common heritage of mankind):- मानव जाति के उद्गम का इतिहास पढ़ाते समय छात्रों के

अंदर यह भाव जागृत करना होगा कि हम सब उत्पत्ति की दृष्टि से समान हैं। अतः हमें एक-दूसरे के साथ प्रेम व भ्रातृत्व की भावना के साथ रहना चाहिए।

6. स्वस्थ सामाजिक अभिवृत्ति, दृष्टिकोण व सामाजिक अन्तःक्रिया की भावना का विकास करना। (Inculcating healthy social attitudes, outlooks and modes of social interaction in children.)
7. परम्पराओं, रीति-रिवाज व जीवनयापन के तरीकों में अंतर के कारण को समझना। (Improving the understanding of underlying reasons that are responsible for different traditions, customs and ways of life.)
8. व्यक्तिगत व राष्ट्रीय जीवन से भय को दूर करना। (Elimination of fear from individual and social life.)
9. व्यक्तिगत व सामाजिक चेतना विकसित करना। (To improve individual and social consciousness.)

II शिक्षण विधियों में परिवर्तन (Change in teaching methods)

1. शिक्षण विधि का व्यवहारिक होना आवश्यक है। जहां तक संभव हो, अध्यापक को छात्र को “करके सीखने” (Learning by doing) के लिए प्रेरित करना चाहिए।
2. वैज्ञानिक विधि का अध्यापक को अनुपालन करना चाहिए, जिससे छात्रों में वस्तुनिष्ठता, तर्क, चिन्तन व सूझबूझ की शक्ति का समुचित विकास हो सके।

III पाठ्यक्रम में परिवर्तन (Change in syllabus)

1. पाठ्यक्रम में हमें जो परिवर्तन लाना होगा, उसमें प्रमुख है कि पाठ्यक्रम में विश्व के प्रमुख धर्मों के आदर्श, रहन-सहन व व्यवहार के तरीकों का अध्ययन छात्रों को कराना होगा।
2. अंतर्राष्ट्रीय कल्याण के कार्यक्रमों का पुनर्निरीक्षण करना, जिससे सभी राष्ट्रों का विकास हो सके।
3. यूनेस्को के सुझावों के अनुरूप पाठ्यक्रम में सामाजिक अध्ययन विषय को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाएगा।
4. साहित्य, कला व संगीत को इस रूप में पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जायेगा, जिससे छात्र सिर्फ अपने देश के बारे में ही ज्ञान प्राप्त न करें, वरन् विश्व के अन्य देशों के भी साहित्य, कला व संगीत का ज्ञान कर सकें। पाठ्यक्रम में जो भी विषय सम्मिलित किया जाए, उसका उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय भावना का विकास करना होना चाहिए। अब हमें विभिन्न विषयों का अध्ययन किस प्रकार कराया जाना चाहिए, इसकी चर्चा करेंगे:-

(अ) साहित्य (Literature) - साहित्य का अध्ययन कराते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए -

1. इसके द्वारा छात्रों में मानवीय दृष्टिकोण को उत्पन्न करना चाहिए।
2. साहित्य को प्रकृति से संबंधित करके पढाया जाना चाहिए।
3. इसके द्वारा विश्व मूल्यों का ज्ञान कराया जाए।
4. यह मानवीय संबंधों का वास्तविक अर्थ बताने में सहयोग दे।
5. मानव जीवन के विभिन्न अनुभवों, जैसे-सुख-दुःख, सफलता-असफलता आदि का ज्ञान छात्रों को कराया जाये।

हमें साहित्य का अध्ययन कराते समय यह नहीं सोचना चाहिए कि यह हमारे देश का साहित्य है, जो अच्छा होगा व दूसरे देश का है तो खराब होगा। साहित्य में अन्तर्निहित भावनाएं सबके ऊपर एक-सा प्रभाव डालती हैं। हँसी का साहित्य सभी को हँसायेगा व दुःख का साहित्य सभी को उद्वेलित करेगा। इस कारण हमें सत्-साहित्य का अध्ययन छात्र को कराना चाहिए।

(ब) कला (Art) -

1. अंतर्राष्ट्रीय भावना का विकास करने में कला का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। कोई भी कला अभाषीय होती है। अतः उसे समझना आसान होता है। चंकि उसे समझने हेतु भाषा की आवश्यकता नहीं होती है।
2. यह विश्व के विभिन्न देशों के नागरिकों की सृजनात्मक शक्ति की अभिव्यक्ति है।
3. इससे समय व स्थान की दूरी समाप्त की जा सकती है।
4. यह कलाकार की भावनाओं की अभिव्यक्ति है व भावनाएं अंतर्राष्ट्रीय होती है।

(स) इतिहास (History)- पाठ्यक्रम द्वारा यदि हम अंतर्राष्ट्रीय एकता का विकास करना चाहते हैं तो उसमें हमें गणित विषय के अध्ययन को अनिवार्य रूप से सम्मिलित करना होगा। इस संबंध में के.जी. सैय्यदन ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है:-

1. इतिहास का आधार राजनैतिक व सैनिक पक्ष नहीं होना चाहिए वरन् विश्व की सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों को इतिहास के अंदर सम्मिलित करना चाहिए।
2. इसके द्वारा इस बात पर भी प्रकाश डालना चाहिए कि वैज्ञानिक व तकनीकी प्रभाव ने विश्व जन-समुदाय के जीवन को किस स्तर तक प्रभावित किया है।
3. विश्व के विभिन्न देशों की परस्पर निर्भरता का ज्ञान कराना।
4. इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए इतिहास की पाठ्य पुस्तकों को पुनः लिखना।
5. छात्रों में ऐतिहासिक पत्रिकाओं व समाचार-पत्रों को पढ़ने की रूचि जागृत करना।

इतिहास वास्तव में महत्वपूर्ण विषय है। चूंकि अब तक इतिहास के माध्यम से संकुचित राष्ट्रवादी विचारधारा को ही विकसित किया गया है। इस कारण हमें इतिहास को उस रूप में प्रस्तुत करना होगा जो सांस्कृतिक समन्वय कर सके।

(द) भूगोल (**Geography**) - भूगोल का भी हमें व्यापक अध्ययन करना होगा। जिससे वह सम्पूर्ण विश्व को समझने की क्षमता प्रदान कर सके। भूगोल ही इस बात का ज्ञान कराता है कि विश्व के विभिन्न भागों में लोगों का रहन-सहन किस प्रकार का है तथा भौगोलिक परिस्थितियों का उद्योगों, वनस्पति, खान-पान, वेश-भूषा आदि पर क्या प्रभाव पड़ता है। भूगोल में जिन अन्य बातों को सम्मिलित किया जाना चाहिए, वे इस प्रकार हैं -

1. छात्रों को विभिन्न देशों के रहन-सहन व रीति-रिवाज बताना।
2. भौगोलिक परिस्थितियों का मानव-जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका ज्ञान कराना।
3. विभिन्न देशों के संचार साधन, आयात व निर्यात सामग्री, प्राकृतिक सम्पदा, खाद्य सम्पदा आदि का विस्तृत ज्ञान कराना।

(य) नागरिक शास्त्र (**Civics**)-नागरिक शास्त्र के द्वारा छात्रों को निम्नलिखित बातों का ज्ञान देना चाहिए -

1. अधिकारों व कर्तव्यों का ज्ञान
2. विश्व सरकार के प्रति आस्था
3. विश्व नागरिकता हेतु तैयार करना।

(र) विज्ञान (**Science**)-विज्ञान के सामाजिक पक्ष पर अधिक बल दिया जाना चाहिए, जिससे विज्ञान के आविष्कारों का प्रयोग मानव कल्याण के लिए किया जाए, मानव विनाश के लिए नहीं -

1. छात्रों के अंदर यह दृष्टिकोण विकसित करना कि वह विज्ञान की देन को मानव सभ्यता के विकास हेतु प्रयोग करें।
2. छात्रों को विज्ञान का सकारात्मक व रचनात्मक पक्ष बताना।
3. सामाजिक समस्याओं, जैसे-गरीबी, कुपोषण, महामारियों व रूढ़िवादियों को समाप्त करने में विज्ञान का योगदान।

(ल) गणित (**Maths**) -गणित विषय के द्वारा हम यदि अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव उत्पन्न करना चाहते हैं तो हमें छात्रों की तर्क व सूझबूझ शक्ति का निर्माण व विकास करना होगा, जिससे छात्र सही-गलत निर्णय ले सके व उसकी रुचि वस्तुमनिष्ठ हो सके।

IV पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का आयोजन (Organisation of co-curricular activities)

1. छात्रों को विभिन्न देशों से पत्र द्वारा सम्पर्क (Pen-friends) स्थापित करने को प्रेरित करना।
2. अंतर्राष्ट्रीय महत्व के व्यक्तियों का जन्मदिन विद्यालय में मनाना।
3. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खेलकूद प्रतियोगिताओं को आयोजित करना।
4. विज्ञान, कला, साहित्य इत्यादि की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शनी लगाना।
5. महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं पर नाटक आदि आयोजित करना।
6. अंतर्राष्ट्रीय दिवस, यथा-यू.एन.ओ., डब्लू.एच.ओ. विद्यालय में मनाना।
7. अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक भ्रमण आयोजित करना।
8. अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी संघ बनाना।
9. अंतर्राष्ट्रीय एकता को विकसित करने हेतु दूरदर्शन, आकाशवाणी व समाचार-पत्रों का सहयोग लेना।
10. विभिन्न देशों के स्वतंत्रता दिवस विद्यालय में मनाना।
11. अपने शहर में किसी भी देश से आये हुए महान व्यक्ति को विद्यालय में आमंत्रित करना।
12. अंतर्राष्ट्रीय तनाव, विषम परिस्थिति, जैसे-युद्ध, भूकम्प, बाढ़ के समय छात्रों से सहयोग देने की अपील करना।

13.5.1 अंतर्राष्ट्रीय एकता बनाने में अध्यापक की भूमिका(Teacher's role in International Understanding)

अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव को विकसित करने में अध्यापक का महत्वपूर्ण योगदान है। उसके व्यक्तिगत गुण ही इस दिशा में सकारात्मक भूमिका अदा करते हैं। अध्यापक में जिन गुणों का होना अपेक्षित है, वे निम्न हैं:-

1. वह अंतर्राष्ट्रीय भावना के प्रति आस्था रखते हों।
2. तथ्यों की विवेचना करते समय उनका दृष्टिकोण निष्पक्ष व वस्तुनिष्ठ होना चाहिए।
3. अन्य व्यक्तियों के कल्याण का भाव उनमें होना चाहिए।
4. सत्य को स्वीकार करने की भावना।
5. स्पष्ट व स्वतंत्र चिन्तन-उसका चिन्तन पक्षपातपूर्ण नहीं होना चाहिए।
6. व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की भावना का होना।
7. सभी छात्रों से प्रेम व उनके लिए आदर-भाव होना।

अपनी उन्नति जानिए

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

1. आज आवागमन व संचार के साधनों ने विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के मध्यसमाप्त कर दिया है।

2. आज के युग में कोई भी राष्ट्र स्वयं में नहीं है।
3. UNESCO का पूरा नाम है
4. शिक्षण विधि का व्यवहारिक होना आवश्यक है। जहां तक संभव हो अध्यापक द्वारा छात्रों को पर सीखने पर बल दिया जाना चाहिए।
5. विधि का अध्यापक को अनुपालन करना चाहिए, जिससे छात्रों में वस्तुनिष्ठता, तर्क, चिन्तन व सूझ की शक्ति समुचित विकास किया जा सके।

13.6 सारांश

वैसे तो यह विचारधारा बहुत पहले पियरे डुबियस ने दी थी, परन्तु इसका नियमित विकास 19वीं शताब्दी में हुआ। 1912 में हेग में एक सम्मेलन हुआ व उस पर प्रकाश डाला गया, लेकिन सम्मेलन असफल ही रहा। तत्पश्चात् प्रथम विश्वयुद्ध के बाद श्रीमती एण्ड्रूज ने अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा विभाग को राष्ट्रीय संघ में मिलाने का प्रयास किया और दुर्भाग्यवश यह प्रयास भी असफल रहा। चूंकि उस समय हिटलर व नाजी का जोर अधिक था। इस कारण राष्ट्रवादी विचारधारा ने यह सब दबा दिया। परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के भयंकर परिणामों ने लोगों को आतंकित कर दिया व 1945 में 43 राष्ट्रों ने मिलकर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की। संयुक्त राष्ट्र संघ ने जो सुझाव दिये व जिन सिद्धान्तों का निर्माण किया, वह इस प्रकार है:-

“इस संघ का प्रमुख ध्येय है विश्व में शान्ति बनाये रखना और अंतर्राष्ट्रीय स्थिरता का विकास करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक और शैक्षिक सहयोग (UNESCO) विकसित करेगा।”

यूनेस्को की स्थापना की गई व इसका आधारभूत सिद्धान्त है, “चूंकि युद्ध का प्रारम्भ मानव के मस्तिष्क से होता है इसलिए मनुष्य के दिमाग में शान्ति के प्रति आस्था उत्पन्न करनी है..... इसलिए मनुष्य की यह जिम्मेदारी है कि वह विभिन्न संस्कृतियों में समन्वय स्थापित करे व मनुष्य के दिमाग में न्याय व शान्ति के प्रति आस्था उत्पन्न करे..... वह शक्ति जो सरकार की राजनैतिक व आर्थिक व्यवस्था पर आधारित न हो। चूंकि वह अनन्त नहीं हो सकती, वरन् वह शान्ति जिसमें व्यक्तियों का पूर्ण सहयोग हो व जो मानवता के बौद्धिक व नैतिक आधारों पर टिकी हुई हो.....तभी वह असफल व क्षणिक नहीं होगी।”

13.7 शब्दावली

पारस्परिक निर्भरता की भावना का विकास (Development of the feeling of interdependent):- यदि हम अपने व्यक्तिगत जीवन को ही लें तो हमें इस जीवन को सुसंचालित करने में अपने लोगों का योगदान दिखाई देगा। यह बात एक राष्ट्र के स्तर पर भी लागू होती है। कोई भी राष्ट्र अपनी सभी आवश्यकताओं को स्वयं ही पूर्ण नहीं कर सकता। उसे कुछ आवश्यकताओं

की पूर्ति हेतु दूसरे राष्ट्रों के सहयोग की आवश्यकता होती है। यह बात यदि सभी के समझ में आ जाए तो सभी देश एक-दूसरे के साथ अच्छे संबंध बनाये रखने का प्रयास करेंगे।

मानव जाति को समान विरासत का ज्ञान कराना (To give the knowledge about the common heritage of mankind):- मानव जाति के उद्गम का इतिहास पढ़ते समय छात्रों के अंदर यह भाव जागृत करना होगा कि हम सब उत्पत्ति की दृष्टि से समान हैं। अतः हमें एक-दूसरे के साथ प्रेम व भ्रातृत्व की भावना के साथ रहना चाहिए।

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. दूरी
2. आत्मनिर्भर
3. United Nations Educational Scientific and Cultural Organization
4. करके सीखने पर (Learning by doing)
5. वैज्ञानिक विधि

13.91. संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।

13.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स: नई दिल्ली।

-
5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
 6. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शिक्षा दर्शन , एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स: नई दिल्ली।
-

13.11 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना से आप क्या समझते हैं ? अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की आवश्यकता आज क्यों महसूस कर रहे हैं ? व्याख्या कीजिए।
2. यूनेस्को ने अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना बढ़ाने में क्या योगदान दिया है ? विस्तृत व्याख्या कीजिए।
3. बालक में अंतर्राष्ट्रीय एकता के विकास हेतु आप किन बातों को महत्वपूर्ण समझते हैं ? विवेचना कीजिए।
4. आज के अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शिक्षा शान्ति की स्थापना के लिए क्या कर सकती है ? व्याख्या कीजिए।
5. अंतर्राष्ट्रीय एकता बढ़ाने में अध्यापक की भूमिका का वर्णन कीजिए।

इकाई 14 शिक्षा द्वारा मानव संसाधन विकास, शिक्षा और रोजगार (Education for Human Resource Development, Education and Employment)

- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 उद्देश्य
- 14.3 जनशक्ति नियोजन और शिक्षा
 - 14.3.1 जनशक्ति का उपयोग तथा उच्च शिक्षा
 - 14.3.2 जनशक्ति नियोजन की सीमायें
- 14.4 शैक्षिक नियोजन का अर्थ एवं इसकी आवश्यकता
 - 14.4.1 शैक्षिक नियोजन के सिद्धान्त
- 14.5 रोजगार परक शिक्षा के उद्देश्य
 - 14.5.1 रोजगार परक शिक्षा और शिक्षक
 - 14.5.2 रोजगार परक शिक्षा और शिक्षण विधियाँ
- 14.6 सारांश
- 14.7 शब्दावली
- 14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 14.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें
- 14.11 लघु उत्तरीय प्रश्न

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

कुछ वर्ष पूर्व मानव संसाधन विकास मंत्रालय का नाम शिक्षा मंत्रालय था। यह मंत्रालय शिक्षा के विभिन्न अंगों का काम देखता था। लेकिन बाद में यह माना जाने लगा कि जैसे धन एक पूँजी है, साधन है, उसी प्रकार मानव भी एक पूँजी है, एक साधन है, संसाधन है। इसलिए पूर्व के शिक्षा मंत्रालय का नाम बदलकर मानव संसाधन विकास मंत्रालय कर दिया गया।

पहले शिक्षा का मूल्य स्वयं शिक्षा में ही निहित था। शिक्षा को अनुत्पादक क्रिया माना जाता था। लेकिन देश में जब व्यापक स्तर पर शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने लगा और राज्य को शिक्षा पर अधिक धन खर्च करना पड़ा तो शिक्षा-शास्त्रियों व अर्थ-शास्त्रियों का ध्यान शिक्षा के आर्थिक पक्ष की ओर गया। विद्वान् शिक्षा के अर्थशास्त्र पर चिन्तन करने लगे।

आज ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो व्यक्ति को आत्मनिर्भरता की प्रेरणा दे, उसे परिश्रमी बनाये, उसमें मौलिक चिन्तन की प्रवृत्ति उत्पन्न करे तथा उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करें। व्यक्ति केवल कुछ तथ्यों या सूचनाओं को रटकर अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता। जीवन-निवाह के लिए उसे अपनी क्षमता और योग्यता के अनुकूल कार्य करना पड़ेगा। ऐसा करके न केवल वह स्वावलम्बन के मार्ग पर चलेगा वरन् वह राष्ट्र व समाज का भी कल्याण करेगा। यदि कोई व्यक्ति उत्पादन या निर्माण द्वारा देश के निर्यात में बढ़ोत्तरी करता है तो इससे देश आर्थिक दृष्टि से समृद्ध होगा। बड़े-बड़े कारखाने स्थापित होने से बेरोजगार जनता को रोजगार मिलेगा तथा वस्तुओं की कमी भी नहीं होगी।

जनता को दुःख तब होता है, जब देश में बेरोजगारी होती है, अशिक्षा का अंधकार रहता है, वैज्ञानिक और मौलिक चिन्तन का अभाव होता है तथा आवश्यक वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलतीं। इसलिए शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि व्यक्ति निर्माण-कार्य में संलग्न हो और आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों का लाभ उठाकर उत्पादन में वृद्धि करें। इससे व्यक्ति की क्षमता एवं योग्यता का भी सही उपयोग होगा और राष्ट्र एवं समाज का भी कल्याण होगा।

व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त कर व्यक्ति अपनी आजीविका अर्जित कर सकेगा, वह किसी पर निर्भर नहीं रहेगा। निराशा और कुण्ठा के स्थान पर उसमें आशाओं और उमंगों का संचार होगा। वह एक उत्तम जीवन व्यतीत कर सकेगा। वह अपने अन्तःकरण में कुछ कर सकने का संकल्प जुटा सकेगा। जो व्यक्ति जीवन में कोई संकल्प नहीं ठानता तथा उसकी पूर्ति के लिए सद्प्रयास नहीं करता, कठिन तपस्या नहीं करता, एक प्रकार से उसका जीवन व्यर्थ है। उस व्यक्ति का जीवन उत्तम है जो परिवर्तनशील तथ्यों को आत्मसात् करके सन्तुलित व्यवहार कर सके।

14.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :-

1. मानव संसाधन विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. मानव के विकास हेतु शिक्षा व उच्च शिक्षा का विकास कर सकेंगे।
3. मानवीय विकास की आवश्यकता को पूरा करने हेतु शिक्षा के उपयोग को समझ सकेंगे।
4. रोजगार परक शिक्षा की आवश्यकता के महत्व को समझ सकेंगे।

5. शिक्षा के साथ रोजगार परक शिक्षा के सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

14.3 जनशक्ति नियोजन और शिक्षा (Manpower-planning and Education)

जनशक्ति-नियोजन का अर्थ: एच0एस0 पानेस के शब्दों में, “इस्पात का कारखाना उस समय तक अर्थहीन है, जब तक उसके लिए आवश्यक वैज्ञानिक, इंजीनियर, तकनीशियन, कुशलता प्राप्त श्रमिक, प्रबन्ध आदि का प्रावधान न किया जाये।” स्पष्ट है कि आर्थिक विकास का उत्पादन के मानवीय साधनों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। देश की शिक्षा-प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिससे देश की उत्पादन-आवश्यकता के अनुसार योग्य एवं प्रशिक्षित कार्यकर्ता उपलब्ध हो सकें। भविष्य में देश के आर्थिक विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रों में कितनी मानव-शक्ति की आवश्यकता होगी, शैक्षिक निर्णय इसी तथ्य के अनुरूप होने चाहिए। दीर्घकालीन मानव-शक्ति सम्बन्धी पूर्ण अनुमान तथा नियोजन इसीलिए आवश्यक है।

शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त व्यक्ति किसी उपयुक्त व्यवसाय को अपनाना चाहता है। इसलिए मानव-शक्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण शैक्षिक नियोजन का आवश्यक अंग माना जाता है। दूसरे शब्दों में, शैक्षिक नियोजन हेतु यह जानना आवश्यक है कि सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कौन-कौन से व्यवसायों में रोजगार प्राप्ति के अवसर प्राप्त होंगे और उनके लिए किस स्तर की एवं किस प्रकार की शिक्षा आवश्यक है ? इसी आधार पर शैक्षिक योजना में प्रावधान किया जाना चाहिए तथा शिक्षा के विभिन्न भागों, शाखाओं एवं स्तरों पर व्यय का विभाजन भी उसी आधार पर किया जाना चाहिए।

जनशक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार शैक्षिक नियोजन किया जाता है। जनशक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार शैक्षिक नियोजन के लिए निम्नलिखित निर्णय लेने पड़ते हैं-

1. अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न व्यवसायों के लिए काफी लम्बे समय के लिए अपेक्षित जनशक्ति का पूर्व अनुमान लगाना।
2. विभिन्न व्यवसायों के लिए विभिन्न स्तर और विभिन्न प्रकार की शिक्षा का प्रावधान करना।
3. प्रस्तावित व्यावसायिक शिक्षा के लिए शिक्षा पद्धति में अपेक्षित परिवर्तन करना।

14.3.1 जनशक्ति का उपयोग तथा उच्च शिक्षा (Use of man power and Higher education)

व्यक्ति जब किसी व्यवसाय, रोजगार या उद्योग में लगाये जाने योग्य होते हैं तभी उनकी उपयोगिता होती है। इसके लिए विश्वविद्यालयों द्वारा अपने पाठ्यक्रमों में इस प्रकार के विषय शामिल किये जायें जो छात्रों को रोजगार के नये-नये अवसर प्रदान कर सकें।

14.3.2 जनशक्ति नियोजन की सीमार्ये (Limitations of Manpower Planning)

यद्यपि शिक्षा-पद्धति, रोजगार तथा जनशक्ति नियोजन में पारस्परिक सम्बन्ध है लेकिन इसमें कभी-कभी कुछ कठिनाइयाँ भी आती हैं, जो कि निम्नलिखित हैं -

1. जनशक्ति नियोजन अनेक परिस्थितियों तथा कारकों पर निर्भर होता है। किसी भी एक कारक के बदल जाने से जनशक्ति के पूर्व अनुमान में गलती हो सकती है।
2. जनशक्ति की माँग तथा पूर्ति में असन्तुलन हो सकते हैं। इस असन्तुलन का एक मुख्य कारण यह है कि कुछ राज्य अपनी नीति के अनुसार अपने ही राज्य के मूल नागरिकों को रोजगार प्रदान करते हैं।
3. जब हम यह कहते हैं कि अपेक्षित मात्रा और अपेक्षित किस्म की जनशक्ति का उत्पादन किया जायेगा, तब इसका अर्थ यह नहीं होता कि माँग और पूर्ति में उपयुक्त सन्तुलन स्थापित किया जा सकता है। भारत जैसे विशाल देश में जहाँ आर्थिक, सामाजिक तथा क्षेत्रीय विभिन्नतायें बहुत अधिक हैं, व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों की माँग और उनकी पूर्ति में सन्तुलन नहीं लाया जा सकता।
4. यद्यपि शिक्षा का रोजगार से घनिष्ठ सम्बन्ध है। लेकिन शिक्षा प्रणाली रोजगार के अवसर नहीं बढ़ा सकती। किसी व्यवसाय में कितने लोग लगाये जा सकेंगे, इसका निर्धारण शिक्षा पद्धति नहीं कर सकती, क्योंकि शिक्षा व्यक्ति को सेवा-योग्य बनाती है। अतः कुछ सीमा तक ही वह रोजगार के क्षेत्र बढ़ा सकती है।
5. शिक्षा का उद्देश्य केवल जनशक्ति का उत्पादन ही नहीं है वरन् शिक्षा के अन्य बहुत से महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं।

ये सब कठिनाइयाँ होने के बावजूद भी हम कह सकते हैं कि मानव-शक्ति और आर्थिक विकास में सुन्दर सम्बन्ध है। विभिन्न देशों के आर्थिक विकास में शिक्षा का प्रमुख हाथ रहा है।

14.4 शैक्षिक नियोजन का अर्थ एवं इसकी आवश्यकता (Meaning and Need of Education Planning)

शिक्षा द्वारा व्यक्ति का न केवल सामाजिक व सांस्कृतिक विकास होता है, वरन् वह आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी भी बनता है तथा राष्ट्रीय उत्पादन एवं समृद्धि के विकास में सहायक भी सिद्ध होता है। शैक्षिक नियोजन के द्वारा, वस्तुतः व्यक्ति के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के मध्य सामन्जस्य स्थापित किया जाता है। दूसरे शब्दों में, देश की परम्परा एवं संस्कृति की रक्षा करते हुये सामाजिक तथा प्राविधिक नेतृत्व तथा अपेक्षित जनशक्ति उत्पन्न करना शैक्षिक नियोजन का मुख्य दायित्व है। शैक्षिक नियोजन के द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए शिक्षा-विकास की एक यथार्थवादी रूप-रेखा प्रस्तुत की जा सकती है। स्पष्ट है कि शैक्षिक नियोजन एक संयोजन शक्ति के रूप में शिक्षा-प्रणाली

के विभिन्न अंगों के विकास को समायोजित करता है तथा राष्ट्रीय विकास-योजना की पृष्ठभूमि में दीर्घकालीन उद्देश्यों की प्राप्ति निश्चित करता है।

14.4.1 शैक्षिक नियोजन के सिद्धान्त (Principles of Education Planning)

शैक्षिक नियोजन के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं -

1. शैक्षिक नियोजन शैक्षिक उद्देश्यों पर आधारित होना चाहिए (Educational Planning should be based on Education Aims and Objectives) - शिक्षा के उद्देश्य एक ओर तो व्यक्ति के आन्तरिक विकास से सम्बन्धित होते हैं तो दूसरी ओर उनका सम्बन्ध राष्ट्र के आर्थिक एवं सामाजिक विकास से होता है। इनमें से कुछ उद्देश्य स्थायी एवं दीर्घकालीन तथा कुछ अल्पकालीन होते हैं, लेकिन ये सभी परस्पर आश्रित होते हैं। शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत इनमें समन्वय स्थापित किया जाता है। दूसरे शब्दों में, शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत शैक्षिक एवं राष्ट्रीय विकास सम्बन्धी उद्देश्यों के मध्य सामंजस्य स्थापित किया जाता है।
2. आवश्यक सूचनाओं का संकलन (Collection of necessary information) - शैक्षिक नियोजन हेतु निम्नलिखित सूचनाओं एवं आँकड़ों का संकलन किया जाता है-
3. साक्षरता 'स्थिति', शिक्षक-छात्र अनुपात, शैक्षिक सुविधाओं एवं साधनों की स्थिति, विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर अपव्यय एवं अवरोध, शिक्षा हेतु उपलब्ध आर्थिक साधन, वर्तमान राष्ट्रीय आय तथा उसका अनुमानित भावी वृद्धि-क्रम, राष्ट्र की आर्थिक विकास-गति, मानव-शक्ति की वर्तमान स्थिति एवं उसकी भावी आवश्यकता आदि। इन सभी सूचनाओं के आधार पर ही शैक्षिक नियोजन सम्भव हो पाता है।
4. प्राथमिकता-क्रम स्थापित करना Establishing order of priority- शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत शैक्षिक उद्देश्यों तथा उपलब्ध आर्थिक एवं मानवीय साधनों के आधार पर शिक्षा के विभिन्न स्तरों एवं अंगों के विस्तार और आवश्यक परिवर्तनों का प्रावधान करना पड़ता है। शैक्षिक नियोजन के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शैक्षिक विस्तार तथा गुणात्मक उन्नति के कई विकल्पों के मध्य तथा विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में प्राथमिकता-क्रम स्थापित करें।
5. विकल्पों का निर्धारण (Decisions regarding various Options) - शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत विकल्पों में से चयन करना आवश्यक होता है। विभिन्न समस्याओं के विकल्प इस प्रकार हो सकते हैं - शिक्षा के मात्रात्मक विस्तार को अधिक महत्त्व दिया जाए अथवा गुणात्मक स्तर को, कला-सम्बन्धी विषयों को प्रधानता दी जाए या विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा को, राष्ट्रीय आय का कितना-कितना भाग शिक्षा की विभिन्न शाखाओं एवं स्तरों पर व्यय करना उचित है, प्रति वर्ष कितने शिक्षकों को प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए, आदि।
6. योजना का सामाजिक मूल्यांकन तथा लचीलापन (Periodic Evaluation of Planning and Elasticity in Planning) - योजना की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि इसकी प्रगति का मूल्यांकन समय-समय पर किया जाए, जिससे इसकी कठिनाइयाँ दूर की जा सकें। इस

मूल्यांकन के आधार पर परिवर्तन किये जा सकते हैं। जैसे-शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर अनावश्यक अपव्यय एवं अवरोधों का उन्मूलन करना, शैक्षिक विस्तार का उपलब्ध रोजगार-अवसरों से समायोजन करना, शिक्षण-विधियों में सुधार करना आदि।

7. योजना-निर्माण एवं कार्यान्विति में कार्यकर्ताओं का सहयोग (Cooperation) - योजना के सफल निर्माण एवं कार्यान्वयन हेतु यह आवश्यक है कि शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों का इसमें योगदान हो। किसी भी योजना निर्माण में शिक्षाशास्त्री, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, समाज-मनोवैज्ञानिक, राजनीतिशास्त्री आदि के अतिरिक्त शिक्षक, अभिभावक, प्रशासक व जननेता आदि सभी का परामर्श प्राप्त किया जाए। इससे योजना का स्वरूप भी यथार्थ बन सकेगा तथा इसकी कार्यान्विति में भी सभी सम्बन्धित व्यक्तियों का हार्दिक सहयोग भी प्राप्त होगा।
8. योजना सम्बन्धी उपयुक्त विज्ञप्ति (Information regarding Planning) - वस्तुतः योजना तभी सफल हो सकती है, जब इसके सभी कार्यकर्ता परस्पर सहयोग करें। यह सहयोग तभी सम्भव है जब शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वालों तथा अन्य सम्बन्धित सभी व्यक्तियों एवं जनसाधारण को राष्ट्रीय विकास-योजना के सन्दर्भ में शैक्षिक योजना के उद्देश्यों तथा कार्यक्रमों का उचित ज्ञान हो। इसलिए यह आवश्यक है कि योजना-सम्बन्धी विभिन्न स्तरों के मध्य आवश्यक संचार-व्यवस्था के साथ-साथ शैक्षिक योजना तथा उसकी प्रगति आदि के विषय में पर्याप्त विज्ञप्ति प्रचारित एवं प्रसारित हो।
9. शिक्षा सम्बन्धी आँकड़ों का संकलन एवं अनुसंधान हेतु सांख्यिकी तथा अनुसंधान विभाग की स्थापना (Collection of Education Data and Establishment of Statistics and Research Department for Research) - सफल नियोजन हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सम्बन्धी सही आँकड़े उपलब्ध हों। इस कार्य के निमित्त राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरों पर तथा शिक्षा विभाग के अन्तर्गत सांख्यिकी एवं अनुसंधान विभाग स्थापित किये जाने चाहिए। इससे शिक्षा सम्बन्धी सही सूचनाएं उपलब्ध हो सकेंगी।

14.5 रोजगार परक शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Employment Education)

रोजगार परक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं -

1. वैज्ञानिक दृष्टिकोण का निर्माण (Formation of Scientific Outlook) - जीवन को प्रगतिशील और आधुनिक बोधगम्य बनाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति के विचारों पर अन्धविश्वासों, परम्पराओं व रूढ़ियों की कोई छाप न हो। व्यक्ति स्वतन्त्र वातावरण में पूर्ण निष्पक्षता के साथ विचार करे। वैज्ञानिक दृष्टिकोण निर्मित होने पर व्यक्ति अपने द्वारा किये जाने वाले कर्मों और उनसे प्राप्त फलों की व्याख्या वैज्ञानिक आधार पर करेगा। इससे उसके विश्वास, उसके जीवन-

- लक्ष्य सत्य पर आधारित होंगे। इससे उसके द्वारा किये जा रहे निर्माण-कार्यों में भी परिपक्वता आयेगी। वह अपने जीवन में समस्त कार्य सोच-समझकर तर्क के आधार पर करेगा।
2. सतत् कर्म करने में गहन विश्वास (Deep faith in doing work continuously)- रोजगार परक शिक्षा का यह उद्देश्य है कि वह शिक्षार्थियों में कर्म करते रहने के संदेश को प्रसारित करें। गीता में भगवान् कृष्ण ने भी कर्म का संदेश दिया है। यदि हम आलस्य और प्रमाद में रहें तो हम सदैव पिछड़े रहेंगे। राष्ट्र की उन्नति का प्रमुख आधार अथाह श्रम है। श्रमपूर्वक किये निरन्तर कर्मों से ही लक्ष्मी उदित होती है। उत्पादनशील शिक्षा शिक्षार्थियों के कार्य करने पर बल दे। शिक्षा में क्रिया का प्रमुख स्थान होना चाहिए। क्रिया से ही बालक यथार्थ व व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करता है। शिक्षार्थियों पर जब बचपन से क्रिया करने के संस्कार पड़ेंगे तो वे बड़े होकर बड़े-बड़े काम करेंगे। जीविकोपार्जन के क्षेत्र में भी वे अपना नाम अमर कर सकेंगे।
 3. शारीरिक श्रम के प्रति आस्था उत्पन्न करना (To arise faith in the dignity of Physical Labour) - वर्तमान समय में विद्यालयों में शिक्षार्थियों को जो शिक्षा प्रदान की जाती है, उससे तो वे शारीरिक श्रम में रूचि लेने के स्थान पर उससे कतराने लगते हैं। उनमें ऐसी भावना बन जाती है कि जैसे शारीरिक श्रम कोई निम्न स्तरीय काम है। लेकिन यह भ्रमपूर्ण धारणा है। किसी भी निर्माण में शारीरिक श्रम की आवश्यकता पड़ेगी। शारीरिक श्रम करने से हमारी इन्द्रियाँ विकसित होती हैं और मांस-पेशियाँ सुदृढ़ होती हैं। रोजगार परक शिक्षा का यह दायित्व है कि वह व्यक्ति में श्रम के प्रति सम्मान का भाव जाग्रत करे। आदमी के पसीने से मोती पैदा होंगे, यह बात उन्हें अपने बचपन से ही समझ लेनी चाहिए।
 4. आत्मनिर्भरता का बोध (Awareness for Self-sufficiency) - शिक्षित होकर भी व्यक्ति जब तक रोजगारहीन रहता है तथा अपने परिवार अथवा रिश्तेदारों पर आश्रित रहता है, उसमें हीन भावना घर किये रहती है। उसका आत्म-विश्वास डगमगा जाता है। अगर काफी दिनों तक वह बेरोजगार रहे तो उसकी स्थिति समाज में अत्यन्त दयनीय हो जाती है। लेकिन जब वह कोई काम पकड़कर उसे ऊँचा उठाने की दृष्टि से जी-तोड़ परिश्रम करता है, तो उसका आत्म-विश्वास जाग्रत हो जाता है। समाज में वह सम्मान पाने का अधिकारी बन जाता है। उसके आत्म-निर्भर होने से समाज को भी पूरा लाभ मिलता है।
 5. देश की मुख्य धारा में सहभागी (Participant in the main stream of country) - रोजगार परक शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को समाज व देश की मुख्य धारा से जोड़ना है। कोई व्यक्ति जब सक्रिय रूप से अपनी और देश की मदद करता है तो वह स्वयं भी आत्म सन्तोषित होता है। वह धीरे-धीरे जान जाता है कि देश को किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता है और किन वस्तुओं का देश से बाहर निर्यात किया जा सकता है। वह फिर उन्हीं वस्तुओं पर ध्यान केन्द्रित कर अपनी नवीन योजनाएं बनाता है और इस प्रकार वह देश की मुख्य धारा से जुड़ता जाता है।
 6. एक नये समाज की रचना (Building of a New Society) - रोजगार परक शिक्षा द्वारा व्यक्ति में यह बोध उत्पन्न हो जाता है कि वह समाज को कुछ करके दिखाए। इसलिए वह नवीन एवं मौलिक

चिन्तन द्वारा समाज में परिवर्तन करने की सोचता है। व्यक्ति के सकारात्मक तथा सार्थक प्रयासों से समाज में ऐसे परिवर्तन होते जाते हैं, जिनसे लोग नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों से लाभ उठाते हैं। लोग आलस्य, असत्य, अकर्मण्यता आदि का त्याग करके जीवन व्यतीत करने की एक नई कल्पना करते हैं। उत्पादनशील शिक्षा का उद्देश्य पुरातन समाज की कुरीतियों और बुराइयों को मिटाकर एक नवीन समाजवादी संस्कृति को जन्म देना है, जिसमें व्यक्ति को सुख और आनन्द की प्राप्ति हो।

7. मानवीय गुणों की सृष्टि (Formation of Human Qualities) - रोजगार परक शिक्षा से तात्पर्य केवल व्यवसाय नहीं है, वरन् व्यक्ति में उद्यमशीलता, साहस, पहल करने की सामर्थ्य, नियोजन शक्ति, संगठनात्मक योग्यता, निर्बल की सहायता आदि गुणों का विकास भी है। उत्पादनशील शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को उसकी रूचि की कलाओं और व्यवसायों से परिचित कराके उसमें मानवीय गुणों का विकास करना भी है। जिससे वह अपने उद्यम और अपने गुणों से समाज का पूरा भला कर सके। एक स्वार्थी, लोभी, अकर्मण्य व्यक्ति अत्यधिक धनवान होने पर भी समाज का कोई भी मदद नहीं कर सकता। अतः व्यावसायिक योग्यता का महत्त्व समझाकर भी उत्पादनशील शिक्षा का व्यक्ति में मानवीय गुणों के विकास पर बल देना होगा। उत्पादनशील शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में गुणों और कार्यों को समन्वय पर बल देना चाहिए।

14.5.1 रोजगार परक शिक्षा और शिक्षक (Employment Education and Teacher)

रोजगार परक शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षक का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रेरणाप्रद होना चाहिए। उसे सिद्धान्तों के ज्ञान के साथ-साथ उत्तम व्यवहारिक ज्ञान भी होना चाहिए। उसे कार्यशाला की उत्तम व्यवस्था करने में कुशल होना चाहिए। वह कर्मठ, परिश्रमी तथा तकनीकी ज्ञान से परिपूर्ण होना चाहिए। बालक उसके व्यक्तित्व और कार्य करने के ढंग से प्रभावित हो। उसे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और साहित्यिक दृष्टि से उन्नत होना चाहिए।

शिक्षक में इतनी सूझबूझ व योग्यता होनी चाहिए कि वह विद्यार्थियों को उचित व्यवसाय या कला के चयन में उचित निर्देशन दे सके। वह विद्यार्थियों का उचित और उत्तम मार्ग-दर्शन कर सके। विद्यार्थी उसकी सहायता से अपनी योग्यता व दक्षता के अनुकूल विषयों का चयन करें। वे जिस व्यवसाय का चयन करें, उसमें उनकी पूर्ण रूचि प्रदर्शित हो।

14.5.2 रोजगार परक शिक्षा और शिक्षक विधियाँ (Employment Education and Teaching method)

शिक्षण विधियाँ रोजगार परक शिक्षा के अनुरूप ही होनी चाहिए। विद्यार्थी को मात्र सैद्धान्तिक ज्ञान देने से कोई लाभ नहीं। अतः उन्हें ऐसा ज्ञान दिया जाना चाहिए जिससे वे स्वयं कार्य करके सीखें अथवा स्वयं निरीक्षण एवं प्रयोग द्वारा सीखें। यह ज्ञान स्थायी होता है तथा इस प्रकार सीखने में वे अपनी कल्पनाओं का भी उपयोग कर सकते हैं।

शिक्षण-पद्धति के अन्तर्गत विविध शिल्पों को शिक्षण का केन्द्र बनाया जा सकता है। ऐसा होने से विद्यार्थी जहाँ किसी शिल्प अथवा उद्योग का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करेंगे वहाँ वे उसी शिल्प या उद्योग के सन्दर्भ में अन्य विषयों का भी ज्ञान प्राप्त करेंगे। इससे उन्हें ज्ञान की एकता का भी आभास होगा और वे शिल्प व उद्योग के संचालन में अन्य विषयों से समन्वय भी कर सकेंगे।

छात्रों को योजना पद्धति, बुनियादी शिक्षा पद्धति आदि पद्धतियों से उन्हें स्वयं कार्य करने का अवसर देना चाहिए। ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि विद्यार्थी सामान्य विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ किसी विशिष्ट शिल्प व उद्योग में भी रूचि लें। यही शिल्प व उद्योग आगे चलकर उनके जीविकोपार्जन का भी आधार बन सके।

अपनी उन्नति जानिये (Check your Progress)

1. कुछ वर्ष पूर्व मानव संसाधन विकास मंत्रालय का क्या नाम था।
2. मानव संसाधन विकास मंत्रालय विभिन्न व्यवसायों के लिए क्या प्रावधान करता है।
3. शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत शैक्षिक एवं राष्ट्रीय विकास सम्बन्धी क्या किया जाता है।
4. रोजगार परक शिक्षा से आपका क्या तात्पर्य है।

14.6 सारांश

जन शक्ति नियोजन और शैक्षिक नियोजन परस्पर घनिष्ठ रूप से और राष्ट्रीय विकास के लिए उत्तरदायी हैं। राष्ट्रीय विकास के फलस्वरूप आर्थिक प्रगति होती है। जिससे शिक्षा पर आवश्यक धन-राशि व्यय करने में सहायता मिलती है। लेकिन यहाँ यह तथ्य स्मरणीय है कि शिक्षा का विस्तार और राष्ट्र का आर्थिक विकास सन्तुलित होना चाहिए, क्योंकि यदि आर्थिक विकास गति की अपेक्षा शैक्षिक विस्तार की गति अधिक हुई तो अनेक उच्च एवं तकनीकी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति बेरोजगार रहेंगे और यदि दूसरी ओर, शैक्षिक विस्तार गति की अपेक्षा आर्थिक विकास की गति तीव्र हुई तो देश को उपयुक्त एवं पर्याप्त मात्रा में प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति उपलब्ध नहीं होंगे। इस प्रकार शैक्षिक नियोजन, राष्ट्रीय विकास नियोजन के सन्दर्भ में होना आवश्यक है। शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत मानव-विकास तथ मानव-शक्ति का उत्पादन, दोनों को सन्तुलित स्थान प्राप्त होता है।

स्पष्ट है कि आधुनिक युग में किसी भी देश के शैक्षिक विकास के लिए आवश्यक है कि वह उसकी सामाजिक, संस्था आर्थिक आवश्यकताओं के हों। यह विकास वस्तुतः तभी सफल हो सकता है जब यह पूर्व नियोजन हो और शैक्षिक नियोजन द्वारा हो, तभी हम आवश्यक जनशक्ति (Necessary Manpower) का विकास कर सकते हैं।

14.7 शब्दावली

प्राथमिकता-क्रम स्थापित करना (Establishing order of priority) - शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत शैक्षिक उद्देश्यों तथा उपलब्ध आर्थिक एवं मानवीय साधनों के आधार पर शिक्षा के विभिन्न स्तरों एवं अंगों के विस्तार और आवश्यक परिवर्तनों का प्रावधान करना पड़ता है। शैक्षिक नियोजन के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शैक्षिक विस्तार तथा गुणात्मक उन्नति के कई विकल्पों के मध्य तथा विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में प्राथमिकता-क्रम स्थापित करें।

विकल्पों का निर्धारण (Decisions regarding various Options) - शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत विकल्पों में से चयन करना आवश्यक होता है। विभिन्न समस्याओं के विकल्प इस प्रकार हो सकते हैं - शिक्षा के मात्रात्मक विस्तार को अधिक महत्त्व दिया जाये अथवा गुणात्मक स्तर को, कला-सम्बन्धी विषयों को प्रधानता दी जाये या विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा को, राष्ट्रीय आय का कितना-कितना भाग शिक्षा की विभिन्न शाखाओं एवं स्तरों पर व्यय करना उचित है, प्रति वर्ष कितने शिक्षकों को प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए, आदि।

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. कुछ वर्ष पूर्व मानव संसाधन विकास मंत्रालय का नाम शिक्षा मंत्रालय था।
2. मानव संसाधन विकास मंत्रालय विभिन्न व्यवसायों के लिए विभिन्न स्तर और विभिन्न प्रकार की शिक्षा का प्रावधान करना।
3. शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत शैक्षिक एवं राष्ट्रीय विकास सम्बन्धी उद्देश्यों के मध्य सामंजस्य स्थापित किया जाता है।
4. रोजगार परक शिक्षा से तात्पर्य केवल व्यवसाय नहीं है वरन् व्यक्ति में उद्यमशीलता, साहस, पहल करने की सामर्थ्य, नियोजन शक्ति, संगठनात्मक योग्यता, निर्बल की सहायता आदि गुणों का विकास भी है।

14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।

-
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
 6. शर्मा, रामनाथ व शर्मा राजेन्द्रकुमार (2006) एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
 7. महावीर विश्वविद्यालय कोटा “ पाठ्यक्रम विकास” ।
-

14.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
 2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
 3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठा।
 4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 5. डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 6. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
-

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मानव संसाधन विकास से आप क्या समझते हैं ? विवेचना कीजिये।
2. पूँजी-निवेश के रूप में शिक्षा का क्या तात्पर्य ? यह प्रत्यय हमारे शैक्षिक उद्देश्यों को किस प्रकार परिवर्तित कर सकता है ?
3. रोजगार परक शिक्षा से आप क्या समझते हैं ? इसकी आवश्यकता एवं महत्त्व पर प्रकाश डालिए ।
4. रोजगार परक शिक्षा के क्या उद्देश्य होने चाहिए ? विवेचना कीजिये।
5. जनशक्ति-नियोजन क्या है ? जनशक्ति-नियोजन की सीमाओं की विवेचना कीजिये।
6. शैक्षिक नियोजन की क्या आवश्यकता है ? इसके क्या सिद्धान्त हैं ?

इकाई - 15 पाठ्यक्रम की परिभाषा व पाठ्यक्रम निर्माण सिद्धान्त (Curriculum Definition and Principles of Curriculum Construction)

- 15.1 प्रस्तावना
- 15.2 उद्देश्य
- 15.3 पाठ्यक्रम का अर्थ
 - 15.3.1 पाठ्यक्रम की परिभाषाएं
 - 15.3.2 वर्तमान पाठ्यक्रम के दोष
- 15.4 पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त
- 15.5 माध्यमिक शिक्षा-आयोग के अनुसार पाठ्यचर्या के सिद्धान्त अपनी उन्नतिजानिए
- 14.6 सारांश
- 14.7 शब्दावली
- 14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 14.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें
- 14.11 निबंधात्मक प्रश्न (Long Answer Question)

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में निरन्तर परिवर्तन एवं परिमार्जन होता है। यह परिवर्तन दो रूपों में होता है - औपचारिक एवं अनौपचारिक। औपचारिक रूप के अन्तर्गत वे माध्यम आते हैं, जिनका नियोजन कुछ निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यवस्थित ढंग से संस्थापित संस्थाओं में किया जाता है। ये संस्थाएं विद्यालय होते हैं। परिवर्तन की यह प्रक्रिया

विद्यालय जीवन में ही पूर्ण नहीं हो पाती, वरन् यह परिवर्तन विद्यालय के बाहर भी चलता रहता है और अनेक परिवर्तन विद्यालय की सीमा से बाहर की परिस्थितियों के परिणामस्वरूप होते हैं। लेकिन ये सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत नहीं हो पाती। अतः ये अनौपचारिक माध्यम के अन्तर्गत आती है। पाठ्यक्रम का संबंध शिक्षा के औपचारिक माध्यम से है।

15.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

1. पाठ्यक्रम का अर्थ व परिभाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
3. पाठ्यक्रम का जीवन में महत्त्व के बारे में जान सकेंगे।
4. पाठ्यक्रम निर्माण के ध्यान देने योग्य वालो को समझ सकेंगे।
5. विभिन्न पाठ्यक्रमों के बारे में जान सकेंगे।

15.3 पाठ्यक्रम का अर्थ (Meaning of Curriculum)

पाठ्यक्रम का अंग्रेजी रूपान्तर 'करीक्यूलम' (Curriculum) है। 'करीक्यूलस' शब्द अंग्रेजी का न होकर 'लैटिन भाषा' का है। इसका अर्थ होता है - Curere अर्थात् दौड़ का मैदान। इस प्रकार 'करीक्यूलम' वह दौड़ का मैदान है जिस पर बालक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए दौड़ लगाता है।

बालक पाठ्यक्रम को दौड़कर (सीखकर) ही शिक्षा प्राप्त करता है। अतः पाठ्यक्रम दौड़ के मैदान के समान है। बालक को उसकी शिक्षा के लिए इसे 'पार करना' आवश्यक है। पाठ्यक्रम के द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि बालक को क्या पढ़ाया जाए ?

15.3.1 पाठ्यक्रम की परिभाषाएं (Definition Curriculum)

पाठ्यक्रम की कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं -

1. फ्राबेल - "पाठ्यक्रम को मानव जाति के सम्पूर्ण ज्ञान और अनुभव का सार समझा जाना चाहिए।"
2. वाल्टर सी0 - "पाठ्यक्रम में वे सभी अनुभव निहित हैं जिनको बालक विद्यालय के निर्देशन में प्राप्त करते हैं। इसमें कक्षा-कक्ष की क्रियाएँ तथा उसके बाहर के समस्त कार्य एवं खेल सम्मिलित किए जाते हैं।"
3. कनिंघम - "पाठ्यक्रम शिक्षक के हाथ में एक साधन है, जिससे वह अपने विद्यालय में अपने उद्देश्य के अनुसार, अपने छात्र को कोई भी रूप दे सकता है।"

4. क्लिपेट्रिक - “यह पाठ्यक्रम छात्रों का उस सीमा तक सम्पूर्ण जीवन है। जिस सीमा तक विद्यालय इसे अच्छा या बुरा बनाने का उत्तरदायित्व स्वीकार करता है।”
5. जॉन ड्यूवी - “पाठ्यक्रम की योजना में वर्तमान सामुदायिक जीवन की आवश्यकताओं की अनुकूलता का ध्यान रखना चाहिए। इसका चयन इस प्रकार का हो कि हमारे सामान्य सामूहिक जीवन में सुधार हो ताकि हमारा भविष्य हमारा अतीत से अच्छा हो।”

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि आधुनिक पाठ्यक्रम को बहुत ही व्यापक अर्थ में देखा जाता है। अब बालक के उन अनुभवों को भी सम्मिलित किया जाता है जिसके लिए विद्यालय मार्ग प्रदर्शन करता है। अब उसके क्षेत्र में वे समस्त क्रियाएँ भी आती हैं जो कि पहले अतिरिक्त पाठ्यक्रम क्रियाओं के नाम से जानी जाती थी।

15.3.2 वर्तमान पाठ्यक्रम के दोष

वर्तमान पाठ्यक्रम के निम्नलिखित दोष हैं -

1. संकुचित दृष्टिकोण - वर्तमान पाठ्यक्रम का दृष्टिकोण संकुचित है। पाठ्यक्रम के क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित विषय हैं।
2. विविधता का अभाव - बालकों तथा बालिकाओं की आवश्यकताएँ अलग-अलग होती हैं। उनके लिए पाठ्यक्रम भी अलग-अलग होना चाहिए। परन्तु वर्तमान पाठ्यक्रम उनकी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास नहीं करता है। इस प्रकार पाठ्यक्रम में विविधता का अभाव है।
3. लचीलेपन का अभाव - पाठ्यक्रम को नम्यता के सिद्धान्त को लेकर नहीं बनाया गया है। इसमें लचीलेपन का अभाव है।
4. जीवन से सम्बन्ध नहीं - पाठ्यक्रम में जो विषय सम्मिलित किये गए हैं, उनका जीवन से विशेष सम्बन्ध नहीं है। यही कारण है कि बालक जिन विषयों को अपने विद्यालय में पढ़ता है, उनका वह जीवन में उपयोग नहीं कर पाता। इस प्रकार यह पाठ्यक्रम बालकों को उसके जीवन के लिए तैयार नहीं करता है।
5. सैद्धान्तिक विषय अधिक - पाठ्यक्रम में जो विषय सम्मिलित किए गये हैं, उनमें सैद्धान्तिक विषय अधिक हैं। इन विषयों को पढ़ाये जाने से रटने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। विषय इतने रखे गये हैं कि उनसे ज्ञान की वृद्धि तो होती है परन्तु उन विषयों की व्यवहारिक उपयोगिता कम रहती है। यह ज्ञान बालक को उसके पैरों पर खड़ा होने में सहायता नहीं करता है।
6. व्यावसायिक विषयों की कमी - प्रचलित पाठ्यक्रम में तकनीकी तथा व्यवसायिक विषयों का अभाव है। अतः पाठ्यक्रम बालकों को उनके व्यवहारिक जीवन के लिए तैयार नहीं करता।
7. पुस्तकीय ज्ञान पर बल - प्रचलित पाठ्यक्रम पुस्तकीय ज्ञान पर अधिक बल देता है। केवल पुस्तकीय ज्ञान से बालक जीविकोपार्जन के लिए तैयार नहीं हो पाता।

8. स्थानीय आवश्यकताओं की उपेक्षा - पाठ्यक्रम में छात्रों की स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रखा गया है। नगर तथा ग्रामवासियों की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। परन्तु इस पाठ्यक्रम में भिन्न-भिन्न वातावरण के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था नहीं की गई है।
9. दृष्टिकोण - पाठ्यक्रम का निर्माण विशेषज्ञ अपने दृष्टिकोण से करता है न कि छात्रों के दृष्टिकोण से।
10. विषयों में सह-सम्बन्ध - पाठ्यक्रम में जो विषय सम्मिलित किये गये हैं, उनमें आपस में सह-सम्बन्ध नहीं है। इन विषयों में समन्वय स्थापित करके नहीं पढ़ाया जाता है। इसके फलस्वरूप पाठ्यक्रम प्रभावहीन हो जाता है।
11. सामाजिक जीवन से असम्बन्धित - प्रचलित पाठ्यक्रम से सम्मिलित विषयों का सामाजिक जीवन से सम्बन्ध नहीं है। बालक को इसमें सामाजिक जीवन की मुख्य-मुख्य क्रियाओं से परिचय नहीं हो पाता।
12. समान पाठ्यक्रम - हमारे यहाँ बालकों तथा बालिकाओं के लिए समान पाठ्यक्रम है। माध्यमिक स्तर पर बालकों तथा बालिकाओं की आवश्यकताएँ पृथक-पृथक हो जाती हैं।
13. पाठ्यक्रम पर परीक्षाओं का नियंत्रण - हमारे पाठ्यक्रम में परीक्षाओं का अत्यधिक नियंत्रण है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए कौन से विषय आवश्यक हैं और उनको कैसे पढ़ाया जाए? यही पाठ्यक्रम-निर्धारण में आवश्यक समझा जाता है।

15.4 पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त (Principles of Curriculum)

पाठ्यक्रम किन सिद्धान्तों के आधार पर निर्मित किया जाए, इसके विषय में शिक्षाशास्त्रियों ने विस्तार से विचार किया है। कुछ ने इसके सामाजिक आधार को अधिक महत्त्व दिया है तो कुछ अन्य ने मनोवैज्ञानिक आधार को अत्यधिक आवश्यक बताया है। नीचे पाठ्यक्रम-निर्माण के कुछ प्रमुख सिद्धान्तों की समीक्षा की जा रही है।

1. बालक की आवश्यकता एवं रुचि का ध्यान (**Attention of the Child's Need and Interest**) - पहले विद्वान लोग पाठ्यचर्या का निर्धारण करते समय विषय के तार्किक क्रम को अधिक महत्त्व देते थे। वे जब विभिन्न स्तरों के लिए पाठ्यचर्या का निर्माण करते थे तो देखते थे कि विषय का विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह पढ़ाना चाहिए उसके बाद अमुक सामग्री का अध्ययन करना चाहिए। इस प्रकार की पाठ्यचर्या में छात्र की क्षमता का ध्यान नहीं रखा जाता था। छात्र किसी बात को सीखने के लिए किसी समय अधिक जिज्ञासु रहता है। आवश्यकता इस बात की है कि छात्र की इस जिज्ञासा का लाभ उठाया जाए। यह देखा जाए कि बालक अमुक वस्तु में अधिक रुचि लेते हैं तो उसी आधार पर पाठ्यचर्या में सुन्दर सामग्री का संकलन किया जाए। बालक की क्षमता,

आवश्यकता एवं रुचि का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक लोग इस सिद्धान्त को सबसे आवश्यक सिद्धान्त मानते हैं।

2. सामाजिक आवश्यकता का ध्यान (**Attention to the Social Need**) - बालक की आवश्यकता के साथ-साथ समाज की आवश्यकता का ध्यान रखना भी आवश्यक है। बालक का विकास शून्य में नहीं होता। बालक की क्षमताओं के विकास के लिए एवं उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी समाज का ध्यान रखना आवश्यक होगा। हमारे माध्यमिक विद्यालयों में स्वतंत्रता से पहले इंग्लैण्ड के इतिहास एवं अंग्रेजों के अध्ययन पर अधिक बल था। समाज की आवश्यकता के कारण ऐसा नहीं था वरन् अंग्रेजी सरकार की मशीनरी को चलाने की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ऐसा किया जाता है। सामाजशास्त्री इस सिद्धान्त को अत्यधिक आवश्यक सिद्धान्त मानते हैं।

3. उपयोगिता का सिद्धान्त (**Principle of Utility**) - उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों की कुंजी के रूप में तीसरा सिद्धान्त है। यह बहुत स्पष्ट सिद्धान्त है कि पाठ्यचर्या का निर्धारण करते समय विशेष ज्ञान या तार्किक क्रम को आधार न मानकर उपयोगिता को ही आधार मानें। जो कुछ व्यक्ति एवं समाज के लिए उपयोगी है, उसे पाठ्यक्रम में स्थान मिले जो अनुपयोगी है वह कितनी भी महत्वपूर्ण क्यों न हो, उसे अलग ही रखा जाए। इस तीसरे सिद्धान्त में हम प्रथम दो सिद्धान्तों की पूर्ण अभिव्यक्ति देखते हैं। नन महोदय इस सिद्धान्त को सबसे उत्तम सिद्धान्त मानते हैं।

1. रचनात्मक का सिद्धान्त (**Principle of Creativity**) - प्रत्येक बालक में कुछ-न-कुछ रचनात्मक शक्ति होती है। पाठ्यचर्या को इस प्रकार का बनाना चाहिए कि वह छात्रों का रचनात्मक कार्यों का अवसर प्रदान कर सके। यदि बालक की रचनात्मक शक्ति क प्रकट होने का अवसर नहीं मिलेगा तो उसका व्यक्तित्व पूर्णरूप से विकसित नहीं हो सकेगा। बालक का सृजनात्मक कार्यों की प्रेरणा मिलनी चाहिए और कलात्मक रचना की गुप्त शक्तियों के विकास का अवसर मिलना चाहिए। इस सिद्धान्त का समर्थन सबसे अधिक रेमॉण्ट महोदय ने किया है।
2. खेल तथा कार्य में समन्वय (**Synthesis between Work and Play**) - खेल में तात्कालिक आनन्द उद्देश्य होता है जबकि कार्य में सुदूर प्रयोजन निहित होता है। इसलिए पुराने समय में कहा जाता है कि खेलते समय खेलों और काम करते समय काम करो। हम देखते हैं कि बालक खेल में अत्यधिक आनन्द लेता है। खेल और कार्य एक नहीं हो सकते, किन्तु खेल और कार्य सम्बन्धी क्रियाओं में यदि कुछ सम्बन्ध स्थापित हो सके, तो इससे व्यक्तित्व का विकास शीघ्र होता है। सीखना एक ऐसा कार्य है, जिसमें खेल की क्रियाओं से सहायता मिल सकती है। खेल-विधि द्वारा अध्ययन अधिक रुचिकर हो सकता है। खेल की पद्धति से सीखी हुई बात अधिक आनन्ददायी एवं स्थायी हो सकती है। अतः जहाँ तक सम्भव हो, खेल और कार्य में समन्वय स्थापित किया जाए किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि खेल करने के लोभ में कार्य के प्रयोजन को ही भूल जाएं। मॉन्टेसरी स्कूल तथा किण्डगार्टन स्कूल में खेल तथा कार्य में पर्याप्त समन्वय

दिखायी पड़ता है। प्रोजेक्ट मैथड तथा एकटीविटी स्कूल में भी यह समन्वय दिखाई पड़ता है। पाठ्यचर्या में खेल तथा कार्य के अवसर प्रदान किये जाएं और सम्भव हो तो दोनों में समन्वय की शिक्षा भी इंगित की जाए।

3. व्यवहार के आदर्शों की प्राप्ति का सिद्धान्त (**Principle of Realisation of Ideals of Behaviour**) - मानव-जीवन का लक्ष्य है- सुन्दर एवं स्वस्थ जीवनयापन करना। स्वस्थ जीवन के लिए स्वस्थ व्यवहार आवश्यक है। स्वस्थ व्यवहार किस प्रकार का हो, इसका निर्णय संस्कृति करती है। स्वस्थ व्यवहार के इन प्रतिमानों तक छात्र का पहुँचना होता है। पाठ्यचर्या में इस प्रकार की सामग्री का चयन हो कि बालक व्यवहार के आदर्शों का ज्ञान प्राप्त कर सके। साथ ही, पाठ्यचर्या को इस प्रकार के अवसर भी प्रदान करने चाहिए कि छात्र उन आदर्शों तक पहुँचने का प्रयत्न कर सके। इस प्रकार की पाठ्यचर्या में जीवन सम्बन्धी समस्त क्रियाओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए। बालक के स्वास्थ्य, मनन, बौद्धिक विकास, कौशल आदि की उन्नति के लिए अवसर मिलने चाहिए।
4. विकास का सिद्धान्त (**Principle of Growth and Development**) - पाठ्यचर्या में विद्यालय के समस्त अनुभव सम्मिलित रहते हैं। विद्यालय समाज की आवश्यकताओं का ध्यान रखता है। पाठ्यचर्या के निर्माण में भी समाज की आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता है। समाज स्थिर नहीं होता। इसका विकास होता रहता है। पाठ्यचर्या को भी स्थिर नहीं होना चाहिए। विकास इसका एक आवश्यक सिद्धान्त है। यथासमय आवश्यकतानुसार परिवर्तन होना चाहिए। इसका निर्माण इस प्रकार से किया जाए कि विकास की गुंजाइश बनी रहे। क्रो एण्ड क्रो महोदय ने विकास के सिद्धान्त का पर्याप्त समर्थन किया है।

15.5 माध्यमिक शिक्षा-आयोग के अनुसार पाठ्यचर्या के सिद्धान्त (Principles of Curriculum According to secondary Education Commission)

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने पाठ्यचर्या पर विस्तार से विचार किया है। आयोग ने पाठ्यचर्या के पाँच सिद्धान्त बताये हैं जिनके आधार पर पाठ्यचर्या का निर्माण होना चाहिए। आयोग के अनुसार, पाठ्यचर्या के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं -

1. बालक के समस्त अनुभवों का समावेश (**Inclusion of All Experiences of the Child**) - पाठ्यचर्या को बालक के समस्त अनुभवों पर आधारित होना चाहिए। बालक अध्ययन-कक्ष, पुस्तकालय अथवा खेल के मैदान आदि में जो कुछ सीखता है, वह सब पाठ्यचर्या के अधीन है। इस प्रकार विद्यालय का समस्त जीवन पाठ्यचर्या है।
2. विविधता और लचीलापन (**Variety and Elasticity**) - पाठ्यचर्या में पर्याप्त विविधता और लचीलापन होना चाहिए। बालकों पर अनेक विषयों को लाने पर प्रयास नहीं होना चाहिए।

बालकों में शक्ति, योग्यता एवं रुचि में भिन्नता होती है। यदि पाठ्यचर्या में विविधता होगी तो यह बालकों की रुचियों एवं आवश्यकताओं के अनुकूल हो सकेगा।

अपनी उन्नतिजानिए

1. करीकयूलम Curriculum शब्द किस भाषा का शब्द है
A. अंग्रेजी B फ्रांसिस C लैटिन D अमेरीकन
2. पाठ्यक्रम को मानव जाति के सम्पूर्ण ज्ञान और अनुभव का सार समझा जाना चाहिए। यह परिभाषा है।
A. फ्राबेल B. वाल्टर सी C. कर्निघम D किलपैट्रिक
3. पाठ्यक्रम का निर्माण विशेषज्ञ अपने दृष्टिकोण से करता है(सत्य/ असत्य)।
4. हमारे पाठ्यक्रम में परीक्षाओं का अत्यधिक नियन्त्रण है। सत्य/ असत्य)।
5. पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जिसके द्वारा बालक अपने अवकाश के समय का सदुपयोग कर सके। (सत्य/ असत्य)।
6. पाठ्यक्रम का निर्माण करने के पूर्व उन मूल्यों व उद्देश्यों का तय करना आवश्यक नहीं होता है, जिनके लिए पाठ्यक्रम बनाया जाता है। (सत्य/असत्य)

15.6 सारांश

पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित किये जाने वाले ज्ञान का स्वरूप एवं विस्तार अनिवार्य रूप में सम्बन्धित समाज द्वारा मान्य शैक्षिक मूल्यों (Values) एवं शैक्षिक उद्देश्यों (Objectives) पर निर्भर करता है। शिक्षा का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि पाठ्यक्रम में समय के साथ न केवल परिवर्तन ही होते रहते हैं, वरन् इनमें कभी व्यापकता और कभी संकीर्णता भी आती रहती है। पाठ्यक्रम वह अभिकल्प है। जिसे कोई समाज अपने बालकों के शैक्षिक अनुभवों के लिए तैयार करता है। इस अभिकल्प में पाठ्यवस्तु (Content) के अतिरिक्त वे शैक्षिक अनुभव भी समाहित रहते हैं। जिनका विस्तार पाठ्य विषयों एवं अध्ययन कौशलों की सीमाओं से बाहर उन अनेक प्रवृत्तियों तक होता है, जिनका आयोजन विद्यालयों द्वारा बालकों के मार्गदर्शन के लिए किया जाता है। इन प्रवृत्तियों में सामाजिक कार्यों तथा सामूहिक मूल्यों को विकसित करने की समस्त क्रियाएं शामिल होती हैं। इन क्रियाओं के आयोजन की व्यवस्था विद्यालय पाठ्यक्रम के द्वारा करता है और पाठ्यक्रम किसी न किसी उद्देश्य पर आधारित होता है। पाठ्यक्रम किसी मूल्य, लक्ष्य अथवा उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बनाया जाता है। अर्थात् पाठ्यक्रम का निर्माण करने के पूर्व उन मूल्यों व उद्देश्यों को तय करना होता है। जिनके लिए पाठ्यक्रम बनाया जाता है।

पाठ्यक्रम निर्माता को समाज की प्रवृत्ति उसके स्थायी मूल्यों, उसके परिवर्तन के क्षेत्रों का बारीकी से निरीक्षण करके उनके अर्थ को समझ कर उन दार्शनिक आधारों तथा ऐतिहासिक

घटनाओं के संदर्भ में सूचनाएँ प्राप्त करना अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि इन सूचनाओं में ही तात्कालिक पाठ्यक्रम और उनकी विशेषताओं का मूल आधार है।

जिस प्रकार वर्तमान समाज अपने भूत तथा भविष्य से जुड़ा होता है। ठीक उसी प्रकार वर्तमान पाठ्यक्रम में किये जाने वाले परिवर्तन भी उन तथ्यों के समान होंगे जो वर्तमान में विद्यमान है अथवा भूत में विद्यमान रह चुके हैं। ये तथ्य वर्तमान से प्रभावित होंगे और सर्वथा नवीन होने के स्थान पर भूत के विचारों का विकसित स्वरूप होंगे।

15.7 शब्दावली

विषयों में सह-सम्बन्ध - पाठ्यक्रम में जो विषय सम्मिलित किये गये हैं, उनमें आपस में सह-सम्बन्ध नहीं है। इन विषयों में समन्वय स्थापित करके नहीं पढ़ाया जाता है। इसके फलस्वरूप पाठ्यक्रम प्रभावहीन हो जाता है।

समान पाठ्यक्रम - हमारे यहाँ बालक तथा बालिकाओं के लिए समान पाठ्यक्रम है। माध्यमिक स्तर पर बालकों तथा बालिकाओं की आवश्यकताएं पृथक-पृथक हो जाती हैं।

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1 लैटिन भाषा उत्तर 2 फ्राबेल के अनुसार

उत्तर 3 सत्य उत्तर 4 सत्य उत्तर 5 सत्य

उत्तर 6 असत्य

15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठा
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. डिस्ट्रीब्यूटर्स।
6. 5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. शर्मा, रामनाथ व शर्मा राजेन्द्रकुमार (2006) एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

8. महावीर विश्वविद्यालय कोटा “ पाठ्यक्रम विकास” ।

15.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठा।
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम निर्माण के प्रयुक्त सिद्धान्तों का वर्णन कीजिये।
2. पाठ्यक्रम का क्या अर्थ है ? पाठ्यक्रम की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषा के सन्दर्भ में विवेचना कीजिये।
3. वर्तमान पाठ्यक्रम के प्रमुख दोषों का विस्तृत वर्णन कीजिये।
4. माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार पाठ्यक्रम के प्रमुख सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन कीजिये।
5. पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय हमें किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ? विस्तार से वर्णन कीजिए ।

इकाई-16 पाठ्यक्रम के प्रकार, बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम, जीवन केन्द्रित पाठ्यक्रम (Types of Curriculum – Child Centered Curriculum. Life Centered Curriculum)

- 16.1 प्रस्तावना
- 16.2 उद्देश्य
- 16.3 पाठ्यक्रम के प्रकार
 - 16.3.1 पाठ्यक्रम अभिकल्पन के स्रोत एवं आयाम
- 16.4 बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम
 - 16.4.1 बालक की अभिवृद्धि, परिपक्वता विकास एवं पाठ्यक्रम में सम्बन्ध
- 16.5 जीवन केन्द्रित पाठ्यक्रम
- 16.6 सारांश
- 16.7 शब्दावली
- 16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 16.9 संदर्भ पुस्तकें
- 16.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें
- 16.11 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा में नवाचार के फलस्वरूप शिक्षण प्रक्रिया में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए, जिसके अन्तर्गत शिक्षक केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था का स्थान बाल केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था ने लिया, जिसके परिणामस्वरूप परम्परागत शिक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत आने वाली समस्याओं जैसे शिक्षक का व्यवहार, सैद्धान्तिक पुस्तकीय ज्ञान, बोझिल पाठ्यक्रम तथा दमनात्मक अनुशासन जैसी व्यवस्थाओं का स्थान व्यावहारिक जीवन से सम्बद्ध ज्ञान, रूचि के सिद्धान्त, क्रियाशीलता के सिद्धान्त व बालक की रूचि, इच्छा, भावना, आवश्यकता एवं आकांक्षा स्तर को दृष्टिगत रखते हुए

पाठ्यक्रम निर्माण जैसी संकल्पनाओं ने ले लिया। वर्तमान शिक्षा का स्वरूप प्रकृतिवादी विचारकों के अनुरूप बालक का स्व-विकास कर बालकेन्द्रित शिक्षा व्यवस्था को लागू करना रहा। यद्यपि परम्परागत शिक्षण व्यवस्था में भी शिक्षाविद्, मनीषी, नीति निर्माता, पाठ्यक्रम निर्माता मनोवैज्ञानिक तत्वों का किसी न किसी रूप में प्रयोग करते थे। किन्तु बाल मनोविज्ञान एवं अधिगम मनोविज्ञान के क्षेत्र में आधुनिक काल में ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा है। यह मनोविज्ञान का ही परिणाम है कि आज बालक को कोरा कागज या सूचना संकलन करने का साधन मात्र नहीं समझा जाता है, बल्कि वर्तमान समय में बालक को केन्द्र मानकर ही पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है।

16.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

1. पाठ्यक्रम के प्रकार को समझ सकेंगे।
2. बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम के बारे में समझ सकेंगे।
3. पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न आधारों को समझ सकेंगे।
4. पाठ्यक्रम जीवन केन्द्रित होने के लाभों को समझ सकेंगे।
5. पाठ्यक्रम निर्माण में ध्यान रखने योग्य बातों को समझ सकेंगे।

16.3 पाठ्यक्रम के प्रकार (Types of Curriculum)

पाठ्यक्रम के आज अनेक प्रकार विद्यमान हैं जिनमें से कुछ प्रमुख रूपों का नीचे उल्लेख किया जा रहा है -

1. शिक्षक-केन्द्रित पाठ्यक्रम (**Teacher-Centred Curriculum**) - जिस पाठ्यक्रम की योजना शिक्षक को केन्द्र बिन्दु मानकर बनाई जाती है और जिसमें अध्यापक की रुचि, आवश्यकता, योग्यता एवं अनुभव को ध्यान में रखा जाता है, उसे शिक्षक-केन्द्रित पाठ्यक्रम कहते हैं। इस पाठ्यक्रम का प्रचलन प्राचीनकाल में भारत और अन्य देशों में था। इसकी उपयोगिता संदिग्ध है। अतः इसको त्याग देना ही उचित है।
2. विषय-केन्द्रित पाठ्यक्रम (**Subject-Centred Curriculum**) - इसमें पाठ्य-विषयों का अध्ययन-अध्यापन प्रमुख है। इसमें पाठ्यचर्या को विभिन्न विषयों में विभक्त कर दिया जाता है और प्रत्येक विषय के शिक्षण की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार की पाठ्यक्रम अमनोवैज्ञानिक है अतः इसकी उपयोगिता कम है, यद्यपि अभी तक हमारे विद्यालयों में प्रायः इसी प्रकार का पाठ्यक्रम प्रचलित है।

3. बाल-केन्द्रित पाठ्यक्रम (**Child-Centred Curriculum**) - इस प्रकार के पाठ्यक्रम में बालक की रुचि, योग्यता और अभिवृत्ति का ध्यान रखा जाता है। इसके निर्माण में बालक को केन्द्र में रखा जाता है। बालकेन्द्रित पाठ्यक्रम को शिक्षा में सर्वाधिक महत्त्व देने का श्रेय रूसों को दिया जाता है। यह पाठ्यक्रम मनोवैज्ञानिक है और अनेक आधुनिक शिक्षण-पद्धतियों में इसे महत्त्व दिया गया है।
4. क्रिया-केन्द्रित पाठ्यक्रम (**Activity-Centred Curriculum**) - इसमें विभिन्न क्रियाओं को महत्त्व दिया जाता है। इसके द्वारा विभिन्न सामाजिक क्रियाओं को सम्पन्न करके बालक शिक्षा प्राप्त करता है। ड्यूवी, ब्रूबेकर, किलपैट्रिक आदि प्रयोजनवादियों ने इस प्रकार की पाठ्यचर्या पर विशेष बल दिया है।
5. अनुभव-केन्द्रित पाठ्यक्रम (**Experience-Centred Curriculum**) - इस प्रकार के पाठ्यक्रम में समूची मानव जाति के अनुभवों का समावेश करने की बात कही जाती है। मानव जाति ने वर्तमान तथा अतीत में अनेक अनुभव प्राप्त किये हैं। इनसे बालक को प्रेरणा मिलती है। अतः इन अनुभवों को प्रमुखता देकर बालक को इन्हें सिखाया जाए, जिससे वे अपने जीवन को सफल बना सकें। इस प्रकार की पाठ्यक्रम का समर्थन टी०पी० नन ने सर्वाधिक किया है।
6. शिल्प-केन्द्रित पाठ्यक्रम (**Craft-Centred Curriculum**) - इसमें कताई-बुनाई, कृषि, बढ़ईगिरि, लुहारगिरि, धातुकर्म, सिलाई जैसे किसी शिल्प को केन्द्र मानकर उसी के इर्दगिर्द अन्य विषयों की योजना बनाई जाती है। इस प्रकार बालक जो शिक्षा प्राप्त करता है, वह अधिक रुचिकर एवं स्थायी होती है। इस पाठ्यक्रम का समर्थन महात्मा गाँधी, डा० जाकिर हुसैन, विनोबा भावे, आर्यनायकम् ने सबसे अधिक किया। बेसिक शिक्षा में इसी पाठ्यक्रम को अपनाने की बात कही गई है।
7. कोर पाठ्यक्रम (**Core Curriculum**) - इस प्रकार के पाठ्यक्रम में कुछ विषय व क्रियाएं अनिवार्य होती हैं एवं कुछ ऐच्छिक। उदाहरणार्थ - भाषा, गणित जैसी कुछ क्रियाएं सबके लिए अनिवार्य होती हैं। इस पाठ्यक्रम का विकास अमेरिका में हुआ है।
8. एकीकृत पाठ्यक्रम (**Integrated Curriculum**) - इस प्रकार के पाठ्यक्रम में सभी विषयों एवं क्रियाओं को सम्बद्ध किया जाता है। विषयों में साहचर्य एवं सहसम्बन्ध द्वारा पाठ्यक्रम को एकीकृत किया जाता है।

16.3.1 पाठ्यक्रम अभिकल्पन के स्रोत एवं आयाम (Sources of Dimensions of Curriculum Design)

पाठ्यक्रम अभिकल्पों के निर्माण को समाज व व्यक्ति की सामाजिक एवं दार्शनिक विचार धाराएं प्रभावित करती हैं। सामान्यतया ये विचारधाराएं ही पाठ्यक्रम अभिकल्पन के स्रोत कहलाते हैं। जिस प्रकार दर्शन व समाज की भूमिका शिक्षा को प्रभावित करती है, उसी प्रकार पाठ्यक्रम के योजनाकारों को भी प्रभावित करती है। यदि पाठ्यक्रम में सामाजिक एवं दार्शनिक रूझान स्पष्ट नहीं

होते हैं, तो पाठ्यक्रम योजना में व्यवहारिक व सैद्धान्तिक दूरियाँ भ्रम का कारण बनती हैं। रोनाल्ड डोल ने पाठ्यक्रम अभिकल्पों के निर्माण के पीछे निहित चार स्रोतों का वर्णन किया है - विज्ञान, समाज, शाश्वत एवं दैविक इच्छा। इसी तरह टायलर के अनुसार ज्ञान, समाज तथा अधिगमकर्ता पाठ्यक्रम अभिकल्पन के प्रमुख स्रोत हैं।

पाठ्यक्रम अभिकल्प के निर्माण के मुख्य स्रोत ही रूझान होते हैं -

‘विज्ञान’ स्रोत के रूप में - वैज्ञानिक विधि पर विश्वास करने वाले पाठ्यक्रम निर्माता निर्माण में उन तत्वों को चयन व व्यवस्थित करेंगे जो अवलोकन तथा अंकन योग्य हों अर्थात् सत्य को खोजने के लिए वैज्ञानिक विधियों, प्रविधियों, तथ्यों तथा उपकरणों पर जोर दिया जायेगा।

‘समाज’ स्रोत के रूप में - विद्यालय एक सामाजिक अभिकरण होने के नाते समाज की दशाओं तथा व्यवस्थाओं के विश्लेषण के द्वारा विचार प्राप्त करता है। विद्यालय के पाठ्यक्रम में भी इन सामाजिक विचारों का सम्मिलित किया जाना आवश्यक होता है, अन्यथा वह पाठ्यक्रम समाज को स्वीकार नहीं होता है। जैसे-जैसे सामाजिक ताने-बाने तथा वैचारिक परिस्थितियों में परिवर्तन होता है, पाठ्यक्रम को भी उसी के अनुरूप बदलना होता है। अतः इसे उसी के अनुरूप रखा जाना चाहिए।

‘शाश्वत व दैविक सत्य’ स्रोत के रूप में - कुछ पाठ्यक्रम अभिकल्पनकर्ताओं का मानना है कि जो परम्परागत एवं प्रकृति से परे विचार तथा दर्शन भूतकाल से चले आ रहे हैं, वे भी पाठ्यक्रम के अभिकल्प को प्रभावित करते हैं। महान व्यक्तियों के विचारों को कई बार शाश्वत सत्य की तरह विषयवस्तु के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

‘ज्ञान’ स्रोत के रूप में - विज्ञान को स्रोत मानने से पाठ्यक्रम अभिकल्प सीमित होना संभव है, क्योंकि इससे अन्य अध्ययन के विषय वंचित रह सकते हैं। हंकिंस के अनुसार ज्ञान वास्तव में पाठ्यक्रम अभिकल्प का एक मात्र स्रोत है, समाज एवं अधिगमकर्ता तो केवल उस ज्ञान में से उपयुक्त विषयवस्तु को चयनित करने में छलनी का कार्य करते हैं।

‘अधिगमकर्ता’ एक स्रोत के रूप में - कुछ लोगों का विश्वास है कि पाठ्यक्रम अभिकल्पन में अधिगमकर्ता के बारे में जानकारी महत्वपूर्ण स्रोत का कार्य करती है। अधिगमकर्ता कैसे सीखता है? उसकी सीखने के प्रति अभिवृत्ति कैसे बन सकती है? और रुचि कैसे पैदा हो सकती है? इन बातों का प्रभाव पाठ्यक्रम अभिकल्पन पर पड़ता है। अधिगमकर्ता केन्द्रित व अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम अभिकल्पों के लिए यह स्रोत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार के अभिकल्पों में विषय वस्तु तथा ज्ञान को द्वितीय प्रकार का महत्व दिया जाता है।

पाठ्यक्रम अभिकल्पन के आयाम (Dimensions of Curriculum Design)

जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि पाठ्यक्रम अभिकल्पन एक प्रकार से पाठ्यक्रम के तत्वों या घटकों के मध्य विद्यमान संबंध हैं। पाठ्यक्रम निर्माताओं को इसके अभिकल्पन से पूर्व अनेक आयामों पर ध्यान देना आवश्यक है -

कार्यक्षेत्र (Scope) - शिक्षाविदों को पाठ्यक्रम के अभिकल्प पर विचार करते समय इसकी विषय-वस्तु की लम्बाई तथा गहराई पर विचार करना आवश्यक है। अर्थात् उसके कार्यक्षेत्र पर विषय-वस्तु तथा अधिगम-अनुभवों को कौन से पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना है, यह पाठ्यक्रम के किसी सीमा तक कार्यक्षेत्र को इंगित करता है।

समन्वयन (Intergration) - पाठ्यक्रम में एक विषयवस्तु को दूसरी विषयवस्तु से तथा विषयवस्तु के साथ अधिगम अनुभवों को व गतिविधियों को किस प्रकार एक दूसरे से जोड़ा गया है, यह भी किसी पाठ्यक्रम अभिकल्प के लिए महत्वपूर्ण है।

क्रम (Sequence) - विषयवस्तु तथा अनुभवों को पाठ्यक्रम में किस क्रम में व्यवस्थित किया जाये यह पाठ्यक्रम अभिकल्प का एक महत्वपूर्ण आयाम है। सदैव इस बात पर विवाद रहा है कि पाठ्यक्रम में विषयवस्तु के तार्किक क्रम या किस प्रकार विद्यार्थी ज्ञान को सीखते हैं उस क्रम में विषयवस्तु तथा गतिविधियों को व्यवस्थित किया जाये। इस संबंध में कुछ सिद्धांत भी प्रचलित हैं, इनमें से प्रमुख हैं- सरल से जटिल अधिगम, छोटे-छोटे अंशों में अधिगम, समग्र से खण्डों का अधिगम, कालक्रम आधारित अधिगम आदि।

सांतत्य (Contiunity) - सांतत्य से तात्पर्य पाठ्यक्रम के घटकों के उर्ध्वधर व्यवस्था या उनकी पुनरावृत्ति से है। विद्यार्थियों के ज्ञान की गहराई तथा विस्तृतता में पाठ्यक्रम की लम्बाई के साथ-साथ वृद्धि आवश्यक होती है। इसी कारण शिक्षाविद् मुख्य विचारों तथा कौशलों को पाठ्यक्रम में पुनः शामिल करने को महत्व देते हैं। यही सांतत्य कहलाता है। किसी भी पाठ्यक्रम के अभिकल्पन में यह आयाम भी आवश्यक है।

जुड़ाव तथा संतुलन (Articulation and Balance) - जुड़ाव से तात्पर्य पाठ्यक्रम के विभिन्न पक्षों के मध्य अन्तः सम्बद्धता से है। अर्थात् पाठ्यक्रम के अलग-अलग पक्ष किस प्रकार एक दूसरे से जुड़े हैं, यह भी पाठ्यक्रम अभिकल्प का महत्वपूर्ण आयाम है। इसी प्रकार इन पक्षों में संतुलन या बहुलता भी पाठ्यक्रम अभिकल्प को प्रभावित करती है।

16.4 बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम (Child Center of Curriculum)

शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान के पर्यावरण ने एक नये युग की शुरूआत की है। शिक्षा का स्वरूप शिक्षक केन्द्रित के स्थान पर बाल केन्द्रित हो गया है। इस कारण बाल केन्द्रित शिक्षा के सही क्रियान्वयन हेतु शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण पक्ष पाठ्यक्रम है। क्योंकि शिक्षक अधिगम की प्रक्रिया की सम्पूर्ण प्रक्रिया पाठ्यक्रम के इर्द-गिर्द ही घूमती है। शिक्षाविद्, नीति निर्माताओं व पाठ्यक्रम निर्माताओं के लिए मनोविज्ञान के उन सभी तत्वों को जानकर एवं उसके अनुरूप पाठ्यक्रम निर्माण करना अनिवार्य हो जाता है, जो कि बालक के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकें।

शिक्षा में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति ने शिक्षा के उद्देश्यों, शिक्षण पद्धति, शिक्षा के संगठन, अनुशासन की अवधारणा, शिक्षक की भूमिका, शिक्षक का व्यवहार, आदि सभी पक्षों को नया आयाम प्रदान किया है। मनोविज्ञान का उद्देश्य है कि बालक के व्यवहार का अध्ययन कर शिक्षा के द्वारा उसके व्यवहार को परिमार्जित करना। अर्थात् बालक के व्यवहार में सकारात्मक एवं वांछनीय परिवर्तन लाने का प्रयास करना। मनोविज्ञान मानव विकास के विभिन्न पक्षों की खोज कर निरन्तर उनके सुधार में लगा हुआ है। व्यवहार सुधार या परिवर्तन लाने के लिए जो विधि या तरीके मनोविज्ञान द्वारा कार्य में लिए जाते हैं, उनमें पाठ्यक्रम की भी महती भूमिका है। मनोवैज्ञानिक पाठ्यक्रम का संगठन करते समय बालक की रुचि, आयु, अभियोग्यता, मानसिक बौद्धिक स्तर आदि सभी पक्षों को दृष्टिगत रखते हैं। पाठ्यक्रम का गठन करते समय मनोविज्ञान की सहायता से यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है कि शिक्षक बालक के साथ कैसा व्यवहार करें ? बालक में अधिगम अभिप्रेरणा विकसित करने हेतु कौन सी विधि प्रयुक्त की जाएं। विभिन्न नवीन शिक्षण विधियों के माध्यम से बालकों में अधिगम, रुचि, जिज्ञासा योग्यता विकसित करना। मनोविज्ञान ने पाठ्यक्रम निर्माण करने में बालक की आवश्यकता, रुचि, जिज्ञासा स्तर, अधिगम स्तर, व अभिप्रेरणा स्तर जैसे महत्वपूर्ण आयामों को विशेष महत्व दिया है।

बाल केन्द्रित शिक्षा के स्वरूप के अन्तर्गत पाठ्यक्रम निर्माण का महत्वपूर्ण धुरी बालक है। पाठ्यक्रम निर्माण में बालक के महत्व को एडवर्ड ए0 क्रग ने अपनी पुस्तक 'क्रीक्यूलम प्लानिंग' में उल्लेख किया है। प्रजातान्त्रिक संगठन व्यवस्था में शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करने हेतु उसे अधिकतम अवसर उपलब्ध कराना होता है।

16.4.1 बालक की अभिवृद्धि, परिपक्वता विकास एवं पाठ्यक्रम में सम्बन्ध (Relation of Curriculum and Growth, Maturity, Development of Child)

पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय बाल केन्द्रित पक्ष का महत्वपूर्ण योगदान है, क्योंकि सीखना बालक की शरीर की स्थिति तथा उसके नाड़ी संस्थान की स्थिति पर निर्भर करता है। कम

उम्र के बालक के लिए शारीरिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में ऊँचाई आधारित क्रियाओं को सम्मिलित करने से अधिगम में अवरोध उत्पन्न होना स्वाभाविक है। अधिगम परिस्थितियों का चयन बालक के शारीरिक विकास की दृष्टि से किया जाना चाहिए अर्थात् पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय शारीरिक अवस्था को दृष्टिगत रखा जाना चाहिए।

परिपक्वता से आशय बालक की आयु में वृद्धि के साथ समुचित ढंग से होने वाले शारीरिक मानसिक परिवर्तनों से होता है। बालक के शारीरिक विकास के दौरान आने वाले परिवर्तन कुछ विशिष्ट अभिप्रेरणा का परिणाम होते हैं। परिपक्वता की स्थिति के लिए गए प्रयास उपलब्धि का परिणाम या उपलब्धि में सहायक होते हैं। पाठ्यक्रम नियोजन में अधिगम अनुभवों को बालक के परिपक्वता स्तर से सम्बद्ध किया जाना आवश्यक है।

बालक का शारीरिक-मानसिक विकास आयु के अनुसार होता है। किन्तु उस विकास क्रम में आयु वर्षानुक्रम के साथ-साथ पर्यावरण (वातावरण) की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वातावरण या पर्यावरण पाठ्यक्रम का ही एक रूप है। अतः पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय बालक की शारीरिक बौद्धिक, मानसिक क्षमता, दक्षता को दृष्टिगत रखा जाना अनिवार्य है। इसके लिए परिपक्वता एवं विकास क्रम की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। पेस्टालॉजी ने विकास क्रम को पाठ्यक्रम निर्माण का प्रमुख आधार माना है।

16.5 जीवन केन्द्रित पाठ्यक्रम (Life Centered Curriculum)

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थी के व्यवहार में परिवर्तन करना है और यह व्यवहार में होने वाला परिवर्तन वांछित व उचित दिशा में होने पर ही समाज की स्वीकृति प्राप्त करेगा आज का युग जबाबदेही का युग है और शिक्षा के केन्द्र विद्यालय समाज के अभिकरण (Agency) के रूप में कार्य करते हैं और समाज की विशेषताओं के अनुरूप ही उस समाज की आवश्यकताएँ होती हैं, ऐसी स्थिति में पाठ्यक्रम का आंकलन व विवेचन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही किया जाता है। फ्रेन्क मसग्रुव के अनुसार - “पाठ्यक्रम एक सामाजिक प्रणाली है। जिसे समाजशास्त्र की सहायता से ही समझा जा सकता है।”

समाजशास्त्री पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन की जाँच-परख करके उसके मार्ग में आने वाली बाधाओं को समझने में सहायता करता है। इस प्रकार वह हमें इस तथ्य (Fact) का बोध (Comprehension) कराता है कि पाठ्यक्रम वह उपकरण (Tool) है जिसके द्वारा विद्यालय सामाजिक लक्ष्यों (Aims) व उद्देश्य (Objectives) की प्राप्ति का प्रयास करते हैं। अतः पाठ्यक्रम का केवल शैक्षिक ही नहीं वरन् सामाजिक महत्त्व भी है। जे0एन0 पुरोहित के शब्दों में “उद्देश्य वे अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन हैं, जो एक शिक्षक अपने शिक्षार्थी में देखना चाहता है”। वांछित दिशा में

व्यवहार परिवर्तन लाने की प्रक्रिया के द्वारा पाठ्यक्रम समाज व उसके व्यक्ति से सम्बन्धित होती है जिसे पाठ्यक्रम का सामाजिक व मनोवैज्ञानिक पक्ष कहा जाता है।

मानव व्यवहार जिसका अध्ययन मनोविज्ञान करता है, वास्तव में सामाजिक अन्तः क्रिया (Social Interaction) का परिणाम होता है। मानव व्यवहार की जितनी भी क्रियाएँ होती हैं, जैसे- प्रेम, घृणा, सहयोग, दया, सहानुभूति, नेतृत्व, अनुसरण आदि सामाजिक सन्दर्भ में ही सम्पादित होती है। हम जो कुछ भी अपने चारों देखते हैं, वह हमारे जीवन को प्रभावित करता है। आज ऐसे पाठ्यक्रम की आवश्यकता महसूस की जा रही है, जो जीवन को चतुर्मुखी विकास की ओर ले जाए। क्योंकि समय व परिस्थिति के अनुसार पाठ्यक्रम परिवर्तित होते रहना चाहिए। समय-समय पर यह जांचना चाहिए कि वह पाठ्यक्रम हमारे उद्देश्यों में कहा तक सफल हो रहा है। हमको ज्ञान प्रदान करने के साथ रोजगार भी प्राप्त कराये तभी वह पाठ्यक्रम जीवन केन्द्रित होगा। और छात्रों के भविष्य को उज्ज्वल कर सकेगा।

अपनी उन्नति जानिए

1. शिक्षक-केन्द्रित पाठ्यक्रम किसे कहते हैं?
2. विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम किसे कहते हैं?
3. बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम किसे कहते हैं ?
4. कोर पाठ्यक्रम से आप क्या समझते हो ?
5. सांतत्य से आपका क्या तात्पर्य है?

16.6 सारांश

वैज्ञानिक व तकनीकी विकास तथा उनसे उत्पन्न जटिलताओं व आवश्यकताओं ने पाठ्यक्रम के स्वरूप में बाकी परिवर्तन एवं विकास किया है। आज के भौतिकवादी तथा तकनीकी युग में व्यक्ति एक नहीं अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर अधिक से अधिक योग्यताएँ हासिल करना चाहता है, यह व्यक्ति समाज तथा राष्ट्र की आवश्यकता भी बनती जा रही है। नित-नये होने वाले आविष्कार व वैज्ञानिक प्रयोगों ने एक विषय को दूसरे विषय से स्वतः संबंध स्थापित करने की परिस्थिति उत्पन्न कर दी। व्यक्ति की जिम्मेदारियों में भी वृद्धि हो रही है और उसके सामाजिक जीवन में अनेक जटिलताएँ उत्पन्न हो रही हैं। इस प्रकार व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति विविध प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति उसके समन्वय (Co-ordination) द्वारा ही हो सकती है, इसी कारण समन्वित अर्थात् केन्द्रीभूत (Core) पाठ्यक्रम के विकास की संकल्पना सामने आयी।

प्रसिद्ध पाठ्यक्रम विशेषज्ञ हिल्डा टाबा के अनुसार समन्वित पाठ्यक्रम में समाहित विषय वस्तु जीवन के कार्यों, समसामयिक समस्याओं, विद्यार्थियों की समस्याओं तथा आवश्यकताओं से

सम्बन्धित है। साथ ही इस समन्वयता के कार्यक्रमों में जीवन की समस्याओं तथा छात्रों की अभिरूचियों से भी सम्बद्ध करने का प्रयास भी किया जाता है।

इस प्रकार समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न विषयों के संगठन (organization) द्वारा समन्वित पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है। पाठ्यक्रम के संगठन का आधार शिक्षार्थियों की अभिरूचियों, आवश्यकताओं व अनुभवों को मानते है।

16.7 शब्दावली

परिपक्वता:- परिपक्वता से आशय बालक की आयु में वृद्धि के साथ समुचित ढंग से होने वाले शारीरिक मानसिक परिवर्तनों से होता है। बालक के शारीरिक विकास के दौरान आने वाले परिवर्तन कुछ विशिष्ट अभिप्रेरणा का परिणाम होते हैं। परिपक्वता की स्थिति के लिए किए गए प्रयास उपलब्धि का परिणाम या उपलब्धि में सहायक होते है। पाठ्यक्रम नियोजन में अधिगम अनुभवों को बालक के परिपक्वता स्तर से सम्बद्ध किया जाना आवश्यक है।

सांतत्य (Continuity):- - सांतत्य से तात्पर्य पाठ्यक्रम के घटकों के उर्ध्वधिर व्यवस्था या उनकी पुनरावृत्ति से है। विद्यार्थियों के ज्ञान की गहराई तथा विस्तृतता में पाठ्यक्रम की लम्बाई के साथ-साथ वृद्धि आवश्यक होती है। इसी कारण शिक्षाविद् मुख्य विचारों तथा कौशलों को पाठ्यक्रम में पुनः शामिल करने को महत्व देते हैं। यही सांतत्य कहलाता है। किसी भी पाठ्यक्रम के अभिकल्पन में यह आयाम भी आवश्यक है।

16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. जिस पाठ्यक्रम की योजना शिक्षक को केन्द्र बिन्दु मानकर बनाई जाती है और जिसमें अध्यापक की रुचि, आवश्यकता, योग्यता एवं अनुभव को ध्यान में रखा जाता है उसे शिक्षक-केन्द्रित पाठ्यक्रम कहते है।
2. इसमें पाठ्य-विषयों का अध्ययन-अध्यापन प्रमुख है। इसमें पाठ्यचर्या को विभिन्न विषयों में विभक्त कर दिया जाता है और प्रत्येक विषय के शिक्षण की व्यवस्था की जाती है।
3. इस प्रकार के पाठ्यक्रम में बालक की रुचि, योग्यता और अभिवृत्ति का ध्यान रखा जाता है। इसके निर्माण में बालक को केन्द्र में रखा जाता है।
4. इस प्रकार के पाठ्यक्रम में कुछ विषय व क्रियाएँ अनिवार्य होती है एवं कुछ ऐच्छिक। उदाहरणार्थ - भाषा, गणित जैसी कुछ क्रियाएँ सबके लिए अनिवार्य होती है। इस पाठ्यक्रम का विकास अमेरिका में हुआ है।

-
5. सांतत्य से तात्पर्य पाठ्यक्रम के घटकों के उर्ध्वधिर व्यवस्था या उनकी पुनरावृत्ति से है। विद्यार्थियों के ज्ञान की गहराई तथा विस्तृतता में पाठ्यक्रम की लम्बाई के साथ-साथ वृद्धि आवश्यक होती है।
-

16.9 संदर्भ पुस्तकें

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
 2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
 3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
 4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 5. डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 6. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
 7. शर्मा, रामनाथ व शर्मा राजेन्द्रकुमार (2006) एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
 8. महावीर विश्वविद्यालय कोटा “ पाठ्यक्रम विकास” ।
-

16.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
 2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
 3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस,मेरठ।
 4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 5. डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 6. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
-

16.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम विकास के सिद्धान्तों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
 2. पाठ्यक्रम के निर्धारक आधार कौन-कौन से हैं ? विस्तृत वर्णन कीजिए।
 3. पाठ्यक्रम के विभिन्न प्रकारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
 4. बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम की आधुनिक समय में प्रासंगिकता का विस्तार से वर्णन कीजिए।
-

इकाई-17 पाठ्यक्रम एवं पाठ्य सहगामी क्रियायें: इनकी सार्थकता और व्यवस्था (Curriculum and Co-curricular Activities: Their Significance and Arrangement)

- 17.1 प्रस्तावना
- 17.2 उद्देश्य
- 17.3 पाठ्यक्रम की रूपरेखा
 - 17.3.1 पाठ्यक्रम तथा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ
- 17.4 गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम अभिकल्प
- 17.5 पाठ्यक्रम, पाठ्यवस्तु, पाठ्यचर्या
 - 17.5.1 विषयवस्तु के चयन के मापदण्ड
- 17.6 सारांश
- 17.7 शब्दावली
- 17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 17.9 संदर्भ पुस्तकें
- 17.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें
- 17.11 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना (Introduction)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में विद्यालयी पाठ्यक्रम में सुधार हेतु अनेक प्रयास किये गये हैं। स्वतंत्र भारत में विश्वविद्यालय आयोग का प्रतिवेदन सन् 1949 में प्रस्तुत किया गया, जिसमें विश्वविद्यालय स्तर पर पाठ्यक्रम परिवर्तन के लिए सुझाव दिये गए। माध्यमिक शिक्षा में सुधार के लिए मूल्यवान सुझाव माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) द्वारा प्रस्तुत किये गए। इस आयोग का मुख्य सुझाव माध्यमिक स्तर पर विभिन्नीकृत पाठ्यक्रम निर्माण का था, जिसमें विद्यालयी स्तर पर अनेक विषय प्रारम्भ किये गए और बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना की गई। यह प्रयास छात्रों की योग्यता, रुचि एवं अभिरुचि की पूर्ति का प्रयास था तथा इसका उद्देश्य शैक्षिक सत्रों में छात्रों को

प्रोत्साहित करना था। इसमें मुख्य वर्ग, कला, विज्ञान, तकनीकी, वाणिज्य, कृषि, फाइन आर्ट्स तथा गृह-विज्ञान रखे गए।

सन् 1966 में शिक्षा आयोग ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें पूर्व प्राथमिक शिक्षा से लेकर अनुसंधान तक विचार प्रस्तुत किये गए और शिक्षा के हर स्तर पर पाठ्यक्रम परिवर्तन के लिए बल दिया गया। यह आयोग राष्ट्रीय शिक्षा नीति के नींव का पत्थर था, जो 1968 में सर्वप्रथम राष्ट्र के सामने प्रस्तुत की गई। यह आयोग राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को प्रारम्भ करने पर आवश्यक बल देने वाला था, जिसमें 10+2+3 प्रणाली की संरचना की गई। इस प्रतिवेदन में कक्षा 1 से 10 तक सामान्य शिक्षा और कक्षा 11 से 12 पाठ्यक्रम में विभिन्नीकरण प्रारम्भ होता है। इस आयोग ने समाजोपयोगी उत्पादन कार्यानुभव पर बल दिया और समस्त राष्ट्र में समान शिक्षा का प्रस्ताव रखा। सन् 1975 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा दस वर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम की एक रूपरेखा प्रस्तुत की गई, जिसमें ऐसे पाठ्यक्रम की कल्पना की गई जो उद्देश्यों, वस्तु और विधि के माध्यम से भारतीय समाज और नागरिकों की वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

17.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

1. पाठ्यक्रम की रूपरेखा का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. पाठ्यक्रम तथा पाठ्यसहगामी क्रियाओं के बारे में जान सकेंगे।
3. गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. विषयवस्तु के चयन के मापदण्डों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
5. छात्र पाठ्यसहगामी क्रियाओं की उपयोगिता को समझ सकेंगे।

17.3 पाठ्यक्रम की रूपरेखा (Design of Curriculum)

कोठारी आयोग के अनुसार राजीव गांधी ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्धारण किया। इस प्रकरण पर सम्पूर्ण राष्ट्र में चर्चा की गई कि नई शिक्षा नीति का क्या प्रारूप होना चाहिए, जो 21 वीं शताब्दी के लिए नागरिकों को तैयार कर सके, जो विश्व के साथ चल सके तथा उस समय के राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। इस संदर्भ को ध्यान में रखते हुए सन् 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारूप विकसित किया गया तथा शिक्षा के विभिन्न पक्षों एवं स्तरों के लिए सुझाव दिये गए तथा जिन्हें अविलम्ब लागू करने का प्रयास किया गया। सामान्यतः पाठ्यक्रम सामाजिक

परम्पराओं, आदर्शों एवं मूल्यों का अनुसरण करता है तथा छात्रों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए उन्हें भावी जीवन के लिए तैयार करता है।

सन् 1988 में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की एक रूपरेखा प्रस्तुत की गई, जिसमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 का प्रतिबिम्ब था। पाठ्यक्रम की रूपरेखा निम्नलिखित है-

1. पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों का प्रतिनिधित्व करता है तथा इसका क्रियान्वयन उतना ही महत्वपूर्ण है।
2. पाठ्यक्रम संवैधानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।
3. पाठ्यक्रम सामाजिक, सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।
4. पाठ्यक्रम शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।
5. समान शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए कक्षा 1 से 10 तथा आधारभूत पाठ्यक्रम (Core Curriculum) की संरचना की गई है, जिसमें स्थानीय एवं प्रान्तीय लचीलापन है।
6. राष्ट्रीय विकास संबंधी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मानव संसाधनों का विकास आवश्यक है।
7. त्रिभाषायी सूत्र, बाल केन्द्रित शिक्षा तथा कार्यानुभव पर बल दिया जायेगा।

उच्च माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम एक रूपरेखा (1988) में प्रस्तुत किया गया है जिसमें विभिन्नीकरण के साथ-साथ व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया गया है। यहाँ पर +2 स्तर के लिए पाठ्यक्रम बनाया गया है, जिसमें भाषा, सामान्य-विषय, कार्यानुभव, शारीरिक शिक्षा तथा शैक्षिक चयनित विषयों को लिया गया है। इस अवसर पर उत्तमता पर अधिक बल देने का सुझाव है, जिससे जो छात्र शिक्षा पूरी करके संसार में प्रविष्ट हो रहे हैं। उनकी कार्यक्षमता उच्चकोटि की बन सके।

17.3.1 पाठ्यक्रम तथा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ (Curriculum and Co-Curricular Activities) -

जिस प्रकार व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों ने पाठ्यक्रम के स्वरूप में परिवर्तन, संशोधन एवं विकास में योगदान दिया है। उसी प्रकार पाठ्यक्रम से जुड़े सभी तथ्यों में पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं को भी एक नई दिशा व गति प्रदान की है और समन्वित पाठ्यचर्या (Co-Curricular) के सन्दर्भ में तो ये पाठ्येतर क्रियाएँ और अधिक विस्तृत रूप में समावेशित हो रही हैं। पहले विषय वस्तु का सीमित स्वरूप था पाठ्यक्रम (Syllabus), किन्तु पाठ्यक्रम के बढ़ते स्वरूप एवं क्षेत्र के कारण विद्यार्थी के व्यवहार परिवर्तन के लिए किये गए प्रयासों ने विषय वस्तु के अन्तर्गत पाठ्य सामग्री के साथ पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के समावेश के कारण पाठ्यक्रम में समन्वित पाठ्यक्रम की सहभागिता में वृद्धि हो रही है।

यदि विद्यार्थी के व्यवहार परिवर्तन के तीनों पक्षों - ज्ञानात्मक (Cognitive), भावात्मक (Affective) तथा क्रियात्मक (Cognitive/Psychomotor) के विकास के लिए शिक्षण क्रियाएँ अथवा अधिगम अनुभव प्रदान किये जाएं, तो वे समस्त पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ समन्वित पाठ्यक्रम में समाहित होंगी, जिनके द्वारा विभिन्न विषयों के अधिगम अनुभव भी सीखने वाले के व्यवहार में परिवर्तन करने में सहायक होते हैं।

समन्वित पाठ्यचर्या में विषय अथवा जीवन प्रवृत्तियों पर आधारित अधिगम अनुभव प्रदान करने पर क्षेत्र उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकेगी। एक विषय का दूसरे विषय के साथ सम्बन्ध स्थापित करने अथवा समवाय करने के लिए विविध प्रकार के अधिगम अनुभवों को पाठ्यचर्या में स्थान देना होगा। इसके लिए पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में शारीरिक क्रियाएँ जिसमें संतुलन बनाना, आंगिक गति का संचालन करना आदि होते हैं तो मानसिक क्रियाओं में बौद्धिक क्षमता का विकास करने हेतु स्मरण तर्क, अभिव्यंजना, चिन्तन, कल्पना आदि मानसिक शक्तियों का विकास करने वाली क्रियाओं के रूप में प्रश्नोत्तरी कूट प्रश्न, पहचान, गणना करना आदि का प्रयोग करके सीखने वाले के ज्ञान में वृद्धि की जा सकती है। सांस्कृतिक क्रियाओं का भी अपना विशेष स्थान है। इसका प्रमुख उद्देश्य किसी तथ्य अथवा घटना को रोचकपूर्ण तरीके से प्रस्तुत करना, जिसमें शारीरिक व मानसिक दोनों ही प्रकार की क्रियाएँ शामिल की जा सकती हैं।

इस प्रकार समन्वित पाठ्यक्रम एवं पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का परस्पर सहज सम्बन्ध है। अर्थात् दोनों एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करके ही विद्यार्थी के लिए अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन के लिए खरे उतर सकेंगे। इन पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के अभाव में विषयों का केवल, सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त होगा, जो सभी प्रकार के व्यवहार परिवर्तन से असफल होगा। पाठ्यक्रम में इन पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का समावेश करना आवश्यकता बनता जा रहा है।

17.4 गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम अभिकल्प (Activity Based Curriculum Design)

गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम आकल्प - विश्व में बदलते हुए राजनैतिक एवं सामाजिक परिदृश्य जिसमें लोकतंत्र तथा स्वतंत्रता को प्रोत्साहित किया है, का प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ा है। पाठ्यक्रम निर्माता इस प्रकार के पाठ्यक्रम को सृजित करना चाहते हैं, जो विद्यार्थी के लिए उपयोगी हो। पाठ्यक्रम निर्माण में एक तरफ जहाँ विषय-वस्तु तथा शिक्षक को महत्व दिया जाता रहा है, वहीं बदलाव के दौर में शैक्षिक नीति निर्माताओं ने विद्यार्थी को केन्द्र में रखकर पाठ्यक्रम निर्माण पर बल दिया है। हेनरी पेस्टोलॉजी तथा फ्रेडरिक फ्रोबेल जैसे शिक्षाविदों ने बच्चों में स्व-अनुभूति के विकास हेतु सामाजिक सहभागिता तथा करके सीखने के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया था। विद्यार्थियों की गतिविधियों एवं अनुभव पर आधारित शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं तथा पाठ्यक्रम को बढ़ावा देने में जॉन ड्यूवी तथा विलियम किलपेट्रिक जैसे शिक्षाविदों ने प्रयास किए। ऑरन्स्टाइन तथा हकिन्स के

अनुसार जर्मन शिक्षाविद् फ्रांसिस पॉर्कर ने इस प्रकार के पाठ्यक्रम हेतु अपने शोध के आधार पर सिफारिश की। पार्कर विश्वास करता था कि अनुदेशन की प्रक्रिया विद्यार्थियों के सीखने के प्राकृतिक उपागमों के आधार पर होनी चाहिए। उदाहरण के तौर पर यदि आप उनको भूगोल सिखाना चाहते हैं तो शिक्षकों, विद्यार्थियों को भौगोलिक स्थान पर ले जाना चाहिए, उनके द्वारा भू-दृश्यों के चित्र तथा नक्शे बनवाये जाने चाहिए। यह किसी पाठ्य पुस्तक को पढ़ने से ज्यादा फायदेमंद होगा। जॉन ड्यूवी ने भी इसी प्रकार की धारणा का विकास किया। इनके अनुसार पाठ्यक्रम को मनुष्य के आवेगों के अनुरूप ही संगठित किया जाना चाहिए। जैसे समाजीकरण हेतु आवेग, निर्माण हेतु आवेग, पृच्छा हेतु आवेग, अभिव्यक्ति हेतु आवेग आदि। पार्कर की तरह ड्यूवी के अनुसार शिक्षा व्यक्ति की क्षमताओं का विकास, सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु करती है पर साथ में बच्चे का विकास उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार हो, लगातार हो, न की एक साथ और पहले से तैयार पाठ्यक्रम के अनुसार।

इसी धारणा पर आधारित प्रोजेक्ट विधि को विलियम किलपैट्रिक ने प्रस्तुत किया था, जिसमें विद्यार्थी किसी प्रोजेक्ट की गतिविधियों में संलग्न रहकर शिक्षा प्राप्त करता है। जॉन ड्यूवी जहाँ पर विद्यार्थी की स्वतन्त्रता व उसके व्यक्तिगत उद्देश्य को अधिक महत्व देते थे। वही किलपैट्रिक समाज की आवश्यकता तथा शिक्षक के निर्देशन को भी महत्वपूर्ण मानते थे। पूर्णतः विद्यार्थी केन्द्रित पाठ्यक्रम अव्यवहारिक प्रतीत होती है, जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी की अपनी आवश्यकता के अनुसार पाठ्यक्रम हो। लेकिन इस बात से सभी सहमत प्रतीत होते हैं, कि सीखने-सिखाने की प्रक्रिया विद्यार्थियों की रूचि के अनुकूल हो। गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम आकल्प इसी मान्यता पर आधारित है। इस आकल्प के अनुसार पाठ्यक्रम विषय वस्तु केन्द्रित अथवा पूर्व निश्चित होने के बजाय इस प्रकार की गतिविधियों पर केन्द्रित हो, जिसके द्वारा विद्यार्थी को अपनी रूचियों तथा क्षमताओं को विकसित करने का अवसर प्रदान हो। पाठ्यक्रम में इस प्रकार का लचीलापन हो कि शिक्षक विद्यार्थियों पर एक निश्चित विषय वस्तु को थोपने के बजाय उनकी रूचि को पहचाने तथा विकसित करें। विद्यार्थियों की रूचियों व आवश्यकता पर आधारित गतिविधियों पर पाठ्यचर्या को अधिक केन्द्रित किया जाए। विषयों में स्थित विषयवस्तु को केवल उनकी समस्याओं को हल करने में प्रयुक्त किया जाए। इस प्रकार की समस्याओं को विद्यार्थियों को स्वयं चयन करने का अधिकार हो।

इस प्रकार गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम आकल्प में विषय वस्तु या पूर्व निश्चित पाठ्यचर्या के बजाय विद्यार्थियों तथा समाज की समस्याओं पर आधारित गतिविधियां को महत्व दिया गया है।

17.5 पाठ्यक्रम, पाठ्यवस्तु, पाठ्यचर्या (Syllabus, content, Curriculum)

वर्तमान समय में पाठ्यक्रम के लिए केरीक्यूलम के साथ-साथ सिलेबस तथा कोर्स ऑफ स्टडी शब्दों का प्रयोग किया जाता है। लेकिन मूल रूप से इन तीनों शब्दों में अन्तर है। जब तक पाठ्यक्रम शब्द पाठ्यविषयों के सीमित अर्थ में प्रयुक्त किया जाता रहा तब तक ये तीनों शब्द प्रायः समानार्थी माने जाने रहे, लेकिन आज इसकी व्यापकता होने से इनमें भिन्नता आ गई है।

विद्यालयी जीवन में विद्यार्थी द्वारा प्राप्त अनुभव पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आते हैं तथा जिनमें कक्षा के अन्दर व बाहर आयोजित की जाने वाली पाठ्य व पाठ्येत्तर क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं।

Syllabus पाठ्यवस्तु पूरे शैक्षिक सत्र के दौरान विधि विषयों में शिक्षक द्वारा छात्रों को दिये जाने वाले ज्ञान की मात्रा के विषय में निश्चित जानकारी प्रस्तुत करती है लेकिन पाठ्यक्रम यह बताता है कि शिक्षक किस प्रकार की शैक्षिक क्रियाओं के द्वारा पाठ्यवस्तु की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा। अन्य शब्दों में पाठ्यवस्तु शिक्षण की विषयवस्तु का निर्धारण करती है और पाठ्यक्रम उसे देने के लिए प्रयुक्त विधि का।

हेनरी हरेप के अनुसार - पाठ्यवस्तु केवल मुद्रित संदर्शिका है, जो यह बताती है कि छात्र को क्या सीखना है ? पाठ्यवस्तु की तैयारी पाठ्यवस्तु विकास के कार्य का एक तर्क सम्मत सोपान है।

पाठ्यवस्तु का संबंध ज्ञानात्मक पक्ष के विकास से होता है, जबकि पाठ्यक्रम का संबंध बालक के सम्पूर्ण विकास से होता है।

पाठ्यचर्या (Course of Study) - यह शब्द प्रचलित शब्दों से नया शब्द है। इसका प्रयोग किसी पाठ्यक्रम के क्रमबद्ध, स्पष्ट, विषयवार एवं विस्तृत स्वरूप के लिए किया जाता है। पाठ्यचर्या में अन्तर्वस्तु के अतिरिक्त शिक्षकों, छात्रों तथा प्रकाशकों के उपयोग के लिए सहायक सामग्री एवं कार्य विधि सम्मिलित होते हैं।

‘गुड’ के अनुसार पाठ्यचर्या किसी कक्षा को किसी विषय के शिक्षण में सहायता के लिए किसी विद्यालय द्वारा व्यवस्था के लिए तैयार किया जाता है।

पाठ्यचर्या में पाठ्यक्रम के लक्ष्य, अपेक्षित परिणाम, अध्ययन सामग्री, सहायता सामग्री, शिक्षण विधियाँ, सहगामी क्रियाएँ आदि सम्मिलित किए जाते हैं।

17.5.1 विषयवस्तु के चयन के मापदण्ड (Criteria for Content Selection)

पाठ्यक्रम विकास का प्रमुख कारक है, विषयवस्तु का चयन। विषयवस्तु से हमारा अभिप्राय है - संकल्पनाओं, तथ्यों, अवधारणाओं, सिद्धांतों, सामान्यीकरण तथा अधिगम अनुभवा। इस विषयवस्तु के चयन को यदि हम स्पष्ट करना चाहें, तो इसके कुछ मापदंड हमें दृष्टिगत रखने होंगे, जैसे -

1. विषयवस्तु विद्यार्थियों को स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनने में सहायक हो।
2. सीखी जाने वाली विषयवस्तु छात्रों के मूल विचारों, संकल्पनाओं और विशेषतः अधिगम योग्यताओं में महत्वपूर्ण योगदान देने वाली होनी चाहिए।
3. चयनित विषयवस्तु पाठ्यक्रम के उद्देश्यों और लक्ष्यों से संबंधित तथा दैनिक जीवन के लिए उपयोगी होनी चाहिए।
4. अधिगम की विषयवस्तु छात्रों की व्यवसायिक परिस्थितियों हेतु उपयोगी होनी चाहिए।
5. चयनित विषयवस्तु छात्रों, के व्यक्तित्व व बौद्धिक क्षमताओं (मानसिक स्तर और अभिरूचि) के अनुरूप हो।
6. विषयवस्तु ऐसी हो जिसे विद्यार्थी समझ सकें, अधिगम कर सकें, अनुभव कर सकें व उसका उपयोग कर सकें।
7. विषयवस्तु निर्धारकों को विषयवस्तु चयन करते समय तत्कालिक सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों को भी दृष्टिगत रखना होगा।
8. विषयवस्तु चयन हेतु उपलब्ध, साधन समाज और लागत को भी चयनकर्ता को ध्यान रखना आवश्यक है।

अपनी उन्नति जानिए

1. स्वतंत्र भारत में विश्वविद्यालय आयोग का प्रतिवेदन कब प्रस्तुत किया गया ?
2. माध्यमिक शिक्षा में सुधार के लिए मूल्यवान सुझाव माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा कब प्रस्तुत किये गये ?
3. शिक्षा आयोग ने अपना प्रतिवेदन किस वर्ष प्रस्तुत किया ?
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति कब बनायी गयी?
5. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा कब प्रस्तुत की गयी?
6. विद्यार्थी के व्यवहार परिवर्तन के तीनों पक्षों के नाम लिखिए।
7. क्या पाठ्यक्रम के अंतर्गत सह पाठ्य क्रियायें शामिल होती है ?

17.6 सारांश

पाठ्यक्रम में शिक्षार्थी के वे समस्त अनुभव समाहित होते हैं जिन्हें वह कक्षा-कक्ष में, प्रयोगशाला में, पुस्तकालय में, खेल के मैदान में, विद्यालय में सम्पन्न होने वाली अन्य पाठ्येत्तर क्रियाओं द्वारा तथा अपने अध्यापकों एवं साथियों के साथ विचारों के आदान-प्रदान के माध्यम से प्राप्त करता है।

शिक्षा के विकास पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि आदिकाल में शिक्षा का स्वरूप पूर्णरूप से अनौपचारिक था। विद्यार्थी वास्तविक जीवन के अनुभवों से सीखता था। वास्तविक व प्रत्यक्ष अनुभव, दूसरों के अनुभव व ज्ञान तथा निरीक्षण, शिक्षा ग्रहण करने में अमूल्य योगदान रखते थे।

मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ एक तो सीखे जाने वाले ज्ञान की मात्रा में वृद्धि हुई और दूसरी ओर जीवन में विविधता आने से मानव की व्यस्तता में वृद्धि हुई। प्रगतिशील समाज में शिक्षा को विधिवत व क्रमबद्ध बनाने का प्रयास किया गया। अतः पाठ्यक्रम उन शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन बना। पाठ्यक्रम का निर्माण कई सिद्धान्तों पर आधारित होता है।

पाठ्यक्रम प्रचलित शिक्षा-व्यवस्था तथा प्रणाली को सुव्यवस्थित करता है। समाज की शैक्षिक आकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सर्वप्रथम शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण तथा विकास किया जाता है। पाठ्यक्रम के अभाव में शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति असंभव है।

पाठ्यक्रम के आधार पर ही शिक्षक कक्षा-शिक्षण हेतु उपयुक्त शिक्षण-विधियों का चयन करता है। कक्षा-शिक्षण में क्या पढ़ाना है ? (अर्थात्, विषय-वस्तु) क्यों पढ़ाना है ? (अर्थात् 'शैक्षिक उद्देश्य) तथा कैसे पढ़ाना है ? (अर्थात् शिक्षण-विधियाँ/प्रविधियाँ/शिक्षण कौशल) आदि बातें पाठ्यक्रम से सीधा सम्बन्ध रखती हैं। पढ़ाने के उपरान्त मूल्यांकन द्वारा यह पता लगाया जाता है कि शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक हुई अथवा कहाँ पर असफलता अथवा कठिनाईयों का सामना करना पड़ा ? कौनसी विषय-वस्तु विद्यार्थियों के स्तरानुकूल थी अथवा नहीं, उपयुक्त विधियों का चयन किया गया अथवा नहीं ? इन सब बिन्दुओं का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से पाठ्यक्रम से सम्बन्ध है।

अतः पाठ्यक्रम निर्माण करते समय निर्माणकर्ता को विभिन्न कारकों को ध्यान में रखना होता है। पाठ्यक्रम के विकास के सम्बन्ध में अलग-अलग विद्वानों ने अपनी-अपनी सोच के अनुसार पाठ्यक्रम विकास में मॉडल प्रतिपादित किये हैं।

17.7 शब्दावली

पाठ्यक्रम:- वर्तमान समय में पाठ्यक्रम के लिए केरीक्यूलम के साथ-साथ सिलेबस तथा कोर्स ऑफ स्टडी शब्दों का प्रयोग किया जाता है। लेकिन मूल रूप से इन तीनों शब्दों में अन्तर है। जब तक पाठ्यक्रम शब्द पाठ्यविषयों के सीमित अर्थ में प्रयुक्त किया जाता रहा तब तक ये तीनों शब्द प्रायः समानार्थी माने जाने रहे, लेकिन आज इसकी व्यपकता होने से इनमें भिन्नता आ गई है।

विद्यालयी जीवन में विद्यार्थी द्वारा प्राप्त अनुभव पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आते हैं तथा जिनमें कक्षा के अन्दर व बाहर आयोजित की जाने वाली पाठ्य व पाठ्येत्तर क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं।

पाठ्यवस्तु:- पाठ्यवस्तु पूरे शैक्षिक सत्र के दौरान विधि विषयों में शिक्षक द्वारा छात्रों को दिये जाने वाले ज्ञान की मात्रा के विषय में निश्चित जानकारी प्रस्तुत करती है लेकिन पाठ्यक्रम यह बताता है कि शिक्षक किस प्रकार की शैक्षिक क्रियाओं के द्वारा पाठ्यवस्तु की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा। अन्य शब्दों में पाठ्यवस्तु शिक्षण की विषयवस्तु का निर्धारण करती है और पाठ्यक्रम उसे देने के लिए प्रयुक्त विधि का।

पाठ्यचर्या - यह शब्द प्रचलित शब्दों में नया शब्द है। इसका प्रयोग किसी पाठ्यक्रम के क्रमबद्ध, स्पष्ट, विषयवार एवं विस्तृत स्वरूप के लिए किया जाता है। पाठ्यचर्या में अर्न्तवस्तु के अतिरिक्त शिक्षकों, छात्रों तथा प्रकाशकों के उपयोग के लिए सहायक सामग्री एवं कार्य विधि सम्मिलित होते हैं। पाठ्यचर्या में पाठ्यक्रम के लक्ष्य, अपेक्षित परिणाम, अध्ययन सामग्री, सहायता सामग्री, शिक्षण विधियाँ, सहगामी क्रियाएँ आदि सम्मिलित किए जाते हैं।

17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1 वर्ष 1949 उत्तर 2 वर्ष 1952-1953 उत्तर 3 वर्ष 1966

उत्तर 4 1986 उत्तर 5 1988 उत्तर 6 ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक।

उत्तर 7 हाँ

17.9 संदर्भ पुस्तकें

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।

3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठा।
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. डिस्ट्रीब्यूटर्स।
6. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. शर्मा, रामनाथ व शर्मा राजेन्द्रकुमार (2006) एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
8. महावीर विश्वविद्यालय कोटा “ पाठ्यक्रम विकास” ।

17 .10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस,मेरठा।
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. डिस्ट्रीब्यूटर्स।
6. 5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।

17.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
2. पाठ्यसहगामी क्रियायें छात्रों के लिए किस प्रकार उपयोगी है विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या व पाठ्यवस्तु के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
4. पाठ्यक्रम तथा पाठ्यसहगामी क्रियाओं का आपस में क्या सम्बन्ध है। वर्णन कीजिए।
5. पाठ्यक्रम निर्माण करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए। विस्तृत वर्णन कीजिए।
6. पाठ्यसहगामी क्रियायें व शिक्षण में क्या सम्बन्ध है। इनके महत्व को समझाइये ।

इकाई-18 स्वतन्त्रता और अनुशासन में सम्बन्ध, मानव जीवन व सामाजिक व्यवस्था में इसका महत्व (Relation Between Freedom and Discipline, its significance for human life and social order)

- 18.1 प्रस्तावना
- 18.2 उद्देश्य
- 18.3 अनुशासन से अभिप्राय
 - 18.3.1 स्वतन्त्रता से अभिप्राय
- 18.4 स्वतन्त्रता व अनुशासन में सम्बन्ध
- 18.5 मानवीय जीवन व सामाजिक परिपेक्ष में महत्व
- 18.6 सारांश
- 18.7 शब्दावली
- 18.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 18.9 संदर्भ पुस्तकें
- 18.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें
- 18.11 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 .प्रस्तावना (Introduction)

‘स्वतन्त्रता’ एवं ‘अनुशासन’ यदि इन दोनों के शाब्दिक अर्थ की ही व्याख्या की जाये तो ऐसा अनुभव होगा कि यह शब्द परस्पर विरोधी है जबकि वास्तविक स्थिति यह नहीं है। स्वतन्त्रता एवं अनुशासन एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप में सम्बन्ध रखते हैं चूँकि अनुशासनविहीन स्वतन्त्रता स्वच्छता का रूप ले लेगी और स्वतन्त्रताविहीन अनुशासन यातना बन जायेगा। इन कारण दोनों में परस्पर समन्वय बनाये रखना आवश्यक है। सबसे पहले हम इस बात की चर्चा करेंगे कि अनुशासन व स्वतन्त्रता का अर्थ क्या है ?

18.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

1. स्वतन्त्रता व अनुशासन का अर्थ जान सकेंगे।
2. स्वतन्त्रता व अनुशासन के मध्य सम्बन्ध को जान सकेंगे।
3. मानव व समाज के लिए स्वतन्त्रता व अनुशासन के महत्व का समझ सकेंगे।
4. अपने अन्दर दूसरों के प्रति सम्मान की भावना को जाग्रत कर सकेंगे।

18.3 अनुशासन से अभिप्राय (Meaning of Discipline)

अनुशासन मस्तिष्क आचरण व अभिवृत्ति का प्रशिक्षण है। जब तक बालक के चिन्तन, दृष्टिकोण व व्यवहार में स्थायी परिवर्तन न हो तब तक अनुशासन नहीं आ सकता। अनुशासन का अभिप्राय मूल प्रवृत्तियों का शोधन है। वास्तव में मानव की पाशविक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण करना व उसमें मानवोचित गुणों का सृजन करना ही अनुशासन है। वांछित आदतों के माध्यम से सहज प्रवृत्तियों का रूपान्तर करना अनुशासन है। नियमों के अंतर्गत प्रदान की गई स्वतन्त्रता अनुशासन है। अनुशासन एक शिष्ट आचरण है, जिसमें आत्म संयम व आत्म नियन्त्रण किया जाता है।

18.3.1 स्वतन्त्रता से अभिप्राय (Meaning of Freedom)

भारतीय सविधान द्वारा नागरिकों को मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्वों के द्वारा अधिकार प्रदान किये गये हैं, जिनसे भारतीय नागरिकों को स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान किया गया है, कि भारतीय नागरिकों को जाति, धर्म, लिंग, रंग व क्षेत्र के आधार पर किसी भी प्रकार का कोई बन्धन नहीं लगाया जा सकता है। वह कभी भी भ्रमण या निवास कर सकता है। लेकिन साथ ही कानून ने उस पर यह भी नियन्त्रण लगाया है कि इससे किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता या देश के लिए खतरा उत्पन्न होता है, तब उसको अनुशासित किया जा सकता है।

18.4 स्वतन्त्रता व अनुशासन में सम्बन्ध (Relationship between Freedom and Discipline)

स्वतन्त्रता व अनुशासन दोनों के ही यदि हम संकुचित अर्थ पर दृष्टि डालें तो हमें ऐसा प्रतीत होगा कि इन दोनों के मध्य सम्बन्ध नहीं है और यदि दोनों के व्यापक अर्थ पर विचार करें तो ऐसा लगेगा कि दोनों एक ही हैं। जब हम स्वतन्त्रता को स्वच्छन्दता से अलग समझते हैं व अनुशासन को अधिनायकवादी दृष्टिकोण से पृथक समझते हैं तो इन दोनों में कोई अन्तर नहीं रह जाता वरन् अपने व्यापक अर्थ में एक समान प्रतीत होते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि स्वतन्त्रता में अनुशासन समाहित है और अनुशासन में स्वतन्त्रता निहित होनी चाहिए। इसी कारण हम यह कहते हैं कि अनुशासन व स्वतन्त्रता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जिन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है।

कुछ व्यक्ति अनुशासन को प्रायः बन्धन या परतन्त्रता के रूप में देखते हैं। उनका विचार है कि किसी दूसरे के बनाये गये नियमों के अन्तर्गत हमें नहीं रहना चाहिए। चूँकि इससे हमारी स्वतन्त्रता का हनन होता है। यदि बालक को पग-पग पर उसके व्यवहार के लिए टोका जायेगा या उसे नियमों का अनुपालन करने को कहा जायेगा तो उसका व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है। व्यक्तित्व के समुचित विकास हेतु यह आवश्यक है कि बालक को स्वतन्त्र छोड़ा जाए, परन्तु स्वतन्त्रता से पूर्व उसे आत्म-अनुशासन व आत्म-नियन्त्रण का प्रशिक्षण देना अनिवार्य है। आत्म-अनुशासित व्यक्ति स्वतन्त्रता का दुरुपयोग कदापि नहीं करेगा और अपने व्यक्तित्व का सही ढंग से विकास कर पायेगा। बर्टेण्ड रसेल ने ठीक ही कहा है, “जिस व्यक्ति की वाणी पर प्रतिबन्ध लगा हो, जिसके नियम किसी कठोर नीति के द्वारा निर्मित किये गये हों, जिसकी बाल्यावस्था शिष्टाचार के नियमों से बाँध दी गई हो, जिसकी युवावस्था निर्दयी, रूढ़िवादिता के अन्तर्गत प्रशिक्षित की गई हो, उसमें इस प्रकार के वातावरण के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न होगी तथा उसमें वही तीव्र क्रोध उद्वेलित होगा जैसा कि हाथ-पैर बँधे एक शिशु को क्रोध आता है। इस क्रोध के वशीभूत होकर वह विध्वंसात्मक कार्यों की ओर प्रेरित होगा।” अतः हम कह सकते हैं कि बालक पर आवश्यकता से अधिक नियंत्रण रखना सदैव घातक होता है। यह बादल के अन्दर नकारात्मक या ध्वंसात्मक क्रियाओं को जन्म दे सकता है।

रूसो, फ्रॉबेल, माण्टेसरी आदि शिक्षाविदों ने ‘स्वतन्त्र अनुशासन’ का नारा दिया। जॉन ड्यूवी ने ‘बालक को बचाओ’ (Save the Child) की बात कही। इन सभी विचारकों का मत था कि बालक को हमें पूर्ण रूप से स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए। उसके अन्दर स्वाभाविक रूप से शुभ-अशुभ, उचित अनुचित व अच्छे-बुरे का विकास होना चाहिए। इन भावनाओं का विकास उन्हें अनुशासन में रखने में सहयोग देगा। परन्तु इसके साथ ही हमें प्रो० वाग्ले का यह कथन भी नहीं भूलना चाहिए कि “बालक अपरिपक्व एवं निःसहाय है। अतः उसे लम्बी रस्सी नहीं दी जानी चाहिए कि वह अपने आप को टाँग दे।”

अतः आवश्यकता इस बात की है कि न तो उसे अधिक नियमों के बन्धन में बाँधा जाये और न ही उसे पूर्ण स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय वरन् हमें इनका मध्यवर्गीय मार्ग अपनाना होगा व बालक में आत्म-नियन्त्रण की क्षमता उत्पन्न करनी होगी जो उसके व समाज के दोनों के हितों के लिए आवश्यक है। सबसे अच्छा तरीका है “डण्डा हाथ में रखो जरूर परन्तु उससे छात्र को मारो नहीं, उसे रास्ता दिखाओ” आज का शिक्षक भी यह जानता है कि दण्ड देना अपराध समान है। वह छात्रों को पूर्ण स्वतन्त्रता देता है। तब आज के विद्यालयों में अनुशासनहीनता की समस्या क्यों उत्पन्न हो रही है, अब हम इस पर विचार करेंगे।

18.5 मानवीय जीवन व सामाजिक परिपेक्ष में महत्व

बालकों के समुचित विकास एवं उचित शिक्षा के लिए प्रत्येक समाज को प्रत्येक अवस्था के बालकों के लिए विद्यालयों की व्यवस्था की जाती है। विद्यालय का वातावरण आकर्षक तथा

उसमें योग्य अनुभवी शिक्षकों की व्यवस्था करके समाज के बच्चों को शिक्षित व अनुशासित होने का पाठ पढ़ाया जाता है ताकि वह बड़ा होकर समाज का आदर्श व्यक्ति बन सके। वह स्वयं अपने विकास के बारे में ही विचार न करे, बल्कि जनकल्याण की भावना के गुणों का विकास उसमें बचपन की शिक्षा से ही डाल दिया जाए। ताकि वह बड़ा होकर अनुशासित जीवन व्यतीत कर सके। यदि वह स्वयं अनुशासित रहेगा तो अन्य व्यक्तियों की स्वतन्त्रता को किसी भी प्रकार का खतरा नहीं होगा। वही स्वतन्त्रता सबसे अच्छी मानी जाती है जो दूसरों के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक या अन्य किसी भी प्रकार के कार्यों में बाधा उत्पन्न न करे। इससे समाज के सदस्य स्वयं अनुशासित तो होंगे ही साथ पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता का भी अनुभव कर सकेंगे। स्वतन्त्रता व अनुशासन दोनों एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। तभी समाज अनुशासित दिखायी देता है। इसमें शिक्षा भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षित व्यक्ति जानता है कि जीवन में अनुशासित जीवन जीने से निश्चित ही वृद्धि की ओर हम अग्रसर होते हैं। अनियन्त्रित स्वतन्त्रता समाज को पीछे की ओर ले जाती है। हमारा सभी का यह दृष्टिकोण होना चाहिए कि समाज को विकास की ओर कैसे ले जाएं। यह सब तभी सम्भव है, जब हम निरन्तर प्रयास करते रहें और व्यक्ति अनुशासित जीवन व्यतीत करे। पूर्ण स्वतन्त्रता अनुशासन के मार्ग में बाधा डालती है। अतः इस पर नियन्त्रण अवश्य ही रहना चाहिए। अधिक नियन्त्रण भी हमारी स्वतन्त्रता के मार्ग में बाधा डालता है। अतः समाज के सदस्यों की स्वतन्त्रता को अधिक नियन्त्रित न किया जाए।

अपनी उन्नति जानिए

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. जब तक बालक के चिन्तन, दृष्टिकोण व व्यवहार में स्थायी परिवर्तन न हो तब तक नहीं आ सकता।
2. मानव की पाशविक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण करना व उसमें मानवोचित गुणों का सृजन करना ही है।
3. वांछित आदतों के माध्यम से का रूपान्तर करना अनुशासन है।
4. अनुशासन एक शिष्ट आचरण है जिसमें आत्म संयम व किया जाता है।
5. अनुशासन व एक ही सिक्के के दो पहलू है जिन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है।

18.6 सारांश

शिक्षक समाज का ही एक अंग है। शिक्षकों पर देश व काल का प्रभाव दिखाई देता है। शिक्षा के निरुद्देश्य होने से शिक्षण कार्य भी निरुद्देश्य व प्रभाव ही हो जाता है। कभी-कभी शिक्षक अपने को समाज का एक अंग न समझकर समाज से अथवा प्रथक एक अन्य लोक का प्राणी समझने लगता है। वह पुस्तकीय दुनिया में रहने वाला एक स्वपनदृष्टा हो जाता है। इसी कारण समाज में अध्यापकों की मर्यादा समाप्त हो गयी है।

यदि समाज में ऐसा अध्यापक होगा तब वह छात्रों या समाज को कैसे अनुशासन का पाठ पढ़ायेगा ? समाज के सदस्य कैसे अनुशासित जीवन व्यतीत करेंगे। वे निश्चित ही दूसरों की स्वतन्त्रता को बाधित करेंगे। जिसके कारण स्वतन्त्रता व अनुशासन दोनों में समन्वय स्थापित बना रह सकता है। यदि हम चाहते हैं कि कोई हमारी स्वतन्त्रता में बाधा न पहुँचाए, तो हमें यह निश्चय करना होगा कि हम स्वयं अनुशासित जीवन व्यतीत करें। दूसरों के अधिकारों पर अतिक्रमण न करें। दूसरों की स्वतन्त्रता के बारे में वैसा ही सम्मान करें, जैसा कि अपने बारे में दूसरे से चाहते हैं।

यहाँ पर कहने का सारांश यही है कि स्वतन्त्रता और अनुशासन जीवन विकास की राह खोलता है, चाहे विकास की इस कड़ी में छात्र, अध्यापक या नागरिक हो, प्रत्येक को अनुशासन के महत्व को समझना होगा। अनियन्त्रित स्वतन्त्रता व अधिक अनुशासन भी समाज को कहीं न कहीं बाधा पहुँचता है, जिससे हम अवनति की ओर अग्रसर हो जाते हैं। विकास रुक जाता है और हम झूठे अहंकारवश अपने बारे में ही विचार करते हैं। यह विकास का प्रतीक नहीं बल्कि विखण्डन का प्रतीक है। अन्त में हम यह कह सकते हैं कि स्वतन्त्रता व अनुशासन दोनों में सामंजस्य होना आवश्यक है। तभी राष्ट्र के नागरिकों का विकास होगा।

18.7 शब्दावली

अनुशासन व स्वतन्त्रता :- जब हम स्वतन्त्रता को स्वच्छन्दता से अलग समझते हैं व अनुशासन को अधिनायकवादी दृष्टिकोण से पृथक समझते हैं, तो इन दोनों में कोई अन्तर नहीं रह जाता वरन् अपने व्यापक अर्थ में एक समान प्रतीत होते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि स्वतन्त्रता में अनुशासन समाहित है और अनुशासन में स्वतन्त्रता निहित होनी चाहिए। इसी कारण हम यह कहते हैं कि अनुशासन व स्वतन्त्रता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जिन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है।

स्वतन्त्र अनुशासन:- रूसो, फ्रॉबेल, माण्टेसरी आदि शिक्षाविदों ने 'स्वतन्त्र अनुशासन' का नारा दिया। जॉड ड्यूवी ने 'बालक को बचाओ' (Save the Child) की बात कही। इन सभी विचारकों का मत था कि बालक को हमें पूर्ण रूप से स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए। उसके अन्दर स्वाभाविक रूप से शुभ-अशुभ, उचित अनुचित व अच्छे-बुरे का विकास होना चाहिए।

18.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. जब तक बालक के चिन्तन, दृष्टिकोण व व्यवहार में स्थायी परिवर्तन न हो तब तक अनुशासन नहीं आ सकता।
2. मानव की पाशविक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण करना व उसमें मानवोचित गुणों का सृजन करना ही अनुशासन है।
3. वांछित आदतों के माध्यम से सहज प्रवृत्तियों का रूपान्तर करना अनुशासन है।
4. अनुशासन एक शिष्ट आचरण है जिसमें आत्म संयम व आत्म नियन्त्रण किया जाता है।

-
5. अनुशासन व स्वतन्त्रता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जिन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है।
-

18.9 संदर्भ पुस्तकें

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
 2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
 3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठा।
 4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 5. डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 6. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
 7. शर्मा, रामनाथ व शर्मा राजेन्द्रकुमार (2006) एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
 8. महावीर विश्वविद्यालय कोटा “ पाठ्यक्रम विकास” ।
-

18.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
 2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
 3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस,मेरठा।
 4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 5. डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 6. 5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत जीप्रकाशन, नई दिल्ली।
-

18.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वतन्त्रता व अनुशासन दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। व्याख्या कीजिए।
 2. अनुशासन से आप क्या समझते हो ? अनुशासित होने के लिए हमें किन-किन बातों को ध्यान रखना चाहिए।
 3. अनुशासन का हमारे जीवन में क्या महत्व है? विस्तृत वर्णन कीजिए।
 4. “अनुशासन सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए महत्वपूर्ण है” कैसे?विस्तार से वर्णन कीजिए।
-

इकाई-19 विद्यालय के अन्दर व बाहर अनुशासन की आवश्यकता और महत्व (Need and Importance of Discipline in and out of School)

- 19.1 प्रस्तावना
- 19.2 उद्देश्य
- 19.3 विद्यालय में अनुशासनहीनता की समस्या
 - 19.3.1 अनुशासनहीनता के कारण
- 19.4 विद्यालय में अनुशासनहीनता के कारण
 - 19.4.1 विद्यालय से बाहर अनुशासनहीनता के कारण
- 19.5 विद्यालय व विद्यालय से बाहर अनुशासन की आवश्यकता व महत्व and
- 19.6 सारांश
- 19.7 शब्दावली
- 19.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 19.9 संदर्भ पुस्तकें
- 19.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें
- 19.11 निबंधात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना (Introduction)

विद्यालय छात्र के लिए मन्दिर के समान होता है यदि वहाँ का वातावरण शान्त स्वच्छ, निर्मल व पर्यावरण के अनुकूल है। तब निश्चित ही वहाँ के अध्यापक व छात्र उन्नति की ओर अग्रसर होंगे। वहाँ पर नियमों व कानूनों को जबरदस्ती लादने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी न ही विद्यार्थियों व अध्यापकों पर कड़ा नियन्त्रण लगाना पड़ेगा। लेकिन सभी को अनुशासन में रहकर कार्य करना होगा। जब यही छात्र कक्षा से बाहर जाकर उदंडता, लड़ाई, झगड़े व गृह कार्य नहीं करते हैं, तब यहाँ पर अनुशासन की आवश्यकता अति आवश्यक हो जाती है। क्योंकि विद्यालय के बाहर भी अनुशासन का पाठ पढ़ाया जाना अति आवश्यक है, क्योंकि ये ही छात्र कल इस समाज व राष्ट्र को चलाने वाले

बनेंगे। अतः अनुशासन का पाठ विद्यालय व विद्यालय के बाहर दोनों जगह ध्यान रखना आवश्यक ही नहीं, बल्कि अति आवश्यक है।

19.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

1. विद्यालय में अनुशासनहीनता के कारणों को जान सकेंगे।
2. अनुशासित होने के गुणों को अपना सकेंगे।
3. अनुशासन से सामाजिक गुणों का विकास कर सकेंगे।
4. अनुशासित जीवन की उपयोगिता को समझ सकेंगे।
5. विद्यालय के बाहर अनुशासित जीवन को समझ सकेंगे।

19.3 विद्यालय में अनुशासनहीनता की समस्या (Problem of Indiscipline in school)

आज के युवा वर्ग, विशेषकर छात्र वर्ग के मध्य अनुशासनहीनता एक सामान्य समस्या बन गई है। जो न सिर्फ छात्रों को हानि पहुँचा रही है वरन् समाज को पतन के कगार पर खड़ा कर रही है। यह अनुशासनहीनता क्यों है व इसका कारण क्या है?

अनुशासनहीनता का अर्थ - “कोई बात जो जन-जीवन के लिए हानिप्रद हो तथा किसी संस्था की सुचारू रूप से चल रही व्यवस्था में बाधा पहुँचाये, चाहे वह सामाजिक संस्था, आर्थिक संस्था व राजनैतिक संस्था हो व स्वैच्छिक संस्थाएँ हो, जो दूसरों की स्वतन्त्रता का अपहरण करे, सब अनुशासनहीनता के अन्तर्गत ही आती है।”

सामान्यतया अनुशासनहीनता की समस्या तब उत्पन्न होती है जब विचारों में मतभेद उत्पन्न हो जाता है और कोई एक पक्ष उस मतभेद से उद्वेलित हो उठता है व बिना सोचे-समझे वह व्यवहार प्रदर्शित कर देता है, जो समाज की दृष्टि से अवांछनीय होता है। अनुशासनहीनता क्यों उत्पन्न होती है, हम विस्तापूर्वक इस पर प्रकाश डालेंगे।

19.3.1 अनुशासनहीनता के कारण (Causes of Indiscipline)

प्रो० हुमाँयू कबीर के अनुसार, “अनुशासनहीनता किस कारण से है, इस सम्बन्ध में प्रो० कबीर का विचार यह है कि कभी यह अनुशासनहीनता बालक के व्यक्तिगत कारण से हो सकती है तो कभी हमारी सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था भी अनुशासनहीनता की परिस्थिति को उत्पन्न कर सकती है। मुख्य रूप से अनुशासनहीनता के निम्न कारण हैं -

1. अध्यापकों में नेतृत्व की कमी,
 2. आर्थिक कठिनाइयों में वृद्धि
 3. आधुनिक शिक्षा प्रणाली में दोष,
 4. आदर्शों की कमी।
1. यदि आज हम अध्यापक के व्यवहार का वास्तव में मूल्यांकन करें, तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा के स्तर में आ रही गिरावट व विद्यार्थियों के व्यवहार में उत्पन्न अवांछनीयता के दोषी अध्यापक हैं। प्रश्न उठता है- प्राचीनकाल के आदर्शों से परिपूर्ण 'गुरु' आज कहाँ लुप्त हो गये हैं। आज क्या कोई ऐसा अध्यापक है, जो विद्यार्थियों को सही मार्ग की ओर प्रशस्त करे, क्या कोई ऐसा अध्यापक है, जो नेतृत्व की बागडोर अपने हाथ में संभाल सके। आज का अध्यापक दिशा-बोधक न होकर दिशाभ्रमित करने वाला हो गया है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रारम्भिक स्तर पर बालक के ऊपर सबसे अधिक प्रभाव अध्यापक का पड़ता है। यदि अध्यापक अनुशासनपूर्ण है व उसमें नेतृत्व करने की पूर्ण क्षमता है तो इस बात का प्रश्न ही नहीं उठता है कि उसका अनुकरण करने वाले छात्र अनुशासनहीन होंगे।
 2. अनुशासनहीनता का भारतवर्ष में दूसरा कारण है - जनसाधारण के समक्ष विद्यमान आर्थिक कठिनाइयाँ। आज का छात्र आकांक्षाओं से युक्त है। परन्तु उनको पूरा करने हेतु उनके पास साधन नहीं है तो वह कुंठित हो उठता है और उसकी कुण्ठा का परिणाम अनुशासनहीनता के रूप में व्यक्त होता है। आज की सबसे विषम परिस्थिति यह है कि शिक्षा को भी धनिक लोगों ने खरीद लिया है। जिसके पास पैसा है पर क्षमता नहीं, वह कुछ भी प्राप्त कर सकता है तथा जिसके पास क्षमता है, पैसा नहीं, वह सदैव दयनीय व लाचारी की स्थिति में रहता है।
 3. वर्तमान दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली भी अनुशासनहीनता का एक प्रमुख कारण है। आज की शिक्षा उद्देश्यविहीन हो चुकी है और इसी कारण शिक्षित बेरोजगारों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। वह शिक्षा किस काम की जो भविष्य की सुरक्षा को आश्वस्त न कर सके। हर विद्यार्थी के समक्ष एक प्रश्न सूचन चिन्ह है कि पढ़ाई समाप्त करने के बाद वह क्या करेगा ? जब उसे अपनी सामर्थ्य व योग्यता के अनुकूल कार्य नहीं मिल पाता है तो वह निराश हो जाता है, यह निराशा ही अनुशासनहीनता को जन्म देती है। शिक्षा प्रणाली का एक प्रमुख दोष मूल्यांकन में विद्यमान अविश्वसनीयता व अवैधता भी है। आज के अध्यापक व छात्र दोनों ही भ्रष्ट हैं। छात्र नकल करके व गैर-कानूनी तरीके अपनाकर पास होना चाहता है व अध्यापक पैसे के समक्ष अपनी नैतिकता को बेच देते हैं। परिणाम यह होता है कि जो योग्य व्यक्ति है, उसे अपनी योग्यता के अनुरूप परिणाम प्राप्त नहीं होता और वह निराश होकर गलत कार्यों की ओर उन्मुख हो जाता है।
 4. चाहे हम परिवार को लें या समाज को या विद्यालय को, वर्तमान युग में सभी जगह जो अभाव दिख रहा है, वह है मूल्यों व आदर्शों का अभाव। दिन-प्रतिदिन हम मूल्यविहीन होते जा रहे हैं व जिसका परिणाम है हमारा नैतिक व चारित्रिक पतन। आज का समाज छात्रों के समक्ष कोई ठोस

आदर्श प्रस्तुत कर सकने में असमर्थ है। आज के भौतिकवादी युग में आदर्शवादी व्यक्ति का परिहास उड़ाया जाता है और मनुष्य ने अपने आपको भौतिकता की दौड़ में खड़ा कर दिया है जिसका परिणाम अनुशासनहीनता के रूप में दृष्टिगोचर होता है। भारतवर्ष के अन्दर अनुशासनहीनता के कारणों पर डॉ० जसवन्तसिंह का क्या विचार है, हम अब इसकी चर्चा करेंगे।

डॉ० जसवन्त सिंह के अनुसार -

1. असुरक्षा की भावना,
 2. संवेगात्मक कठिनाइयाँ,
 3. अनुपयुक्त पारिवारिक प्रभाव,
 4. प्रशासन में दोषपूर्ण नीतियाँ,
 5. शिक्षण का निम्न स्तर।
1. आज का विद्यार्थी विद्यालय वातावरण में अपने आपको सुरक्षित अनुभव करता है, चूँकि अध्यापक का बालकों के प्रति व्यवहार स्नेह व सहानुभूतियुक्त नहीं है, वरन् ईर्ष्या व बदले से परिपूर्ण है। अध्यापक जो चाहता है यदि छात्र व नहीं कर पाते तो परिणाम होता है उनके परीक्षाफल को बिगाड़ना। इस भय से भयभीत छात्र आक्रोश में संगठित हो जाते हैं व असामाजिक व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं जो अनुशासनहीनता को जन्म देता है।
 2. बालक के अन्दर संवेगों का उचित रूप से विकास हो, इसकी जिम्मेदारी परिवार के सदस्यों एवं विद्यालय दोनों पर ही है। परन्तु दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि न तो परिवार और न ही विद्यालय बालक के संवेगों को उचित प्रशिक्षण देने में सहायक हैं। संवेगों का दोषपूर्ण विकास बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है और जिसका परिणाम होता है छात्रों द्वारा किया गया अभद्र व्यवहार।
 3. परिवार के वातावरण में आज तनाव चरम सीमा पर विद्यमान है। यह तनाव माँ-बाप के सम्बन्धों को लेकर हो सकता है या फिर परिवार में विद्यमान आर्थिक परिस्थितियों के कारण अथवा बदलते हुए मूल्यों के कारण। तनाव किसी भी कारण से हो, इन तनावों का बालक के व्यक्तित्व के समायोजन पर बहुत ही खराब प्रभाव पड़ता है और उचित दिशा-निर्देशन के अभाव में बालक दिशाविहीन हो जाता है।
 4. आज के प्रशासन का सबसे बड़ा दोष है कि प्रशासन द्वारा बनाई गई नीतियों को बालक के ऊपर लादा जाता है और इसका परिणाम कई बार यह होता है कि बालक की इच्छाओं व अभिलाषाओं का दमन हो जाता है। बालक ऐसी परिस्थिति में कुछ कर नहीं पाता व उसकी हालत होती है “खिसियानी बिल्ली खम्भा नोंचे” अर्थात् वह आक्रोश की अभिव्यक्ति अनुशासनहीनता के रूप में करता है।

5. प्रभावहीन शिक्षण एवं विद्यालय में विद्यमान अस्वास्थ्य एवं शिथिल वातावरण अनुशासनहीनता का एक प्रबल कारण है। आज का अध्यापक कक्षा में पूर्ण तैयारी के साथ नहीं आता है। वह दलगत राजनीति में व्यस्त रहता है और परिणाम होता है छात्रों द्वारा उस अध्यापक का विद्रोह करने हेतु अनुचित मार्ग अपनाना। जो अध्यापक कक्षा में पढ़ाते भी है, वह अपने ज्ञान प्रदान करने के तरीके को इतना नीरस रूप दे देते हैं कि छात्र कक्षा में ही ऊबने लगता है। बालक ऐसी परिस्थिति में अवांछनीय व्यवहार प्रदर्शित करने लगाता है।

19.4 विद्यालय में अनुशासनहीनता के कारण

विद्यालय में अनुशासन हीनता के निम्नलिखित कारण हैं -

1. पढ़ने में रुचि न होना,
2. बुरी आदतों का विकास,
3. अनुचित पाठ्यक्रम,
4. आवश्यकता से अधिक नियन्त्रण,
5. व्यक्तिगत भिन्नता की उपेक्षा,
6. अमनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धति,
7. छात्रों की अधिक संख्या,
8. बालकों में अधिक प्रतिस्पर्धा होना,
9. उचित अध्यापकों का अभाव,
10. पर्याप्त साधनों का अभाव।

छात्रों में कक्षा के अन्दर जो अनुशासनहीनता पायी जाती है, उसके प्रमुख कारणों में प्रथम है - बालक के अन्दर पढ़ने की रुचि न होना ! रुचि व ध्यान का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जब बालक रुचि के अनुकूल शैक्षिक कार्यक्रम नहीं होगा तो वह पढ़ने में ध्यान भी नहीं लगायेगा और कक्षा का वातावरण उसे उबाने वाला लगेगा, जिससे वह अपने समय को व्यर्थ की गतिविधियों में व्यतीत करेगा। दूसरा कारण है छात्रों में गलत आदतों का होना। कभी-कभी अपने साथियों, पड़ोसियों अथवा परिवार के प्रभाव के कारण बालक गलत आदतों का शिकार हो जाता है और यह आदतें अनुशासनहीनता की परिस्थिति उत्पन्न करती हैं। पाठ्यक्रम का दोषपूर्ण होना भी अनुशासनहीनता उत्पन्न करने का एक कारण है। यदि पाठ्यक्रम भविष्य की सुरक्षा से विमुख रहेगा तो बच्चे पढ़ने में उत्साह नहीं दिखायेंगे। चतुर्थ कारण है - बालक पर अधिक नियन्त्रण होना। यदि अध्यापक छात्रों पर सदैव डाँट लगाता है व उन्हें चुप रहने को कहता है तो बच्चे विद्रोही हो उठते हैं व जान-बूझकर शोर मचाते हैं। बालक को पढ़ाते समय व्यक्तिगत रुचियों, योग्यताओं व क्षमताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए अन्यथा यह अनुशासनहीन व्यवहार का प्रदर्शन करने लगेंगे। अनुशासनहीनता को उत्पन्न करने का छठवाँ कारण है - अमनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धतियाँ। शिक्षण

पद्धतियाँ विभिन्नताओं व रोचकताओं से परिपूर्ण होनी चाहिए। घिसी-पिटी शिक्षण पद्धतियाँ पाठ को रोचक व प्रभावपूर्ण बनाने में असमर्थ रहती हैं, जिससे अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न होती है। एक प्रमुख कारण जो आज के विद्यालयों में विद्यमान है, वह है कक्षा के छात्रों की अधिक संख्या होना। एक कक्षा में जब आवश्यकता से अधिक छात्र बैठाये जाते हैं तो समायोजन की समस्या उत्पन्न होने लगती है और यह आगे चलकर अनुशासनहीनता को जन्म देती है। इस सन्दर्भ में आठवाँ कारण है - बालकों में अधिक प्रतिस्पर्धा का होना। प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप छात्रों में ईर्ष्या भाव उत्पन्न हो जाता है जो अनुशासन को भंग करने में सक्रिय भूमिका अदा करता है। एक मुख्य कारण जो अनुशासनहीनता को उत्पन्न करता है, वह है उचित प्रकार के अध्यापकों का अभाव। आज का अध्यापक भौतिकवादी व स्वार्थी होता जा रहा है। वह स्वयं ही जब मूल्यविहीन है तो बच्चों को किस प्रकार सही दिशा प्रदान कर सकेगा ? अन्तिम कारण है - विद्यार्थियों को उपयुक्त सुविधाएँ न मिलना। यदि कक्षा में छात्रों के बैठने हेतु उचित व्यवस्था नहीं है, कक्षा में हवा, प्रकाश आदि की व्यवस्था उचित नहीं है व पंखे, बिजली इत्यादि नहीं है तो भी छात्र उत्तेजित होकर अनुशासनहीन हो उठता है।

19.4.1 विद्यालय से बाहर अनुशासनहीनता के कारण

1. परिवार का प्रभाव,
2. विद्यालय की भौतिक स्थिति,
3. विद्यालय में पर्याप्त साधनों का अभाव,
4. अध्यापकों की स्थिति,
5. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का अभाव,
6. नैतिक शिक्षा का अभाव
7. राजनैतिक प्रभाव
8. दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली,
9. विद्यार्थी संघों की स्थापना,
10. विद्यालय में अध्यापकों के दोषपूर्ण सम्बन्ध।

परिवार की सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति भी अनुशासनहीनता को जन्म देती है। यदि माता-पिता में सम्बन्ध अच्छे नहीं है या उनका बच्चों के प्रति व्यवहार खराब है अथवा परिवार की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक नहीं है तो यह सब परिस्थितियाँ बालक को अनुशासनहीन बना देती हैं। वह उग्र रूप धारण कर लेता है व नियमों का उल्लंघन करने में संतोष का अनुभव करता है। आज तो विद्यालय ज्ञान के विक्रय की दुकान बन गये हैं। इस कारण जो विद्यालय स्थापना का प्राचीन सम्बन्ध था, वह भी सम्बोध होता जा रहा है। पहले विद्यालय खुले वातावरण में स्थापित किये जाते थे, जहाँ विद्यार्थी का मन आवश्यक बातों में न उलझे, पर आज विद्यालय शहर की घनी व गन्दी बस्तियों में जहाँ तरह-तरह की चीजें उपलब्ध रहती हैं जिसमें विद्यार्थी का मन विचलित हो सकता है। विद्यार्थी को

यदि विद्यालय में उचित सुविधाएँ प्रदान नहीं की जाएंगी, यथा-पानी, शौचालय आदि तो भी छात्र अनुशासनहीन हो सकता है। चौथा कारण है - अध्यापकों की स्थिति। आज अध्यापकों की स्थिति में सुधार अवश्य आया है परन्तु अमीर वर्ग के लिए वह अभी भी “बेचारा मास्टर” ही है। उनकी दृष्टि में अध्यापक की वह इज्जत नहीं जो अन्य व्यवसाय वालों की है। अतः इस इज्जत को प्राप्त करने हेतु अध्यापक ट्यूशन करता है, जिसका प्रभाव छात्र वर्ग पर नकारात्मक पड़ता है। छात्रों के मध्य अनुशासनहीनता को जन्म देने का पाँचवाँ कारण है - विद्यालय के पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का आयोजित न होना। यह क्रियाएँ दो दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं- एक तो यह बालक के संवेगों व मनोभावों को सन्तुष्ट करती है, दूसरे, बालक सैद्धान्तिक क्रियाओं से थोड़ी देर के लिए व्यवहारिक व मनोरंजक क्रियाओं में संलग्न होकर अपना समय व्यतीत करता है। आज अनुशासनहीनता का छठवाँ प्रमुख कारण है - बालक को नैतिक शिक्षा के ज्ञान से दूर रखना। बालक को प्रारम्भ से ही इस बात से अनभिज्ञ व्यवहार रखा जाता है कि उसके लिए उचित-अनुचित क्या है और इसके अभाव में वह अवांछनीय व्यवहार का प्रदर्शन कर देता है। अनुशासनहीनता का सातवाँ और प्रमुख कारण है- विद्यालय में राजनैतिक प्रभाव। आज का चाहे छात्र हो या अभिभावक या अध्यापक, सभी अपनी दलगत राजनीति को विद्यालय में प्रवेश देते हैं और इसका भयंकर परिणाम हमें अनुशासनहीनता के रूप में भुगतान पड़ता है। दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली भी अनुशासनहीनता को जन्म देती है। पूरे वर्ष छात्र पढ़ता नहीं है, उपद्रवों से संलग्न रहता है परन्तु अध्यापक उसको कुछ दण्ड नहीं दे सकते। वह जोर-जबरदस्ती नम्बर बढ़वा लेता है। छात्र संघ बनाना भी अनुशासनहीनता को जन्म देते हैं। जितने भी छात्र नेता हैं, वह उपद्रव करना व करवाना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। इसमें दसवाँ और अन्तिम कारण है - विद्यालय में अध्यापकों के मध्य दोषपूर्ण सम्बन्ध होना। कभी-कभी अध्यापक आपसी दुश्मनी से ग्रसित होकर बदला लेना चाहते हैं व उसमें वह छात्रों की मदद लेते हैं। यह छात्र अध्यापकों का अपने ऊपर वरदहस्त देखते हैं व कोई भी गलत कार्य करने से डरते नहीं हैं।

19.5 विद्यालय व विद्यालय से बाहर अनुशासन की आवश्यकता व महत्व (Need and Importance of Discipline in and out of School)

विद्यालय के अन्दर छात्रों व अध्यापकों में आपसी सहयोग, सम्मान व त्याग की भावना का होना अति आवश्यक है। यदि सम्मान की भावना में गिरावट आती है तो वहाँ पर अनुशासन की भावना समाप्त हो जाती है। जिसका परिणाम कक्षा से पलायन या कक्षा में देर से आना, अध्यापक के पढ़ाते समय आपस में बात करना, गृह कार्य या कार्य न करना, झूठ बोलना, चोरी करना, कहना न मानना, धोखा देना, ध्यान न देना, अनुत्तरदायित्व की भावना से कार्य करना, अध्यापक का अपमान करना, उन्हें अपशब्द कहना, दीवारों पर गन्दी बातें लिखना आदि बातें विद्यालय के अन्दर अनुशासनहीनता के कारण हैं। विद्यालय से बाहर अनुशासन हीनता के कारण हैं - हड़ताल करना,

घेराव करना, काम बन्द करना, आक्रमण करना या लड़ाई-झगड़ा करना, तोड़-फोड़ या आगजनी की घटनाएं आदि अनुशासनहीनता कहलाती है। आज आवश्यकता है ऐसी शिक्षा की जो छात्रों को सही मार्ग की ओर अग्रसर कर सके। क्योंकि यदि अनुशासन नहीं रहेगा तो समाज में अव्यवस्था का वातावरण पैदा हो जाएगा। अतः इसके महत्व को समझकर इस पर ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है अन्यथा समाज अव्यवस्था के गम में चला जायगा।

अपनी उन्नतिजानिए

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. प्रारम्भिक स्तर पर बालक के ऊपर सबसे अधिक प्रभाव का पड़ता है।
2. यदि अध्यापक अनुशासनपूर्ण है व उसमें नेतृत्व करने की पूर्ण क्षमता है तो इस बात का प्रश्न ही नहीं उठता है कि उसका अनुकरण करने वाले छात्र होगा।
3. दिन-प्रतिदिन हम मूल्यविहीन होते जा रहे हैं व जिसका परिणाम है हमारा नैतिक व पतन।
4. आज का समाज छात्रों के समक्ष कोई ठोस आदर्श प्रस्तुत कर सकने में असमर्थ है। आज के भौतिकवादी युग में व्यक्ति का परिहास उड़ाया जाता है।
5. बालक के अन्दर संवेगों का उचित रूप से विकास हो, इसकी जिम्मेदारी के सदस्यों एवं दोनों पर ही है।

19.6 सारांश

विद्यालय में छात्र अपने को असुरक्षित महसूस करता है क्योंकि अध्यापक बालकों के प्रति व्यवहार स्नेह व सहानुभूतिपूर्ण नहीं है। अध्यापक जो चाहता है यदि छात्र वह नहीं कर पते तो छात्र को अनेक स्तर पर इसका परिणाम भुगतना पड़ता है। छात्र में विद्रोह की भावना झलकने लगती है और वह विद्यालय व विद्यालय के बाहर अनुशासन को तोड़ने लगता है। परिवार भी इस अनुशासन के लिए उत्तरदायी है क्योंकि जहाँ पर पारिवारिक वातावरण सौहादपूर्ण नहीं होता है वहाँ बालक अनुशासित नहीं होता है। उसे परिवार का सहयोग प्यार, दुलार नहीं मिला होता है, जिसके कारण वह विद्रोही बन जाता है। अतः शिक्षा के माध्यम से बालक में अनुशासन की भावना कूट-कूट कर भरनी चाहिए तभी वह समाज में अनुशासित जीवन व्यतीत करेगा।

19.7 शब्दावली

विद्यालय के अन्दर अनुशासनहीनता :- विद्यालय के अन्दर छात्रों व अध्यापकों में आपसी सहयोग, सम्मान व त्याग की भावना का होना अति आवश्यक है। यदि सम्मान की भावना में

गिरावट आती है तो वहाँ पर अनुशासन की भावना समाप्त हो जाती है। जिसका परिणाम कक्षा से पलायन या कक्षा में देर से आना, अध्यापक के पढ़ाते समय आपस में बात करना, गृह कार्य या कार्य न करना, झूठ बोलना, चोरी करना, कहना न मानना, धोखा देना, ध्यान न देना, अनुत्तरदायित्व की भावना से कार्य करना, अध्यापक को का अपमान करना, उन्हें अपशब्द कहना, दीवारों पर गन्दी बातें लिखना आदि बातें विद्यालय के अन्दर अनुशासनहीनता के कारण हैं

विद्यालय से बाहर अनुशासनहीनता:- विद्यालय से बाहर हड़ताल करना, घेराव करना, काम बन्द करना, आक्रमण करना या लड़ाई-झगड़ा करना, तोड़-फोड़ या आगजनी की घटनाएं आदि अनुशासनहीनता कहलाती है।

अनुशासनहीनता व आर्थिक कारण :- अनुशासनहीनता का भारतवर्ष में दूसरा कारण है जनसाधारण के समक्ष विद्यमान आर्थिक कठिनाइयाँ। आज का छात्र आकांक्षाओं से युक्त है परन्तु उनको पूरा करने हेतु उनके पास साधन नहीं है तो वह कुंठित हो उठता है और उसकी कुण्ठा का परिणाम अनुशासनहीनता के रूप में व्यक्त होता है। आज की सबसे विषम परिस्थिति यह है कि शिक्षा को भी धनिक लोगों ने खरीद लिया है। जिसके पास पैसा है पर क्षमता नहीं, वह कुछ भी प्राप्त कर सकता है तथा जिसके पास क्षमता है, पैसा नहीं, वह सदैव दयनीय व लाचारी की स्थिति में रहता है।

19.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्रारम्भिक स्तर पर बालक के ऊपर सबसे अधिक प्रभाव अध्यापक का पड़ता है।
2. यदि अध्यापक अनुशासनपूर्ण है व उसमें नेतृत्व करने की पूर्ण क्षमता है तो इस बात का प्रश्न ही नहीं उठता है कि उसका अनुकरण करने वाले छात्र अनुशासनहीन होगा।
3. दिन-प्रतिदिन हम मूल्यविहीन होते जा रहे हैं व जिसका परिणाम है हमारा नैतिक व चारित्रिक पतन।
4. आज का समाज छात्रों के समक्ष कोई ठोस आदर्श प्रस्तुत कर सकने में असमर्थ है। आज के भौतिकवादी युग में आदर्शवादी व्यक्ति का परिहास उड़ाया जाता है।
5. बालक के अन्दर संवेगों को उचित रूप से विकास हो, इसकी जिम्मेदारी परिवार के सदस्यों एवं विद्यालय दोनों पर ही है

19.9 संदर्भ पुस्तकें

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।

-
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठा
 4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
 6. शर्मा, रामनाथ व शर्मा राजेन्द्रकुमार (2006) एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
 7. महावीर विश्वविद्यालय कोटा “ पाठ्यक्रम विकास” ।
-

19.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
 2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
 3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस,मेरठा
 4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 5. डिस्ट्रीब्यूटर्स।
 6. 5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
-

19.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. विद्यालय में अनुशासनहीनता के कारणों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. विद्यालय के बाहर अनुशासनहीनता के कारणों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
3. अनुशासन को बनाये रखने के लिए विद्यालय में क्या-क्या प्रयास किये जाने चाहिए ?
7. “स्वतन्त्रता व अनुशासन दोनों एक दूसरे के सहयोगी हैं”। इस कथन की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

इकाई-20 स्व-अनुशासन का अर्थ, महत्व एवं प्राप्ति (Meaning, Significance and attainment of Self-discipline)

- 20.1 प्रस्तावना
- 20.2 उद्देश्य
- 20.3 आत्म अनुशासन का अर्थ
 - 20.3.1 आत्म अनुशासन का सकुचित अर्थ
 - 20.3.2 अनुशासन का व्यापक अर्थ
- 20.4 परिभाषाएँ
 - 20.4.1 अनुशासन के प्रमुख सिद्धान्त
 - 20.4.2 स्व-अनुशासन की प्राप्ति
- 20.5 अनुशासनहीनता की समस्या को दूर करने के उपाय
 - 20.5.1 आत्म अनुशासन का महत्व
- 20.6 सारांश
- 20.7 शब्दावली
- 20.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 20.9 संदर्भ पुस्तकें
- 20.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें
- 20.11 निबंधात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा स्व-अनुशासन के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। छात्रों में स्व-अनुशासन बनाने की जिम्मेदारी अध्यापक पर निर्भर करती है। अध्यापक का व्यवहार ऐसा हो कि छात्र उसे अपना शुभचिन्तक समझे। किसी छात्र के साथ अध्यापक अव्यवहार न करे। चूँकि इससे उसके आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचती है। यदि छात्र को सम्मान प्राप्त होता है तब वह स्वयं ही

अनुशासित हो जाएगा। क्योंकि जब तक हम स्वयं अनुशासित नहीं होंगे, तब तक हमको कोई भी नियम या कानून अनुशासित नहीं कर सकता। डराकर या भय दिखाकर एक लम्बे समय तक अनुशासित नहीं किया जा सकता है। यदि अनुशासनहीन कोई छात्र अच्छा कार्य करे तो प्रशंसा करनी चाहिए।

20.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

1. स्वअनुशासन का अर्थ व परिभाषाओं को जान सकेंगे।
2. आप स्वयं भी और अधिक अनुशासित हो सकेंगे।
3. अनुशासित जीवन के महत्व को समझ सकेंगे।
4. अनुशासन की उपयोगिता को समझ सकेंगे।

20.3 आत्म अनुशासन का अर्थ (Meaning of disciplin)

अनुशासन का शाब्दिक अर्थ है “आत्म-नियन्त्रण या आत्म-संयमा” इसमें व्यक्ति अपने आवेगों व संवर्गों पर नियन्त्रण रखने की चेष्टा करता है। अनुशासन के लिए अंग्रेजी में डिसिप्लिन (Disciplin) शब्द का प्रयोग होता है जिसका हिन्दी में तात्पर्य है ‘मानसिक अथवा नैतिक प्रशिक्षण नियन्त्रण में लाना’। विद्यालय में अनुशासन से तात्पर्य है कार्य करने का व्यवस्थित ढंग, नियमितता एवं आदेशों का पालन। परन्तु कुछ विचारकों का मानना है कि अनुशासन को हमें सामाजिक व्यवस्था से अलग मानना चाहिए, चूँकि व्यवस्था का सम्बन्ध सिर्फ वर्तमान से होता है, जबकि अनुशासन का सम्बन्ध वर्तमान व भविष्य दोनों से होता है।

आत्म अनुशासन के अर्थ की व्याख्या भी हम दो प्रकार से कर सकते हैं-

1. आत्म अनुशासन का संकुचित अर्थ,
2. आत्म अनुशासन का व्यापक अर्थ।

20.3.1 आत्म अनुशासन का संकुचित अर्थ

अनुशासन के संकीर्ण अर्थ के अन्तर्गत हम अनुशासन हेतु अपनाई अधिकारपूर्ण प्रणाली को निहित करते हैं। इस विचाराधारा के मानने वाले यह कहते थे कि डण्डे की सहायता से अनुशासन अच्छी प्रकार से स्थापित किया जा सकता है। इनकी मान्यता थी कि “Spare the rod and spoil the child”. अनुशासन में हम समर्पण भाव, नियमों का पालन, इच्छाओं का दमन आदि निहित करते थे और यदि कोई भी बालक नियमों का उल्लंघन करता था तो उसे शारीरिक दण्ड दिया जाता था। शक्ति व दबाव द्वारा अनुशासन बनाये रखना सर्वोत्तम समझा जाता था। इसमें अनुशासन को

नकारात्मक रूप में अधिक देखा जाता था। बालक को जरा-सी भी स्वन्त्रता नहीं दी जाती थी, वरन् उसे भय व यातना द्वारा अनुशासित किया जाता था।

20.3.2 आत्म अनुशासन का व्यापक अर्थ

20 अनुशासन का व्यापक अर्थ अनुशासन को एक सकारात्मक प्रक्रिया के रूप में देखता है। इनके अनुसार बालक पर प्रेम व सहानुभूति के द्वारा नियन्त्रण होना चाहिए। उसे भयभीत या शरीरिक रूप से दंडित नहीं करना चाहिए, न ही उसे यातनाएँ देनी चाहिए। सच्चा अनुशासन तभी प्राप्त किया जा सकता है, जबकि विद्यार्थी की हार्दिक स्वीकृति प्राप्त की जा सके तथा वह स्वयं जो कुछ उचित है, वह किया जाता है, उसका औचित्य समझ सके। वास्तव में अनुशासन कोई ऊपर से लादी हुई भावना नहीं है, वरन् यह व्यक्ति के स्वयं से जाग्रत हुई भावना है अर्थात् व्यक्ति पर जबरदस्ती नियन्त्रण नहीं करना है। उसे स्वयं ही अपने ऊपर आत्मनियन्त्रण करना है। इस प्रकार के अनुशासन में बाह्य तत्वों भय व दण्ड का कोई स्थान नहीं होता है।

20.4 आत्म अनुशासन की परिभाषाएँ (Definitions of Discipline)

1. टी0पी0 नन के अनुसार - “अनुशासन के अन्तर्गत व्यक्ति की प्रवृत्तियों, भावनाओं एवं शक्तियों का नियमों के अनुसार ढालना सम्मिलित है, जिसमें अव्यवस्था के स्थान पर व्यवस्था, अपव्यय के स्थान पर मितव्ययता तथा प्रभावहीनता के स्थान पर कुशलता लायी जा सके।”

2. बी0के0 जोशी के अनुसार - “अनुशासन एक शिष्ट आचारण है जो सामंजस्य, आनन्द, उत्तरदायित्व का उच्च प्रकार का बोध, बड़ों के प्रति आदर भाव, व्यवस्था के प्रति प्रेम, नियमितता के साथ कर्तव्यपालन, दूसरों की सहायता करने की इच्छा तथा विषम परिस्थितियों में मानसिक सन्तुलन में सहायक हो सकेंगे।

20.4.1 अनुशासन के प्रमुख सिद्धान्त (Main Theories of Discipline)

विभिन्न विचारकों ने अनुशासन के प्रमुख तीन सिद्धान्त बताये हैं जो निम्न हैं-

1. दमनात्मक सिद्धान्त (Repressionistic)
2. प्रभावात्मक सिद्धान्त (Impressionistic)
3. मुक्त सिद्धान्त (Emancipationistic)

1. दमनात्मक अनुशासन सिद्धान्त (Repressionistic Discipline Theory)

इस सिद्धान्त के अनुसार अनुशासन भय व कठोर नियमों के द्वारा लाया जा सकता है। बालक को जरा भी स्वतन्त्रता नहीं दी जानी चाहिए। हर पल उसकी गतिविधियों पर नियन्त्रण रखना चाहिए और नियमों का पालन करने की आदत उसके अन्दर उत्पन्न की जाती है। यह सिद्धान्त प्राचीन विचारधारा पर आधारित है, जो यह मानती है कि यदि हम बालक को सही व्यवहार का प्रशिक्षण देना चाहते हैं तो हमें उसकी मूलप्रवृत्तियों पर नियन्त्रण रखना होगा व उसके चिन्तन एवं व्यवहार को वांछनीय दिशा की ओर मोड़ना होगा। इनका मत है, “Spare the rod and spoil the child” इसके पक्ष में निम्न तर्क दिये जाते हैं -

दमनात्मक अनुशासन पक्ष में तर्क

1. बालक को शिक्षित करने का भय व दण्ड से अच्छा कोई भी तरीका नहीं है।
2. दण्ड द्वारा हम बालक के गलत से गलत व्यवहार को नियन्त्रित कर सकते हैं।
3. दण्ड का भय छात्रों को असामाजिक गतिविधियों से परे रखता है।
4. बहुत से लोगों का विचार है ‘भय बिनु होय न प्रीति’ अर्थात् यदि बालक में हम अनुशासन के प्रति लगाव उत्पन्न करना चाहते हैं तो हमें उसके अन्दर भय की भावना उत्पन्न करनी होगी।

दमनात्मक अनुशासन-विपक्ष में तर्क

1. दमनात्मक भावना छात्रों में घृणा व विद्रोह को जन्म देती है, जिससे बालक अनुशासनहीन हो जाता है।
2. बालक को लगातार दण्ड देने का परिणाम यह भी हो सकता है कि उसके अन्दर पलायन की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाए और वह पढ़ाई छोड़ दे।
3. दमनात्मक अनुशासन बालक के स्वाभाविक विकास में गतिरोध उत्पन्न कर देता है।
4. भावनाओं का दमन करना बालकों के अन्दर मानसिक ग्रन्थियों को उत्पन्न कर देता है।
5. दमनात्मक अनुशासन विस्मृति को जन्म देता है।
6. डर के कारण बालक थोड़े समय नियन्त्रण में रह सकता है परन्तु सदैव नहीं।
7. यह अनुशासन को बाह्य रूप में प्रस्तुत करता है, आन्तरिक रूप में नहीं।
8. यह स्वतन्त्रता का विरोधी है।

2 प्रभावात्मक अनुशासन सिद्धान्त (Impressionistic Discipline Theory)

यह आदर्शवादी विचारधारा पर आधारित है। इनका मानना है कि अध्यापक द्वारा छात्रों को किसी भी प्रकार का दण्ड देना त्याज्य है। अध्यापक का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली होना चाहिए कि वह कक्षा में व्यवस्था बनाये रखे। उसकी योग्यता, चरित्र व व्यवहार बच्चों के समक्ष एक आदर्श के रूप में होना चाहिए जिससे बच्चे जब उसका अनुकरण करें तो वह

स्वतः ही अनुशासन का अनुपालन करें। उसे अनुशासन का पालन करने को कहा जाए। इनका विचार है कि यदि अध्यापक का व्यक्तित्व प्रभावशाली है तो कक्षा में अनुशासनहीनता की समस्या के उत्पन्न होने का कोई प्रश्न नहीं है यदि कभी इस प्रकार की कोई समस्या आये भी तो अध्यापक को प्रेम व सहानुभूति से उसका समाधान करना चाहिए।

प्रभावात्मक अनुशासन-पक्ष में तर्क

1. इसमें अध्यापक का छात्रों के प्रति प्रेम, सहानुभूति का दृष्टिकोण होता है व छात्र अध्यापक का आदर करते हैं। इससे शैक्षिक विकास की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप में चलती है।
2. इसमें छात्र अध्यापक का अनुकरण करते हैं व वांछनीय व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं।
3. यह स्वतंत्रता एवं अधिनायक दमनात्मक अनुशासन का मध्यवर्गीय मार्ग है। अतः बालक का विकास सामान्य एवं स्वाभाविक रूप में होता है।
4. इसमें छात्रों की प्रगति व उन्हें सिखाने के उद्देश्य से सम्मानपूर्वक सुझाव (Prestige Suggestions) दिये जाते हैं।
5. यह बालक को आत्म-अनुशासन हेतु प्रेरित करता है।

प्रभावात्मक अनुशासन-विपक्ष में तर्क

1. यह अनुशासन अध्यापक को बहुत अधिक महत्व देता है जिससे अध्यापक में यह घमण्ड पैदा हो जाता है कि वही बालक के चरित्र निर्माण का एकमात्र आधार है।
2. इसमें बालक का विकास उसमें निहित क्षमताओं के आधार पर नहीं किया जाता जिससे उसमें वह गुण विकसित नहीं हो पाते जिन्हें विकसित होना चाहिए।
3. इसमें बालक अध्यापक का पूर्णतया अनुकरण करके स्वयं को उसके अनुकूल बना लेता है व अपनी मानसिक स्वतन्त्रता खो बैठता है।
4. बालक अध्यापक का अंधानुकरण करता है व स्वतंत्र चिन्तन, समझ व आत्म प्रकाश की क्षमता को खो देता है।
5. आज के युग में एक ऐसा आदर्श अध्यापक प्राप्त करना मुश्किल है जो बालक के समक्ष एक मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया जा सके।

3. मुक्त अनुशासन सिद्धान्त (Emancipationistic Discipline Theory)

यह सिद्धान्त बालक को स्वतन्त्र या मुक्त रूप से छोड़ने पर बल देता है और यह मानता है कि बालक का अच्छा होना या बुरा होना उसकी जन्मजात विशेषताओं पर निर्भर करता है। इसी कारण हमें बालक को स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए। उसमें नैतिकता व मूल्यों का विकास या तो स्वतः ही हो जाएगा या दिव्य शक्तियाँ उसे इस प्रकार के विकास हेतु प्रेरित करेंगी। इनका विचार है कि बालक को अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों, रुचियों व योग्यताओं के अनुकूल विकसित होने के पूर्ण अवसर मिलें। इसके लिए यह आवश्यक है कि बालक को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाये।

मुक्त अनुशासन-पक्ष में तर्क

1. इसमें बालक को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाता है। अतः वह 'करके सीखना' व 'अनुभव के आधार' पर सीखता है और अपने अन्दर आत्म-अनुशासन, आत्म-विश्वास आदि गुणों को स्वाभाविक रूप में विकसित कर लेता है।
2. 'स्वतन्त्रता मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है' अतः उसके ऊपर अनावश्यक नियन्त्रण रखना अवांछनीय है।
3. बालक ईश्वर स्वरूप होता है। उसकी स्वतन्त्रता का हनन करना पाप है।
4. इससे बालक में किसी प्रकार का संवेगात्मक तनाव उत्पन्न नहीं होता है। अतः वह मानसिक व शारीरिक रूप से स्वस्थ होता है।

मुक्त अनुशासन-विपक्ष में तर्क

1. बालक जन्म के समय पाशविक प्रवृत्तियों को लेकर उत्पन्न होता है और यदि हम उसे पूर्णतया स्वतन्त्र छोड़ देंगे तो वह उनके प्रदर्शन द्वारा स्वयं को व समाज को हानि पहुँचा सकता है।
2. बालक अच्छे व बुरे में भेद नहीं कर पाता है। इस कारण उसकी क्षमताओं के उचित विकास हेतु उसका किसी परिपक्व व्यक्ति द्वारा मार्ग-दर्शन किया जाना जरूरी है।
3. आवश्यकता से अधिक स्वतन्त्रता बालक को अधिकारोन्मुख बना देती है। जिससे वह कर्तव्यों व दायित्वों का निर्वाह करने से बचने लगता है।
4. स्वतन्त्रता बालक के अन्दर आत्म-केन्द्रित होने की भावना उत्पन्न कर देती है जिससे वह दूसरों के प्रति लापरवाह हो जाता है।
5. कोई भी बालक जन्मजात रूप में आत्म-नियन्त्रित या आत्म-अनुशासित नहीं होता। यह भावना उसके अन्दर समाज में उत्पन्न की जाती है।

20.4.2 स्व अनुशासन की प्राप्ति

1. अनुशासन सम्बन्धी नीतियाँ शिक्षा के सम्पूर्ण उद्देश्यों के साथ सामंजस्यपूर्ण होनी चाहिए अथवा उन्हें शिक्षा के उद्देश्यों के अनुरूप होना चाहिए।
2. अनुशासन सदैव सकारात्मक उपायों द्वारा स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। अध्यापक का उद्देश्य सुधारात्मक होना चाहिए। इस कारण नकारात्मक अनुशासन का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।
3. प्रेम द्वारा अनुशासन स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। भय द्वारा नहीं। प्रेम द्वारा हम बुराई को अच्छाई में परिणित कर सकते हैं। भय से हम बुराई को थोड़े समय के लिए दबा सकते हैं, उसका अन्त नहीं कर सकते।
4. अनुशासन स्थापित करने में विद्यार्थियों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। इससे बालक शनैः-शनैः स्वानुशासन के गुण को सीख जाएंगे।

5. अनुशासन द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण व सुरक्षा के सिद्धान्त की पूर्ति होनी चाहिए। चूँकि अन्याय व पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण अनुशासनहीनता को जन्म दे सकता है।
6. अनुशासन हेतु बालक में आत्मानुभूतियों का भाव होना भी आवश्यक है चूँकि स्वानुभूति स्वानुशासन में सहायक होती है।
7. अध्यापक, छात्रों व अभिभावकों में परस्पर सद्भाव भी अनुशासन में सहायक होता है। इस कारण विद्यालय में मानवीय सम्बन्धों को दृढ़ एवं मधुर बनाया जाना चाहिए।
8. अनुशासन हेतु विद्यालय के प्रबन्ध एवं प्रशासन सम्बन्धी कार्यों में छात्रों का समुचित रूप में भाग लेना चाहिए।
9. छात्रों को अभिव्यक्ति के पर्याप्त अवसर मिलने चाहिए जिससे यदि छात्रों में कुछ असन्तोष हो तो अपनी बात कह सकें। यदि उन्हें अभिव्यक्ति के अवसर नहीं मिलेंगे तो वह तोड़-फोड़ या अन्य असामाजिक गतिविधियों की ओर उन्मुख हो सकते हैं।
10. अनुशासन हेतु यह भी आवश्यक है कि पाठ्यक्रम छात्रों की क्षमताओं आवश्यकताओं व अभियोग्यताओं के अनुरूप हो जिससे उनका पढ़ने में मन लगे।

20.5 अनुशासनहीनता की समस्या को दूर करने के उपाय

डब्लू० पी० शोरिन ने अनुशासनहीनता को समाप्त करने हेतु तीन प्रकार की अनुशासनात्मक क्रियाओं पर बल दिया है जो इस प्रकार हैं -

1. रचनात्मक अनुशासन
 2. सुधारात्मक अनुशासन
 3. उपचारात्मक अनुशासन
1. रचनात्मक अनुशासन (Constructive Discipline) - बालक में स्वाभाविक रूप से आत्म-अनुशासन या आत्म-नियन्त्रण की भावना उत्पन्न हो, इसके लिए हमें निम्न बातों का ध्यान रखना होगा -
 - a. बालक के लिए बहुत अधिक कार्यों को वर्जित नहीं करना।
 - b. बालक में ऐसी भावनाओं का विकास करना कि वह अपने अधिकारों के साथ-साथ अपने दायित्वों को भी समझे।
 - c. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में अधिक भाग लेने के अवसर देना।
 - d. छात्रों को सभी कार्यों में सहयोग करने हेतु अभिप्रेरित करना।
 - e. विद्यालय में बालक की वैयक्तिकता को पूर्ण सम्मान मिलना चाहिए।
 - f. अध्यापक बालक की रुचि व आवश्यकताओं को समझे व उनकी पूर्ति कर हर सम्भव प्रयास करे।

- g. विद्यालय के आदर्श व परम्पराओं व अनुशासन बनाये रखने में अपनी सक्रिय भूमि का अदा करे और अध्यापक का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली हो कि छात्र उसका अनुपालन करके अनुशासन की ओर अग्रसित हों।
- h. पाठ्यक्रम में सुधार लाना चाहिए।
- i. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएं आयोजित की जानी चाहिए।

2. सुधारात्मक अनुशासन (Preventive Discipline)

- a. अध्यापक को अपने सभी छात्रों को उनके नाम से पहचानना चाहिए।
- b. पढ़ाने समय अध्यापक की दृष्टि सम्पूर्ण कक्षा की ओर समान रूप से केन्द्रित होनी चाहिए।
- c. छात्रों के बैठने की व्यवस्था आरामदायक हो।
- d. जो बच्चे ध्यान न दे रहो हों, उन पर विशेष ध्यान दिया जाये।
- e. पढ़ाने का रोचक तरीका अपनाना चाहिए।
- f. अध्यापक का व्यवहार ऐसा हो कि छात्र उसे अपना शुभचिन्तक समझें।
- g. जो बच्चे कक्षा में अनुशासनहीनता उत्पन्न करें, उनको मनोवैज्ञानिक ढंग से सुधारा जाये जिससे वह कार्य में सहयोग दें।
- h. किसी भी छात्र के साथ अध्यापक अभद्र व्यवहार न करें चूँकि इससे उसके आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचती है।
- i. अध्यापक को प्रारम्भ में गम्भीर व अनुशासन में स्वयं भी रहना चाहिए। प्रारम्भ की थोड़ी-सी ढील छात्रों के व्यवहार को बिगाड़ सकती है।
- j. अध्यापक को कक्षा के मध्य में खड़ा होना चाहिए।
- k. विद्यालय भवन स्वच्छ व व्यवस्थित हो।
- l. विद्यालय में छात्रों की मुख्य आवश्यकताओं जैसे- पानी, शौचालय, बिजली, पंखा की व्यवस्था उचित हो।
- m. विद्यालय परिवेश को राजनीति से दूर रखना चाहिए।

3. उपचारात्मक अनुशासन (Remedial Discipline) - उपचारात्मक अनुशासन का अभिप्राय है जो छात्र अनुशासनहीन हो चुका है, उसे कैसे सुधारा जाये। इसके अन्तर्गत दो बातें मुख्य हैं -

1. निदान (Diagnosis)
2. उपचार (Treatment)

निदान के अन्तर्गत हम अनुशासनहीनता के कारण जानते हैं और उपचार में उन कारणों का निवारण करते हैं। इसमें हमें निम्न बातों को निहित करना होगा -

1. जब तक ऐसे बच्चों का सुधार न हो जाए, उन्हें अन्य छात्रों से पृथक् रखा जाये।
2. इनसे इनके गलत व्यवहार का कारण पूछा जाये व उसे धैर्यपूर्वक सुना जाए।
3. इन्हें इनके अपराध का पूर्ण ज्ञान करा दिया जाए व प्रारम्भ में पश्चाताप करने को बाध्य न किया जाए।
4. इन्हें दण्ड बहुत ही सोच-विचार कर दिया जाए।
5. इनके अपराध की चर्चा अन्य व्यक्तियों के समक्ष नहीं की जानी चाहिए।
6. बालक को सुधारने हेतु उसके अभिभावकों का भी सहयोग लिया जाना चाहिए।
7. इन्हें बहुत अधिक डाँटना-फटकारना नहीं चाहिए, न ही इनके प्रति घृणात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिए।
8. ऐसे छात्रों पर हँसना नहीं चाहिए।
9. इनकी छोटी त्रुटियों पर गम्भीरता की प्रक्रिया नहीं होनी चाहिए।
10. यदि अनुशासनहीन छात्र कोई अच्छा कार्य करे तो उसकी प्रशंसा होनी चाहिए।
11. इनके प्रति नकारात्मक भाव नहीं, वरन् सुधारात्मक भाव होना चाहिए।

20.5.1 आत्म अनुशासन का महत्व

विभिन्न तथ्यों का अवलोकन करने पर हम इसके महत्व को समझ गए कि आत्मअनुशासन हमारे लिए कितना महत्वपूर्ण है। हमें अपने अन्दर स्वयं ही आत्म अनुशासन का भाव जाग्रत कर अपना जीवन अनुशासित रूप में बिताना चाहिए। आत्म अनुशासित व्यक्ति को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती है। अन्य व्यक्ति भी उससे प्रेरणा लेकर अनुशासित जीवन व्यतीत करते हैं। अतः स्वतन्त्रता के साथ अनुशासित जीवन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

अपनी उन्नति जानिए

1. अनुशासन के दो सिद्धान्तों के नाम लिखिए।
2. दमनात्मक अनुशासन के पक्ष दे तर्क लिखिए।
3. प्रभावात्मक अनुशासन के पक्ष में एक तर्क लिखिए।
4. मुक्त अनुशासन के पक्ष में एक तर्क लिखिए।
5. मुक्त अनुशासन के विपक्ष में एक तर्क लिखिए।

20.6 सारांश

बालक इस संसार में अपनी रूचियों व मनोवृत्तियों का प्रकटीकरण करने के लिए स्वतंत्र है। उस पर कोई भी नियंत्रण लगाना निषेध है वास्तव में यदि देखा जाए तो बालक के अन्दर प्रारम्भ में इतनी समझ नहीं होती कि वह सही-गलत, अच्छे-बुरे या उचित अनुचित के मध्य अन्तर कर सके

और इन परिस्थितियों में इस बात की पूर्ण सम्भावना रहती है कि बालक अपना प्रदर्शन नियंत्रणविहीन होकर करे। ऐसे समय ही बालक को सही मार्ग दर्शन की आवश्यकता है। उसको अनुशासन का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए। अनुशासन भी ऐसा हो जो बच्चों को स्वअनुशासन की प्रेरणा प्रदान करे। बालक हो या बड़ा उसमें स्वअनुशासन की भावना प्रफुल्लित होनी चाहिए। वह स्वअनुशासन के लिए स्वतःप्रेरित हो।

स्वअनुशासन से अन्य व्यक्ति को किसी प्रकार की हानि न पहुँचने की सम्भावना है, साथ ही इससे हमारे समाज में सम्मान की प्राप्ति भी होगी। इससे हमारा जीवन सुचारू रीति से चलता रहेगा तथा सम्पूर्ण समाज स्वयं ही आनन्दमय प्रतीत होगा।

20.7 शब्दावली

अनुशासन:- अनुशासन एक शिष्ट आचारण है जो सामंजस्य, आनन्द, उत्तरदायित्व का उच्च प्रकार का बोध, बड़ों के प्रति आदर भाव, व्यवस्था के प्रति प्रेम, नियमितता के साथ कर्तव्यपालन, दूसरों की सहायता करने की इच्छा तथा विषम परिस्थितियों में मानसिक सन्तुलन में सहायक हो सकेंगे।

दमनात्मक अनुशासन सिद्धान्त (Repressionistic Discipline Theory):-

इस सिद्धान्त के अनुसार अनुशासन भय व कठोर नियमों के द्वारा लाया जा सकता है। बालक को जरा भी स्वतन्त्रता नहीं दी जानी चाहिए। हर पल उसकी गतिविधियों पर नियन्त्रण रखना चाहिए और नियमों का पालन करने की आदत उसके अन्दर उत्पन्न की जानी चाहिए। यह सिद्धान्त प्राचीन विचारधारा पर आधारित है।

20.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तर 1. अनुशासन के दो प्रमुख सिद्धान्त -
 - I. दमनात्मक सिद्धान्त (Repressionistic)
 - II. प्रभावात्मक सिद्धान्त (Impressionistic)
2. I बालक को शिक्षित करने का भय व दण्ड से अच्छा कोई भी तरीका नहीं है।
II दण्ड का भय छात्रों को अस्वाभाविक गति विधियों से दूर रखता है।
3. यह बालक को आत्म अनुशासन हेतु प्रेरित करता है।
4. बालक ईश्वर स्वरूप है उसकी स्वतन्त्रता का हनन करना पाप है।
5. स्वतन्त्रता बालक के अन्दर आत्म केन्द्रित होने की भावना उत्पन्न कर देती है, जिससे वह दूसरों के प्रति लापरवाह हो जाता है।

20.9 संदर्भ पुस्तकें

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठा।
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. शर्मा, रामनाथ व शर्मा राजेन्द्रकुमार (2006) एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
7. महावीर विश्वविद्यालय कोटा “ पाठ्यक्रम विकास” ।

20.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

1. पाण्डे (डॉ) रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
2. सक्सेना (डॉ) सरोज, शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. मित्तल एम.एल.(2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस,मेरठा।
4. शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. सलैक्स (डॉ) शीलू मैरी (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली ।

20.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. शिक्षा में अनुशासन की धारणा पर एक निबन्ध लिखिए ।
2. “अनुशासन और स्वतन्त्रता में समाज और शिक्षा के क्षेत्र में कोई विरोध नहीं है।” क्या आप इस कथन से सहमत है ? अपने उत्तर की पुष्टि में तर्क दीजिए।
3. अनुशासन के विभिन्न सिद्धान्तों तथा नीतियों की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
4. स्वतन्त्रता एवं अनुशासन का संकुचित एवं व्यापक अर्थ बताइये। इन दोनों के मध्य समन्वय कैसे स्थापित किया जा सकता है ? विस्तार से वर्णन कीजिए ।

इकाई 21 मूल्यों का अर्थ, मानवीय मूल्यों के प्रकार तथा मानव जीवन में मूल्यों का महत्व (Meaning of Values, Types of Human Values and Importance of Values in Human Life)

21.1	प्रस्तावना
21.2	उद्देश्य
21.3	मूल्य- अर्थ एवं परिभाषा
21.4	मानवीय मूल्यों के प्रकार
21.5	विभिन्न दृष्टिकोणों से मूल्य या मूल्य-परक शिक्षा की आवश्यकता
21.6	मानवीय मूल्यों का महत्व एवं उपयोगिता
21.7	सारांश
21.8	शब्दावली
21.9	अभ्यासप्रश्नों के उत्तर
21.10	संदर्भग्रंथसूची
21.11	निबंधात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। देश काल तथा परिस्थितियों के अनुसार प्रत्येक समाज में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। प्रत्येक समाज की अपनी मौलिकता होती है, जो की उसकी संस्कृति में झलकती है। मनुष्य के मन में कुछ आकांक्षाएँ होती हैं, जिन्हें वो पूरा करना चाहता है। आकांक्षाएँ जब व्यवहारिक रूप में परिवर्तित हो जाती हैं तथा सर्वमान्य हो जाती हैं तो वे मूल्य का रूप धारण कर लेती हैं।

प्रत्येक पीढ़ी विरासत में प्राप्त मूल्यों को अपनाती है तथा उन्हें आत्मसात करती है। इन्हीं मूल्यों के द्वारा उसका विकास होता है। प्रत्येक समाज के अपने मूल्य, रहन-सहन, रीति-रिवाज, परम्पराएँ तथा आदर्श होते हैं। भारत की संस्कृति काफी प्राचीन है। वर्तमान समाज का परम्परागत स्वरूप काफी हद तक बदल गया है। उनके विचार और परम्पराएँ नवीनता की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

21.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. मूल्य का अर्थ बता सकेंगे।
2. मूल्य की परिभाषा लिख सकेंगे।
3. मानवीय -मूल्यों के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे।
4. मानवीय -मूल्यों के महत्व तथा उपयोगिता का वर्णन कर सकेंगे।
5. मूल्य-परक शिक्षा की आवश्यकता की व्याख्या कर सकेंगे।

21.3 मूल्य- अर्थ एवं परिभाषा

मूल्य का अर्थ

‘मूल्य’शब्द को अंग्रजीभाषा में ‘वैल्यू’Value कहा जाता है जिसकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के ‘वैयलियर’नामक शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है किसी वस्तु की उपयोगिता व महत्व और अधिक स्पष्ट रूप में मूल्य का तात्पर्य किसी व्यक्ति विचार व वस्तु के उस गुण से है जिसके कारण उसे उपयोगी व महत्वपूर्ण समझा जाता है। हिन्दी में मूल्य शब्द के पर्याय रूप में शील, गुण व आर्दश आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

वास्तविक अर्थ में मूल्य वह है जो सभी बातों का निर्धारण करता है। मूल्य वह है जो इस जगत को अर्थ प्रदान करता है। मूल्य वह है जो प्रत्येक व्यक्ति, घटना, क्रिया व विचार को अर्थ व सार्थकता प्रदान करता है।

मानवीय मूल्य ऐसे प्रत्यय हैं जो हमें निम्नलिखित में अंतर कर सकने में समर्थ बनाते हैं-

- सत्य- असत्य
- करणीय- अकरणीय
- शुभ-अशुभ
- पुण्य-पाप
- स्वीकार्य-त्याज्य
- धर्म-अधर्म
- भय-अभय
- बंधन-मोक्ष

- उचित-अनुचित
- अहिंसा-हिंसा
- तर्क-कुतर्क
- लाभ-हानि
- जय-पराजय
- अच्छा-बुरा

अनेक विकल्पों के उपलब्ध होने की स्थिति में सम्यक, उचित, उपयुक्त विकल्प का चयन करने की प्रक्रिया पूर्ण- रूपेण मानवीय-मूल्यों पर ही निर्भर होती है।

सम-सामायिक बृहत समाज, देश-काल परिस्थिति के अनुरूप सर्वस्वीकार्य मानवीय-मूल्यों को अपनी नई पीढ़ी को उपलब्ध कराता है। देश-काल में अंतर होने पर इन मानवीय-मूल्यों में किंचित अंतर भी होता है। सामान्यतया ये अंतर निम्नलिखित के संदर्भ में मिलते हैं-

- भोजन सम्बंधी आदतें
- वस्य (वसन) सम्बंधी वरीयताएँ
- विवाह सम्बंधी मान्यताएँ
- लैंगिक सम्बंधी दृष्टिकोण
- धार्मिक प्रक्रियाएँ
- ईश्वर, जीवन-मृत्यु सम्बंधी अवधारणाएँ

उपर्युक्त के क्रम में देश-काल में अंतर होने पर भी व्यवहार के अन्य प्रतिमानों में सार्वभौमिकता, सार्वकालिकता दृष्टिगोचर होती है। ऐसे मानवीय-मूल्य शाश्वत कहलाते हैं। इनमें निम्नलिखित आते हैं-

- प्रत्येक प्राणी के प्रति प्रेम-दया
- जीयो ओर जीने दो की धारणा
- मिलजुल कर साथ जीने की कला को अर्जित करने पर बल
- अनेकता में एकता का विचार
- दूसरों की भावनाओं का सम्मान-आदर

- सत्य,शांति,प्रेम,अहिंसा

उपर्युक्त से स्पष्ट होता है कि मानवीय-मूल्य अंतर कर सकने,विभेद कर सकने, सही विकल्प को चुनने,उपयुक्त व्यवहार को पहचान कर तदनुरूप विचार करने तथा कर्मकरने के आधार है।वांछित सर्वजन स्वीकार्य व्यवहार, सर्वजनहिताय को पहचानने तथा तदनुरूप आचरण करने की व्यवस्था को सृजित करने तथा उपलब्ध कराने के प्रत्ययों को ही मानवीय-मूल्य कहा जाता है।

आंग्ल भाषा में 'Values' के समानार्थी शब्द निम्नवत है-

- Principles- सिद्धांत
- Standards- मानक
- Morals-नैतिकता
- Ethics-नीतिशास्त्र
- Ideals – आदर्श

मूल्य की परिभाषा

शब्द-कोष 'Values'को निम्न प्रकार से परिभाषित करते है-

शब्द कोष के अनुसार: “मूल्य का अर्थ दाम या मूल्य है या वह जो किसी को मूल्य निरूपण में योग्य कर सकें” से लिया जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय विश्वकोष के अनुसार: “मूल्य का अर्थ नियमों के उस समुच्चय से लिया जाता है जहाँ चरित्र को व्यक्ति तथा सामाजिक दलों के लिए नियंत्रित किया जाता है”

विभिन्न शिक्षा शास्त्रियों के अनुसार मूल्यों की परिभाषा निम्नलिखित है-

काने के अनुसार: “मूल्य वे आदर्श तथा विश्वास है जिन्हें समाज के अधिकांश सदस्यों ने अपना लिया है”

पार्सन के अनुसार: “मूल्य किसी समाज व्यवस्था में विभिन्न नवीनीकरणों में से किसी एक नवीनीकरण को चुनने का मानदण्ड है”

जोन्स के अनुसार:-मूल्य वह प्रेरणा है जो व्यक्ति के प्रयासो को सन्तुष्ट करती है जिससे वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

फिलक के अनुसार मूल्य वह प्रमापीकृत मानक है,जिससे व्यक्ति अपनी रुचियों से प्रभावित होता है और अपने प्रत्यक्षीकरण के अनुरूप विभिन्न क्रियाओं का चयन करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. 'वैल्यू' Value शब्द की व्युत्पत्ति _____ भाषा के 'वैयलियर' नामक शब्द से हुयी है।
2. हिन्दी में मूल्य शब्द के पर्याप्त रूप में _____, _____ व _____ आदि शब्दोंका प्रयोग किया जाता है।
3. व्यवहार के ऐसे प्रतिमान जिनमें सार्वभौमिकता, सार्वकालिकता दृष्टिगोचर होती है ऐसे मानवीय-मूल्य _____ कहलाते है।
4. किन्हीं दो शाश्वत मानवीय मूल्यों को लिखिए।
5. अंतर्राष्ट्रीय विश्वकोष के अनुसार मूल्य की परिभाषा लिखिए।
6. _____ के अनुसार मूल्य किसी समाज व्यवस्था में विभिन्न नवीनीकरणों में से किसी एक नवीनीकरण को चुनने का मानदण्ड है”

मानवीय मूल्य वांछित व्यवहार के प्रतिमानों हेतु मानदण्डों, नियामकों, निर्धारकों का कार्य करते है। बृहत समाज द्वारा स्वीकार्य मानवीयमूल्यों के आधार पर वांछित व्यवहार के प्रतिमानों की प्राप्ति हेतु नयी पीढ़ी को सक्षम बनाने के लिए मानवता द्वारा जो प्रयास अभी तक किये गये हैं, वे निम्नवत हैं-

- प्रौढ़ पीढ़ी द्वारा स्वयं तदनुसार आचरण करना जिससे नयी पीढ़ी अनुकरण द्वारा इस प्रकार के व्यवहारों को अपना सके। इसके अंतर्गत-
 - लालन-पालन/ पालन-पोषण की प्रक्रियाएँ (परिवार में)
 - समाजीकरण की प्रक्रियाएँ सन्निहित है।
- शिक्षण संस्थाओं द्वारा शिक्षा प्रदान करने तथा कौशलों में ज्ञान प्रदान करने की विधियों में दक्षता प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध कराने के साथ सम्यक मूल्यों की प्राप्ति हेतु उपयुक्त वातावरण का सृजन करना। इसके अंतर्गत -
 - शिक्षण
 - प्रशिक्षण
 - निर्देशन एवं परामर्श सन्निहित हैं।
- परिवार, समाज तथा शिक्षण संस्थाओं के पारस्परिक सहयोग द्वारा, conditioning के माध्यम से वांछित व्यवहार के प्रतिमानों की प्राप्ति हेतु बालकों, युवाओं और विद्यार्थियों को सक्षम बनाना।

- कुछ विशिष्ट सामाजिक संस्थाओं, धार्मिक संस्थाओं तथा राजनैतिक संस्थाओं द्वारा प्रचार-प्रसार(Propaganda)का उपयोग करना।
- उपर्युक्त संस्थाओं द्वारा मतारोपण Indoctrination (creating uncritical faith on something)का उपयोग करना।
- कुछ विशिष्ट संस्थाओं द्वारा ब्रेन वॉशिंग Brain Washing की तकनीक का प्रयोग करना।
- स्वास्थ्य विज्ञान के अंतर्गत स्नायु – विज्ञान (Neuro-Sciences)के क्षेत्र में हुई प्रगति से प्राप्त दवाइयों /रासायनिक पदार्थों का उपयोग कर व्यवहार को संतुलित –सम्यक बनाने के प्रयास।

Behaviour Modification Techniques/Approaches

व्यवहार परिवर्धन की तकनीकें एवं व्यूह रचनाएँ –

1. Use of mood-elevating/soothing drugs दवाइयों का उपयोग	मूड परिवर्तित करने की
2. Psycho-therapy/Psycho-analysis मनोविश्लेषण	मनो- चिकित्सा /
3. Brain Washing	ब्रेन वॉशिंग
4. Indoctrination	मतारोपण
5. Propaganda	विचार
6. Conditioning	अनुकूलन
7. Training	प्रशिक्षण
8. Teaching	शिक्षण
9. Guidance & counseling	परामर्श एवं निर्देशन

एक मानवतावादी लोकतांत्रिक सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज में उपर्युक्त में से प्रशिक्षण (Training), शिक्षण (Teaching), परामर्श एवं निर्देशन (Guidance & counseling) का ही उपयोग करना उचित तथा सम्यक है। इस प्रकार के प्रयासों से शिक्षित करने, सभ्य बनाने तथा सुसंस्कृत बनाने की प्रक्रियाएँ एक दूसरे की पूरक हैं।

शिक्षित करने की प्रक्रिया के अंतर्गत मातृ-भाषा (बोली) के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में संवाद करने की योग्यता उत्पन्न करना, एक या एक से अधिक लिपियों को पढ़ सकना तथा उनको लिख सकने की योग्यता उत्पन्न करने हेतु अनुकूलन (Conditioning) का उपयोग करना ही होता है। अतः यह तकनीक अपरिहार्य होने के साथ-साथ उपयुक्त तथा सम्यक भी है।

व्यक्ति विशेष/ समुदाय विशेष की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति तथा समस्या समाधान के लिए उपर्युक्तमूड परिवर्तित करने की दवाइयों का उपयोग(mood-elevating/soothing drugs) तथा मनो- चिकित्सा / मनोविश्लेषण (Psycho-therapy/Psycho-analysis) का उपयोग करना भी कतिपय परिस्थितियों में अनिवार्य तथा अपरिहार्य हो जाता है। अतः इनका यथोचित उपयोग करना भी परिस्थिति विशेष में उचित तथा सम्यक माना जा सकता है।

बृहत समाज द्वारा स्वीकार्य मानवीय-मूल्यों की प्राप्ति हेतु किसी व्यक्ति या समुदाय के संदर्भ में ब्रेन वाशिंग (Brain Washing), मतारोपण (Indoctrination) तथा विचार (Propaganda) का उपयोग करना अनुचित है। यह मानवतावादी लोकतांत्रिक सिद्धांतों के प्रतिकूल है। एक सभ्य तथा सुसंस्कृत समाज द्वारा इनका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि सामान्य परिस्थितियों में नयी पीढ़ी को मानवीय-मूल्यों की प्राप्तिहेतु सक्षम बनाने में उपर्युक्त में से अनुकूलन (Conditioning)प्रशिक्षण (Training), शिक्षण (Teaching), परामर्श एवं निर्देशन (Guidance & counseling) का ही उपयोग किया जाना चाहिए। कुछ विशेष में मूड परिवर्तित करने की दवाइयों का उपयोग(mood-elevating/soothing drugs) तथा मनो- चिकित्सा/मनोविश्लेषण (Psycho-therapy/Psycho-analysis) का उपयोग भी किया जा सकता है।

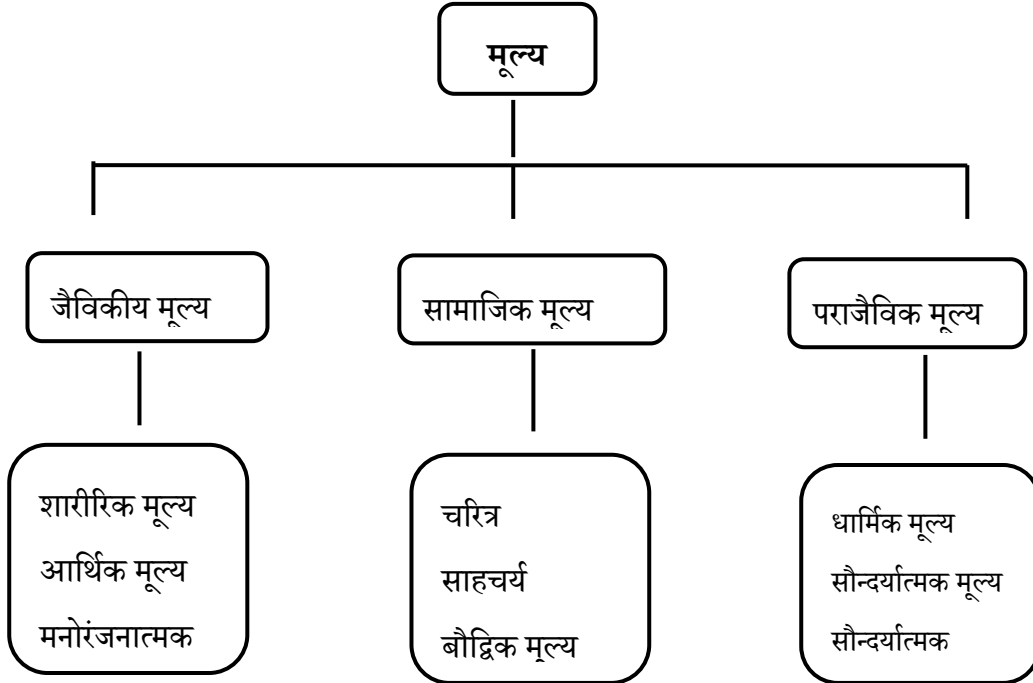
21.4 मानवीय मूल्यों के प्रकार

सामान्यतः मूल्य व्यक्तिगत तथा सामाजिक दो प्रकार के होते हैं। हमारा जीवन वातावरण तथा वंशानुक्रम दोनों से प्रभावित होता है। वातावरण मूल्यों पर गहरा प्रभाव डालता है। मूल्य मानव व्यवहार के आधार तथा नियंत्रक होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के आचार-विचार, आवश्यकताएँ तथा दृष्टिकोण भिन्न होते हैं, उसी प्रकार उनके मूल्यों में भी भिन्नता पाई जाती है।

विभिन्न विद्वानों के अनुसार

1. आलपोर्ट एवं वर्नर- इन विद्वानों ने मूल्यों को अधोलिखित 6 भागों में विभाजित किया है।
 - i. सैद्धांतिक मूल्य(Theoretical Values)
 - ii. आर्थिक मूल्य (Economic Values)
 - iii. सामाजिक मूल्य (Social Values)
 - iv. राजनीतिक मूल्य (Political Values)
 - v. सौन्दर्यात्मक मूल्य (Aesthetic Values)

- vi. धार्मिक मूल्य (Religious Values)
2. गेलाइटली- इन्होंने मूल्यों को निम्नलिखित 2 भागों में विभाजित किया है-
- आवश्यक मूल्य (Essential Values)
 - कार्यात्मक मूल्य(Operational Values)
3. जे0ई0टर्नर- टर्नर महोदय ने मूल्यों को निम्नलिखित 2 भागों में विभाजित किया है।
- मूर्त मूल्य (Concrete Values)
 - अमूर्त मूल्य (Abstract Values)
4. ब्रूबेकर- इन्होंने मूल्यों को निम्नलिखित 2 भागों में विभाजित किया है।
- साधन मूल्य (Instrument Values)
 - साध्य मूल्य (Intrinsic Values)
5. डब्लू0 अर्बनने मूल्यों को निम्नलिखित 3 भागों में विभाजित किया है।
- 6.



मूल्यों का सात वर्गों में विभाजन

उपर्युक्त वर्गीकरण को सामने रखते हुए हम मूल्यों को निम्नलिखित सात वर्गों में विभाजित कर सकते हैं।

1. **वैयक्तिक मूल्य-**वैयक्तिक मूल्य वे मूल्य हैं जो व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन व विकास से सम्बन्धित होते हैं। स्वास्थ्य सफाई, सुचिता, नियमितता, समय की पाबन्दी व सदुपयोग, सादा जीवन उच्च विचार, ज्ञान की खोज आदि वैयक्तिक मूल्य हैं, जिनके परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति स्वयं को रखता है।
2. **सामाजिक मूल्य-**सामाजिक मूल्य वे मूल्य हैं, जिनके कारण व्यक्ति समाज को महत्वपूर्ण स्थान देता है। समाज-सेवा अपने से बड़ों का आदर करना, संस्कृति का संरक्षण एवं अनुगमन आदि सामाजिक मूल्य हैं। जिनसे प्रेरित होकर व्यक्ति अपने स्वार्थ को त्याग कर समाज-कल्याण की ओर उन्मुख होता है।
3. **शैक्षिक मूल्य-** शैक्षिक मूल्य का तात्पर्य शिक्षा की उपयोगिता, उद्देश्य एवं अनुकूलता से है, जिनसे प्रेरित होकर शिक्षक एवं शिक्षार्थी अध्ययन कार्य में शिक्षार्थी के आत्म साक्षात्कार या वांछित विकास के उद्देश्य से प्रवृत्त होते हैं। बुद्धि का विकास जिज्ञासा, चिन्तन आदि मूल्य शैक्षिक मूल्य हैं, जो बालक के बौद्धिक विकास में सहायक तो होते ही हैं, साथ ही वे उसे आत्म-निर्भर बनाते हैं।
4. **राजनीतिक मूल्य-** राजनीतिक मूल्य वे मूल्य हैं, जिनका उद्देश्य व्यक्ति को योग्य नागरिक बनाना है ताकि अच्छी तरह से अनेक कर्तव्यों एवं अधिकारों का निर्वाह करते हुए अपने देश की प्रगति में योगदान दे सकें। देशभक्ति राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय एकता आदि मूल्य राजनीतिक मूल्य की श्रेणी में आते हैं।
5. **चारित्रिक मूल्य-** चारित्रिक मूल्य वे मूल्य हैं, जिनका उद्देश्य व्यक्ति को चारित्रिक व व्यवहारिक दृष्टि से ऊँचा बनाना है। सत्य त्याग, करुणा सहानुभूति, दयालुता,सहिष्णुता आदि चारित्रिक मूल्यों की श्रेणी में आते हैं।
6. **सौन्दर्यात्मक मूल्य-** सौन्दर्यात्मक मूल्य वे मूल्य हैं, जो व्यक्ति को सुन्दर वस्तुओं से प्रेम करने के लिए प्रेरित करते हैं और अपने वातावरण के चारों ओर व्याप्त वस्तुओं को सुन्दर बनाये रखने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। प्रकृति प्रेम, सुन्दरता की प्रशंसा, वनों की सुरक्षा आदि मूल्य सौन्दर्यात्मक मूल्य हैं।
7. **धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्य-** धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का तात्पर्य उन मूल्यों से है, जिनका उद्देश्य व्यक्ति का आध्यात्मिक एवं धार्मिक विकास करना है।

अभ्यास प्रश्न

1. व्यवहार परिवर्धन की कोई तीन तकनीकों के नाम लिखिए।
2. आलपोर्ट एवं वर्नर के अनुसार मूल्यों के विभाजन को लिखिए।
3. _____ वे मूल्य है जो व्यक्ति को सुन्दर वस्तुओं से प्रेम करने के लिए प्रेरित करते है।
4. _____ ने मूल्यों को निम्नलिखित 2 भागों में विभाजित किया है।
 - i. साधन मूल्य
 - ii. साध्य मूल्य

21.5 विभिन्न दृष्टिकोणों से मूल्य या मूल्य-परक शिक्षा की आवश्यकता

स्वतन्त्र भारत में गठित विभिन्न आयोगों व समितियों ने मूल्य व मूल्य-परक शिक्षा की आवश्यकता व महत्व पर विशेष बल दिया है। व्यक्ति समाज व देश को पतन से बचाने व मानवता के सुखद भविष्य के लिए मूल्य व मूल्य-परक शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है। इस आवश्यकता को निम्नवत स्पष्ट किया गया है-

1. **व्यक्ति के सुखद भविष्य के लिए आवश्यकता-** वर्तमान समय में पाश्चात्य देशों की भाँति भारत में भी उपभोक्ता संस्कृति का विकास हो रहा है और व्यक्ति अपने भौतिक सुख एवं ऐश्वर्य की प्रत्येक वस्तु प्राप्त करना चाहता है। आज व्यक्ति इन्द्रिय सुख में आस्था रखता है और दूसरों के हितों को तिलांजलि देकर स्व-केन्द्रित होता जा रहा है। किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसके व्यक्तित्व का वांछनीय विकास सामाजिक वातावरण में ही सम्भव है।
2. **देश व समाज के सुखद भविष्य के लिए आवश्यकता-** यदि हम आज के भारत व भारतीय समाज की आर्थिक सामाजिक रानीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें चारों ओर भ्रष्टाचार नजर आता है। आज जाति प्रथा साम्प्रदायिकता, दहेज प्रथा, नारी उत्पीड़न, मादक दवाओं व पदार्थों का सेवन, कर चोरी, कालाबजारी, चोरी, डकैती, हिंसा आदि ऐसी समस्याएँ उभर रही हैं। जिन्होंने भारत और भारतीय समाज के सुखद भविष्य की कल्पना पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। अतः यदि हम एक सुखद एवं समृद्ध भारत की कल्पना करना चाहते हैं तो हमें छात्रों के उचित मूल्यों का विकास करना होगा और इसके लिए मूल्य व मूल्य परक शिक्षा की अति आवश्यकता है।
3. **अनैतिकता की परख करने की सामर्थ्य के विकास के लिए आवश्यकता-** बालक उस आचरण व व्यवहार का अनुपालन करता है, जो उसे प्रारम्भ में अपने माता-पिता द्वारा प्राप्त होता है और जो वह पड़ोस, विद्यालय व समुदाय का अनुकरण करके सीखता है। इस स्तर पर उसका व्यवहार पूर्णतया यन्त्रवत होता है। जिसमें चिन्तन व तर्क का कोई सहारा

नहीं होता है। धीरे-धीरे जब वह बड़ा हो जाता है तो आवश्यकता इस बात की हो जाती है कि वह स्वयं अच्छे बुरे, उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक बातों को समझे और तदनुकूल उचित आचरण करने का प्रयास करें। यह तभी सम्भव है, जबकि उसे मूल्य व मूल्य-परक शिक्षा प्रदान की जाए। इस प्रकार अनैतिकता की परख करने की सामर्थ्य के विकास हेतु मूल्य-शिक्षा की अति आवश्यकता है।

4. **मूल्य हास को रोकने तथा मूल्यों के प्रतिस्थापन के लिए** - कभी वह पुरातन मूल्यों की ओर झुकता है तो कभी आधुनिकता की भ्रामक अवधारणा की ओर। इस संक्रमण काल में हमने कर्तव्य या कार्य संस्कृति के स्थान पर उपभोक्ता संस्कृति को अपना लिया है और हमारे जीवन मूल्यों में द्रुतगति से हास व पतन हो रहा है। मूल्यों के हास व पतन के कारण मनुष्य का जीवन दिशाहीन हो गया है और व्यक्ति, परिवार, समुदाय, समाज व देश में चारों ओर विघटनकारी प्रवृत्तियाँ पनप रही हैं। इनसे बचने के लिए हमें न केवल मूल्यों के हास व पतन को रोकना है बल्कि मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा करनी है। इसके लिए मूल्य व मूल्य-परक शिक्षा की अति आवश्यकता है।

21.6 मानवीय-मूल्यों का महत्व एवं उपयोगिता-

मानवीय-मूल्यों की समझ, उनकी प्राप्ति तथा तदुसार व्यवहार करना निम्नलिखित के लिए आवश्यक है-

अर्थपूर्ण जीवन	-	Meaningful life
जीवन में संतुष्टि	-	Satisfaction with life
जीवन में सफलता	-	Success in life
जीवन में आनंद	-	Happiness in life
मानवीय सम्बन्धों की समझ	-	Understanding human relationships

प्रत्येक मानव के लिए यह अनिवार्य है कि एक सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज का सक्रिय सदस्य बनने हेतु वह बृहत समाज द्वारा स्वीकार्य मानवीय-मूल्यों के अनुरूप व्यवहार करें। मन-कर्म-वचन ऐसे होने चाहिए जिससे स्वयं का, परिवार का, समाज का, राष्ट्र का तथा सम्पूर्ण मानवता का हित हो सके।

हमारी संस्कृति की परम्परा स्पष्ट करती है कि-

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।

सर्वे भ्रदाणी पश्चन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत्॥"

हम कामना करते हैं कि सभी सुखी रहें, सभी स्वस्थ रहें, सभी का भला हो, कोई दुखी न रहे।

हम प्रातःकाल उठकर ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें तथा तीनों लोकों का भला करें-

उतिष्ठोतिष्ठ गोविन्द उतिष्ठ गरूडध्वज।

उतिष्ठ कमलाकान्त मैलोक्ये मंगलं कुरु॥

सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में मानने की धारणा हमारी संस्कृति ने इसी कारण से उत्पन्न की है-

"वसुधैव कुटुम्बकम्" हमने शताब्दियों पूर्व स्वीकार कर लिया था।

जीवन-मूल्य हमें उन मानदण्डों को उपलब्ध कराते हैं, जिनसे हम अपने मन-कर्म-वचन से सम्बन्धित व्यवहारों को सम्यक, उचित, नियंत्रित कर प्रदर्शित कर सकें। 'मनुष्य मात्र बन्धु है यही बड़ा विवेक है। मानवीय मूल्यों से हमको निम्नलिखित में सहायता मिलती है-

- क्या सोचा जाना चाहिए? (मन) - सम्यक विचार
- क्या किया जाना चाहिए? (कर्म) - यथोचित कार्य
- क्या बोला जाना चाहिए? (वचन) - मधुर वाणी

मानवीय-मूल्यों से हमें यह ज्ञात होता है कि निम्नलिखित प्रकार के विचार, कार्य तथा वचन उचित नहीं है। ये त्याज्यत्यागने योग्य है-

- क्रोध
- धृणा, वैमनस्य
- शत्रुता
- आक्रामकता
- दूसरों को शारीरिक-मानसिक कष्ट पहुँचाना
- प्रमाद- आलस्य
- विभिन्न व्यसन
- चिन्ता, कुन्ठा, अवसाद

प्रसन्न रहकर आनन्दमय एवं सफल मानवीय जीने की प्रेरणा, सहायता तथा शक्ति मानवीय-मूल्यों से ही प्राप्त होती है। सन्तोष के माध्यम से सार्थक एवं सन्तुष्ट मानवीय जीने की कला भी हमें मानवीय-

मूल्यों से ही प्राप्त होती है। एक सरल, सुखी तथा आनन्दमय मानवीय जीने के लिए स्थापित तथा उपयुक्त मानवीय मूल्यों के अनुरूप व्यवहार करना अनिवार्य है।

21.7 सारांश

प्रत्येक पीढ़ी विरासत में प्राप्त मूल्यों को अपनाती है तथा उन्हें आत्मसात करती है। इन्हीं मूल्यों के द्वारा उसका विकास होता है। प्रत्येक समाज के अपने मूल्य, रहन-सहन, रीति-रिवाज, परम्पराएँ तथा आदर्श होते हैं। 'मूल्य' शब्द को अंग्रेजीभाषा में 'वैल्यू' Value कहा जाता है, जिसकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'वैयलियर' नामक शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है किसी वस्तु की उपयोगिता व महत्व और अधिक स्पष्ट रूप में मूल्य का तात्पर्य किसी व्यक्ति विचार व वस्तु के उस गुण से है जिसके कारण उसे उपयोगी व महत्वपूर्ण समझा जाता है।

अनेक विकल्पों के उपलब्ध होने की स्थिति में सम्यक, उचित, उपयुक्त विकल्प का चयन करने की प्रक्रिया पूर्ण- रूपेण मानवीय-मूल्यों पर ही निर्भर होती है। मानवीय मूल्य वांछित व्यवहार के प्रतिमानों हेतु मानदण्डों, नियामकों, निर्धारकों का कार्य करते हैं।

व्यक्ति समाज व देश को पतन से बचाने व मानवता के सुखद भविष्य के लिए मूल्य व मूल्य-परक शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है। व्यक्ति के सुखद भविष्य के लिए, देश व समाज के सुखद भविष्य के लिए, अनैतिकता की परख करने की सामर्थ्य के विकास के लिए, मूल्य हास को रोकने तथा मूल्यों के प्रतिस्थापन के लिए मूल्य व मूल्य-परक शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है।

प्रत्येक मानव के लिए यह अनिवार्य है कि एक सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज का सक्रिय सदस्य बनने हेतु वह बृहत समाज द्वारा स्वीकार्य मानवीय-मूल्यों के अनुरूप व्यवहार करें। मन-कर्म-वचन ऐसे होने चाहिए, जिससे स्वयं का, परिवार का, समाज का, राष्ट्र का तथा सम्पूर्ण मानवता का हित हो सके।

21.8 शब्दावली

1. मूल्य-मूल्यका तात्पर्य किसी व्यक्ति, विचार व वस्तु के उस गुण से है, जिसके कारण उसे उपयोगी व महत्वपूर्ण समझा जाता है।
2. मतारोपण- अपने विचारों व मत को दूसरों पर थोपना।

21.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लैटिन
2. शील, गुण व आदर्श
3. शाश्वत

-
4. दो शाश्वत मानवीय मूल्य हैं-
 - i. प्रत्येक प्राणी के प्रति प्रेमदया-
 - ii. सत्य, शांति, प्रेम, अहिंसा
 5. अंतर्राष्ट्रीय विश्वकोष के अनुसार मूल्य की परिभाषा है- “मूल्य का अर्थ नियमों के उस समुच्चय से लिया जाता है, जहाँ चरित्र को व्यक्ति तथा सामाजिक दलों के लिए नियंत्रित किया जाता है”
 6. पार्सन
 7. व्यवहार परिवर्धन की कोई तीन तकनीकों के नाम है -
 - i. अनुकूलन
 - ii. प्रशिक्षण
 - iii. शिक्षण
 8. आलपोर्ट एवं वर्नर ने मूल्यों को अधोलिखित 6 भागों में विभाजित किया है।
 - i. सैद्धान्तिक मूल्य
 - ii. आर्थिक मूल्य
 - iii. सामाजिक मूल्य
 - iv. राजनीतिक मूल्य
 - v. सौन्दर्यात्मक मूल्य
 - vi. धार्मिक मूल्य
 9. सौन्दर्यात्मक मूल्य
 10. ब्रूबेकर
-

21.10 संदर्भ ग्रंथ

-
1. Gupta, N.L., Human Values in Education, Concept Publishing, New Delhi.
 2. Higher Education for Human Development, Association of Indian Universities, New Delhi.
 3. शर्मा, योगेंद्र कुमार, मधुलिका शर्मा(2009), शिक्षा के दार्शनिक आधार, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली
-

21.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मूल्य का क्या अर्थ है ? मानवीय-मूल्यों के प्रकारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
-

2. मानवीय-मूल्यों की आवश्यकता की व्याख्या कीजिए।
3. मानवीय-मूल्यों के महत्व एवं उपयोगिता का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई 22-मानवीय मूल्यों के स्रोत , प्राप्ति की प्रक्रिया ,मूल्यों की प्राप्ति हेतु विधियाँ, मूल्यों के विकास में परिवार एवं विद्यालय की भूमिका (Value Education, education for values, strategies for the inculcation of values)

-
- 22.1 प्रस्तावना
 - 22.2 उद्देश्य
 - 22.3 मानवीय मूल्यों के विभिन्न स्रोत
 - 22.4 मानवीय मूल्यों की प्राप्ति की प्रक्रिया
 - 22.5 मानव व्यवहार के प्रतिमान
 - 22.6 मूल्यों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने की विधियाँ
 - 22.7 मूल्यों के विकास में परिवार की भूमिका
 - 22.8 मूल्यों के विकास में विद्यालयकी भूमिका
 - 22.9 सारांश
 - 22.10 शब्दावली
 - 22.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
 - 22.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
 - 22.13 निबंधात्मक प्रश्न
-

22.1 प्रस्तावना

मूल्य शिक्षा वह है, जो बालकों में मूल्यों का विकास करती है। बालकों के संतुलित एवं सर्वोन्मुखी विकास के लिए विभिन्न विषयों को मूल्य-परक बनाकर सामान्य शिक्षण प्रक्रिया में ही उन मूल्यों का विकास किया जाता है। बालकों में प्रेम, सहयोग, परोपकार, समानता, बंधुत्व, वैज्ञानिक दृष्टिकोण इत्यादि विकसित करना मूल्य परक शिक्षा का उद्देश्य है। बालकों में मूल्यों को विकसित करने का उत्तरदायित्व परिवार एवं विद्यालय का होता है। इससे पहले की इकाई में आपने मूल्य का अर्थ एवं उसकी आवश्यकता के विषय में अध्ययन किया। अब इस इकाई में आप मानवीय मूल्यों के विभिन्न स्रोतों, मूल्यों के विकास में परिवार एवं विद्यालय की भूमिका का अध्ययन करेंगे।

22.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. मानवीय मूल्यों के विभिन्न स्रोतों का वर्णन कर पायेंगे।
2. मानवीय मूल्यों की प्राप्ति की प्रक्रिया से अवगत होंगे।
3. मानव व्यवहार के प्रतिमानों की व्याख्या कर पायेंगे।
4. मूल्यों के विकास में परिवार की भूमिका को जान पायेंगे।
5. मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका को जान पायेंगे।

मानवीय जीवन मूल्यों की संप्राप्ति की प्रक्रिया में जीवन मूल्यों के विभिन्न स्रोत अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। मानवीय मूल्यों के इन विभिन्न स्रोतों का वर्णन नीचे प्रस्तुत किया गया है –

22.3 मानवीय मूल्यों के विभिन्न स्रोत Various Sources of Human Values

सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्रोत- Cultural and Social Sources

इसके अंतर्गत निम्नलिखित आते हैं-

- i. संस्कृति- दर्शन, धार्मिक क्रियाएँ, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, धार्मिक ग्रंथ।
- ii. सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक संस्थाएँ
- iii. लोकतांत्रिक जीवन/शासन पद्धति से निर्मित/विकसित संविधान, नियम तथा कानून

ब. मानवीय स्रोत

इसके अंतर्गत निम्नलिखित आते हैं-

- i. अवतारी पुरुष
- ii. लोकनायक
- iii. धार्मिक नेता
- iv. राजनैतिक नेता
- v. सिने नेता
- vi. उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले खिलाड़ी
- vii. शिक्षक
- viii. परिवार- माता-पिता, अभिभावक, भाई-बहन, सगे-सम्बन्धी
- ix. मित्र-मंडली, सहपाठी, सहकर्मी, पड़ोसी

22.4 मानवीय मूल्यों की प्राप्ति की प्रक्रिया

मनोविज्ञान में एक प्रत्यय 'महत्वपूर्ण अन्य' (Significant Others) का विवरण मिलता है। 'महत्वपूर्ण अन्य', मानवीय मूल्यों को ग्रहण करने में विशिष्ट भूमिका का निर्वहन करते हैं। एक व्यक्ति के जीवन में अनेक 'महत्वपूर्ण अन्य' की प्रभावी भूमिका होती है। कुछ 'महत्वपूर्ण अन्य' जीवन भर के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। कुछ 'महत्वपूर्ण अन्य' कुछ समय विशेष-परिस्थिति में उस समय उस स्थान के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

भारतीय समाज में माता-पिता, भाई-बहिन, अन्य सगे सम्बन्धी जीवन पर्यन्त 'महत्वपूर्ण अन्य' बने रहते हैं। मित्र मंडली, सहपाठी, होस्टल के साथी, सहकर्मी एक विशिष्ट स्थान-विशिष्ट में 'महत्वपूर्ण अन्य' होते हैं। यद्यपि ये भी जीवन भर के लिए अपनी छाप छोड़ सकते हैं। हमारे समाज में विवाह से पूर्व का व्यक्ति विवाहोपरान्त 'महत्वपूर्ण अन्य' बन जाता है।

इन 'महत्वपूर्ण अन्य' के व्यवहार के प्रतिमानों का हम अनुकरण करते हैं। मानवीय मूल्यों की प्राप्ति में इनकी भूमिका प्रभावी होती है। हमारी आदतें, हमारी दैनिक क्रियाएँ, हमारी सोच-समझ, हमारे निर्णय लेने के तौर-तरीके, हमारी इच्छाएँ-आकाक्षाएँ, हमारा चरित्र, हमारे पारस्परिक मानवीय सम्बन्ध, हमारी उपलब्धियाँ, हमारे समस्याओं के समाधान के तरीके, मानवीय सन्तुष्टि, हमारी प्रसन्नताएँ, हमारे सुख-दुख, कुन्ठाएँ और उनका समाधान मानवीय मूल्यों पर ही निर्भर करता है।

भारतीय मनीषा ने मानवीय-मूल्यों के सन्दर्भ में जो विवेचना की है वह शाश्वत है। भारतीय परम्परा ने

"अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयम्।

परोपकाराय पुण्याय य पापाय पर पीडनम्॥"

का उद्धोष किया। संत तुलसीदास ने जन सामान्य को इससे परिचित करानेके लिए लिखा-

"परहित सरिस धरम् नहीं भाई।

पर पीड़ा सम नहीं अधभाई॥"

भारतीय दर्शन ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को चार पुरुषार्थों के रूप में स्वीकार किया तथा 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' के विराट् चिंतन को मानवीय-मूल्यों के आधार के रूप में समझा।

वेदों, उपनिषदों, पुराणों, ब्राह्मण ग्रन्थों की परम्परा से होते हुए महाभारत तथा रामायण जैसे महाकाव्य एवम् भगवान् कृष्ण, भगवान् बुद्ध, महावीर, आचार्य चाणक्य, तुलसी,

कबीर आदि सन्तों की एक महामण्डली के उद्धार, उद्धोष, विचार मानवीय-मूल्यों के अत्यधिक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। ये जीवन-मूल्य शाश्वत, मानवीय तथा उत्कृष्ट कोटि के हैं।

22.5 मानव व्यवहार के प्रतिमान

मानव व्यवहार के प्रतिमानों को तीन प्रकारों में विभक्त किया जाता है-

1. **मूल प्रवृत्त्यात्मक व्यवहार के प्रतिमान-** इनको अर्जित नहीं किया जाता है वरन् मानव प्राणी होने के नाते हम सब इस प्रकार के व्यवहार के प्रतिमानों को व्यक्त या प्रदर्शित करते हैं/कर सकते हैं। अन्य प्राणियों में भी ये प्रतिमान पाये जाते हैं। ये प्रतिमान हमारा स्वयं का अस्तित्व बनाये रखने तथा मानव जाति के निरंतर बने रहने के लिए अनिवार्य है। ये पूर्ण रूपेण प्राकृतिक है। इन्हें सीखने की आवश्यकता नहीं होती है।

"आहार निद्रा भय मैथुनम् च
सामान्य एतात पशुभि नराणाम्।
धर्मो हि तेषाम् अधिको विशेषः
धर्मेण हीना पशुभि समाना॥"

भोजन करने, शयन करने, भय कासंवेग तथा शारीरिक आनन्द/संतानोत्पत्ति सम्बन्धी व्यवहार मूल प्रवृत्त्यात्मक है।

2. **सीखे जाने वाले/अर्जित किये जाने वाले व्यवहार के प्रतिमान**

इस प्रकार के व्यवहार निम्नलिखित पर निर्भर होते हैं-

- (अ) लालन-पालन/पालन-पोषण के तौर-तरीके
- (ब) समाजीकरण की प्रक्रिया
- (स) शिक्षा संस्थानों से प्राप्त शिक्षा/प्रशिक्षण
- (द) जीविकोपार्जन हेतु पारम्परिक/सामाजिक कार्यों में संलग्न होना।

उपर्युक्त (अ), (ब), (स) तथा (द) में यथास्थिति कंडिशनिंग, प्रशिक्षण, शिक्षण, निर्देशन तथा परामर्श सन्निहित रहते हैं।

3. तीसरे प्रकार के व्यवहार के प्रतिमान मूल प्रवृत्तियों पर प्रत्यक्ष रूप से आधारित भी नहीं होते हैं तथा इन्हें प्राप्त करने हेतु प्रयास करने/सीखने की आवश्यकता भी नहीं होती है। सामान्यतया ऐसे व्यवहार अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, परम्पराओं से बिना प्रयास के ही मानव प्राणियों द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं।

विभिन्न मानव समुदायों में शकुन-अपशकुन सम्बन्धी धारणाओं पर, निर्भर व्यवहार इसके अन्तर्गत आते हैं। जाति/धर्म, लिंग, रंग-रूप सम्बन्धी पूर्वाग्रहों पर निर्भर व्यवहार भी इसी के अन्तर्गत आते हैं। जाति-वाद, नस्लवाद, साम्प्रदायिक उन्माद पर आधारित व्यवहार भी बहुत बड़ी सीमा तक इन्हीं के अन्तर्गत आते हैं।

बिल्ली का रास्ता काटना, बारियाँ आँख का फड़कना, दर्पण का टूट जाना, घर से निकलते ही छींक का आ जाना, छिपकली का सिर पर गिरना इत्यादि को मानकर तद्दुसार व्यवहार करना हमारे समाज में इस प्रकार के व्यवहार के अन्तर्गत आते हैं। इसाई धर्म के अनुयायियों में 13 की संख्या को लेकर किये जाने वाले व्यवहार भी ऐसे ही हैं।

एक सभ्य और सुसंस्कृत समुदाय अपने वृहद समाज द्वारा स्वीकार्य मानवीय-मूल्यों के आधार इस प्रकार की व्यवस्था सुनिश्चित करता है, जिससे इसके सदस्यों में-

- प्रथम प्रकार के व्यवहार संतुलित, सम्यक तथा नियंत्रित रूप से प्रदर्शित हों।
- द्वितीय प्रकार के व्यवहारों का अनुपात कुल व्यवहारों में अधिकतम हो।
- तृतीय प्रकार के व्यवहारों का अनुपात कुल व्यवहारों में न्यूनतम हो।

अतः प्रथम प्रकार के व्यवहारों में उचित संतुलन/सम्यक नियंत्रण, द्वितीय प्रकार के व्यवहारों में देश-काल-परिस्थिति के अनुसार वृद्धि तथा तृतीय प्रकार के व्यवहारों की यथा सम्भव कभी एक सभ्य, शिक्षित, सुसंस्कृत के महत्वपूर्ण लक्षण हैं। वृहद समाज द्वारा स्वीकार्य मानवीय मूल्य ही इसके लिए उपयुक्त मानदण्डों, नियामकों तथा निर्धारकों के रूप में कार्य करते हैं।

22.6 मूल्यों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने की विधियाँ

विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों ने बालको में मूल्यों के विकास की विभिन्न विधियाँ बताई हैं। आगे हम मूल्यों के विकास हेतु विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों द्वारा बताई विधियों पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं-

1. **भूमिका निर्वहन शिक्षण-विधि-** इस विधि में शिक्षक द्वारा छात्रों को विभिन्न पात्रों जैसे राजा, रंक, साधु, भिक्षुक, न्यायाधीश, चोर, जमींदार, शिक्षक, प्रधानाचार्य, डॉक्टर, मरीज, बालक, बालिका आदि की भूमिका निर्वाह करने के अवसर प्रदान किये जाते हैं। प्रत्येक छात्र को किसी ना किसी पात्र की भूमिका का निर्वाह करने का चयन करना पड़ता है।

जॉयस एवं वील ने इसकी आठ 'अवस्थाओं' का उल्लेख किया है जिनसे पता चलता है कि मूल्यों का विकास प्रत्यक्ष रूप से न करके छात्रों को विभिन्न भूमिकाओं को निर्वाह करने का अवसर प्रदान करके किया जाता है। इस सन्दर्भ में शिक्षक को यह ध्यान रखना चाहिए कि जो भी चरित्र अपनी भूमिका अदा करें, उसके बीच में शिक्षक प्रश्न करके छात्रों के मूल्यों का ज्ञान करें व आवश्यकतानुसार उन्हें दिशा निर्देशित भी करें।

2. **मूल्य स्पष्टीकरण विधि-** यह विधि प्रयोगवादी शिक्षाशास्त्री जॉन ड्यूवी के -'थ्योरी ऑफ वैल्यूएशन' पर आधारित है। इस विधि को विकसित करने का श्रेय सिडनी साइमन को जाता है। मूल्यों के स्पष्टीकरण के लिए शिक्षक मूल्य पत्रक, मूल्य स्पष्टीकरण चर्चा, कल्पित घटना, खुले प्रश्न, आत्म-कथा साप्ताहिक डायरी, प्रश्नावली, क्रियात्मक परियोजना इत्यादि तैयार कर सकता है किन्तु इसमें सबसे सरल एवं उपयोगी मूल्य-पत्रक सामग्री है।
3. **न्यायिक समीक्षण शिक्षण विधि-** इस विधि को प्रतिपादित करने का श्रेय ऑलिवर व शेवर (Oliver and Shaver) महोदय को है। यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि इस समाज में रहने वाले व्यक्तियों के विचार व मान्यतायें एक-दूसरे से भिन्नता लिए होती हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने विचार को ही उचित मानता है। इसके फलस्वरूप विचारों में परस्पर द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस विधि को 6 'अवस्थाओं' से गुजरना पड़ता है और अन्तिम अवस्था में पहुँचते- पहुँचते द्वन्द्व की स्थिति हो जाती है तथा नया निर्णय स्थापित हो जाता है।
4. **अनुरूपीकरण-** इस विधि को प्रस्तुत करने का श्रेय गुड एवं कार्टर को है। यह विधि कक्षा में क्रियात्मकता उत्पन्न करती है। इसमें पुस्तकीय ज्ञान पर बल देकर समस्यात्मक परिस्थितियों के सम्बन्ध में छात्रों के विचारों में विभिन्नता लाने का प्रयत्न किया जाता है। छात्रों को 'स्व-प्रयास' से सीखने व मूल्यों को अर्जित करने की प्रेरणा प्रदान की जाती है।
5. **कहानी प्रस्तुतीकरण विधि-** मूल्यों के विकास के लिए प्रस्तुतीकरण एक बहुत ही उपयोगी विधि होती है। बालक कहानी सुनने तथा पढ़ने में सबसे अधिक रूचि लेते हैं और उन पर कहानी का गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः यदि अपनी संस्कृति एवं उसके मूल्यों पर आधारित कहानियाँ छात्रों के समक्ष प्रस्तुत की जाएं तो उनमें मूल्यों का विकास अच्छी तरह से हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि कहानी प्रस्तुत करने के बाद प्रश्नों के द्वारा ही मूल्यों का शिक्षण दिया जाए।
6. **निरीक्षण विधि-** इस विधि में छात्रों के सन्मुख वस्तु, घटनाओं एवं व्यक्तियों का चित्रण 'दृश्य सामग्री' के माध्यम से करते हैं तथा छात्रों से कहा जाता है कि वे इन चीजों का अच्छी तरह निरीक्षण करें और उनके सम्बन्ध में जो विचार आये उन्हें वे अपने पास

क्रमबद्ध रूप से लिखते जाएं। इसके उपरान्त वांछनीय एवं अवांछनीय प्रश्नों के द्वारा छात्रों में मूल्यों का विकास किया जाता है।

7. **मूल्य विश्लेषण शिक्षण विधि-** इस विधि को प्रस्तुत करने का श्रेय जे0आर0फ्रेंकल (J.R. Fraenkal) महोदय को है। पासी एवं सनवाल ने इस विधि की आठ अवस्थायें बताई हैं, जिनसे गुजरकर छात्रों में मूल्यों का विकास किया जाता है।

22.7 मूल्यों के विकास में परिवार की भूमिका

बालकों में मूल्यों के विकास में परिवार का सबसे अधिक महत्व है। बच्चे की प्राथमिक शिक्षा यहीं से प्रारम्भ होती है, जो कि आगे की शिक्षा का आधार बनती है। बालक में वांछित मूल्यों के विकास में पारिवारिक वातावरण के विभिन्न पक्षों का अति महत्वपूर्ण योगदान रहता है। यदि परिवार का मानसिक संवेगात्मक वातावरण अच्छा होगा तो बालकों में अच्छे मूल्यों का विकास होगा। बच्चों के सीखने में अनुकरण का सर्वाधिक महत्व होता है। अतः माता-पिता को चाहिए कि वे स्वयं अनुशासनबद्ध व्यवहार करें। माता-पिता जिस प्रकार का व्यवहार बच्चों से अपेक्षित करते हैं उसका उन्हें स्वयं भी आचरण करना चाहिये। माता-पिता को बालको में उचित-अनुचित व नैतिक-अनैतिक के बीच अन्तर समझने की क्षमता उत्पन्न करनी चाहिए। मूल्योंन्मुख व्यवहार के प्रदर्शन के लिए बच्चों को उपयुक्त पुरस्कार दिये जाने चाहिए।

22.8 मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका

छात्रों में मूल्यों के विकास में परिवार के बाद विद्यालय का अति महत्वपूर्ण स्थान व भूमिका है। विद्यालय मूल्यों के विकास में किस प्रकार योगदान दे सकते हैं। इसे हम निम्नलिखित तीन शीर्षकों में प्रस्तुत कर सकते हैं।

- i. पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाएँ
- ii. पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ
- iii. शिक्षकों द्वारा आदर्श प्रस्तुति

पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाएँ

पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं द्वारा मूल्यों के विकास का तात्पर्य पाठ्यक्रम में निहित विषयों में मूल्यों को समाहित करके उनके शिक्षण द्वारा छात्रों में मूल्यों का विकास करना है। पाठ्यक्रम में निहित विषयों के शिक्षण द्वारा छात्रों में वांछित मूल्यों का विकास कैसे किया जा सकता है, इस सम्बन्ध में हम आगे प्रकाश डाल रहे हैं-

1. सामाजिक विज्ञान शिक्षण द्वारा मूल्यों का विकास

सामाजिक विज्ञान का तात्पर्य समाज के उस अध्ययन से है जिसका केन्द्र बिन्दु मनुष्य एवं उसकी विभिन्न सामाजिक परिस्थितियाँ, सामाजिक घटनाएँ तथा सामाजिक समस्याएँ होती हैं। इसके अन्तर्गत इतिहास, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, भूगोल, समाजशास्त्र आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है। सभी विषय 'मानव-स्वभाव' राष्ट्रीय एकता, देश-प्रेम, विश्व बन्धुत्व, विश्वमैत्री तथा नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के आत्मसातिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। छात्रों में लोकतान्त्रिक, संवैधानिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों का विकास किया जा सकता है। शिक्षक राष्ट्रीय प्रतीकों, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रभाषा, राष्ट्रीय पक्षी तथा राष्ट्र चिन्ह के बारे में बताकर छात्रों में उनके लिए सम्मान विकसित कर सकता है।

अर्थशास्त्र के शिक्षण द्वारा छात्रों में श्रम का महत्व, श्रमिक का महत्व आदि महत्वपूर्ण आर्थिक मूल्यों का छात्रों में विकास कर सकता है।

छात्रों में प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति लगाव, पर्यावरण संरक्षण, वृक्ष लगाने की प्रवृत्ति, विभिन्नता में एकता, अन्तर सांस्कृतिक सद्भावना, विश्लेषण जैसे मानवीय, मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

छात्रों में सदभावना, अनेकता में एकता, व्यक्ति एवं समाज में सामंजस्य, त्याग, समानता राष्ट्रीय-एकता, अन्तर-सांस्कृतिक सदभावना, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना समाजोपयोगी कार्यों में आनन्द की अनुभूति, सहानुभूति, सहकारिता आदि सामाजिक सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

2. भाषा शिक्षण द्वारा मूल्यों का विकास

छात्रों में वांछित मूल्यों के विकास में भाषा का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः किसी भी भाषा का साहित्य उसकी संस्कृति की वाणी होता है। साहित्य की विभिन्न विधाओं जैसे - काव्य, नाटक, उपन्यास काहनी आदि में संस्कृति के विशेष तत्व अभिन्न रूप से व्याप्त होते हैं। अतः भाषा व भाषा के साहित्य के शिक्षण के माध्यम से छात्रों को विभिन्न सांस्कृतिक मूल्यों, जिनमें सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक सभी मूल्य सम्मिलित रहते हैं, का बोध कराया जा सकता है।

शिक्षक को चाहिए कि वह साहित्य की शक्ति से छात्रों को अवगत कराये। उसे साहित्य की विभिन्न विधाओं का शिक्षण करते समय उन बिन्दुओं पर अवश्य बल देना चाहिए जिनमें सांस्कृतिक जीवन तथा मानवीय मूल्य सन्निहित हैं। वह किसी पात्र की विशिष्ट शक्ति कहानियों एवं मुहावरों, किसी पाठ में दिये गये संवादों, नीति-कथनों, पाठ के अन्त में दिये गये निष्कर्ष वाक्यों, समान्यीकृत मान्यताओं, सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराओं आदि के माध्यम से छात्रों को मूल्यों का आत्मसातिकरण करा सकता है।

3. विज्ञान शिक्षण द्वारा मूल्यों का विकास

छात्रों में प्रेम, त्याग, सहकारिता, ईमानदारी, वफादारी, सहभागिता, समय की पाबन्दी, परिस्थिति-अनुकूलन आदि मूल्यों का विकास किया जा सकता है। पेड़-पौधों व प्रकृति के शिक्षण द्वारा सौन्दर्य-बोध पर्यावरण-सुरक्षा, प्रकृति-प्रेम, भ्रमण आदि मूल्यों का विकास किया जा सकता है। चिकित्सा-विधियों के अध्ययन के द्वारा छात्रों में सफाई, उचित आहार-विहार, वैयक्तिक एवं सामुदायिक स्वास्थ्य आदि के मूल्यों का विकास किया जा सकता है। ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों का ज्ञान प्रदान करके हम छात्रों को उसकी उपयोगिता व बचत का ज्ञान करवा सकते हैं।

4. सामान्य (कोर) पाठ्यक्रम के शिक्षण द्वारा मूल्यों का विकास

“राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम के स्थान पर एक सामान्य या कोर पाठ्यक्रम द्वारा छात्रों में वांछित मूल्यों के विकास पर बल दिया गया है। नई शिक्षा नीति के निर्देशों में यह स्पष्ट रूप से घोषित किया गया है, “राष्ट्रीय स्तर पर कोर पाठ्यक्रम के अंग के रूप में मूल्य परक शिक्षा का भी पाठ्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। विभिन्न मूल्यों के आत्मसातिकरण के लिए उपयुक्त प्रविधियाँ भी निर्धारित करनी होंगी।

विभिन्न तत्वों को इस प्रकार संजोया जायेगा जिससे ‘राष्ट्रीय मूल्यों’का विकास किया जा सके। इन राष्ट्रीय मूल्यों में निम्नलिखित मूल्यों को शामिल किया जायेगा-

- i. भारत की सामान्य सांस्कृतिक धरोहर
- ii. लोकतन्त्र
- iii. धर्म-निरपेक्षता
- iv. स्त्री-पुरुष के बीच समानता
- v. सामाजिक अवरोधकों को दूर करना
- vi. सीमित परिवार का महत्व
- vii. वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास
- viii. पर्यावरण-संरक्षण

पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ

छात्रों में वांछित मूल्यों के विकास हेतु विद्यालय में निम्नलिखित पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का आयोजन करना चाहिए-

1. **प्रार्थना सभाएँ-** विद्यालय में प्रतिदिन आयोजित प्रार्थना सभाओं का भी बालकों में मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रार्थना सभा प्रारम्भ होने के पूर्व श्यामपट पर दैनिक विचार लिख देना चाहिए ताकि बालकों में स्व-चिन्तन का मूल्य विकसित हो। इसके बाद छात्र सामूहिक प्रार्थना में भाग ले जो कि नैतिकता पर आधारित हो। इसके द्वारा छात्रों में

- आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों का विकास किया जा सकता है। प्रार्थना सभा के बाद छात्रों द्वारा अपने विचारों की अभिव्यक्ति होनी चाहिए।
2. **खेलकूद सम्बन्धी क्रियाएँ** - खेल बालकों की जन्मजात स्वाभाविक स्वतन्त्र प्रवृत्ति है। अतः बालकों में वांछनीय मूल्यों जैसे प्रेम, सहानुभूति, सहनशीलता, सहयोग, भ्रातृत्व, परोपकार, आत्म-विश्वास, नेतृत्व समय की पाबन्दी, आदि के विकास के लिए विद्यालयों में खेलकूद सम्बन्धी क्रियाएँ आयोजित करते रहना चाहिए और इनके संचालन में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि छात्रों में अवांछित मूल्यों का विकास न हो सके और उनमें वांछित मूल्य ही विकसित हो।
 3. **राष्ट्रीय पर्व**- विद्यालय में राष्ट्रीय पर्व यथा-15 अगस्त, 26 जनवरी तथा 2 अक्टूबर बड़े ही उत्साहपूर्वक मनाने चाहिए। गाँधी जी का स्वतन्त्रता में योगदान, स्वतन्त्रता का इतिहास, भारतीय गणतन्त्र का इतिहास, भारतीय संविधान की रूपरेखा आदि ऐसे पहलू हैं, जिनके माध्यम से छात्रों में विश्वबन्धुत्व, देशप्रेम, त्याग, बलिदान, स्वतन्त्रता एवं समानता, राष्ट्रीय चेतना, दूसरे के गुणों की प्रशंसा करना, अस्पृश्यता-विरोध आदि मूल्यों का विकास किया जा सकता है।
 4. **जयन्ती वर्ष**-छात्रों में वांछित मूल्यों के विकास के लिए महान पुरुषों, नेताओं व विद्वानों के जन्मदिन मनाये जाने चाहिए। उदाहरण के लिए स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने वाले महापुरुषों के जन्म दिन मनाये जाने चाहिए और उनके जीवन की घटनाओं को प्रस्तुत कर छात्रों में मूल्यों का विकास किया जा सकता है। इस दिन विद्यालय में नाटक, वाद-विवाद प्रतियोगिता, गीत-संगीत आदि का भी आयोजन किया जा सकता है ताकि छात्रों में सामाजिक व सामूहिक मूल्यों का विकास किया जा सके।
 5. **सामाजिक पर्व**- विद्यालय एक ऐसे सामाजिक वातावरण का सृजन करता है, जो विभिन्न धर्मों, जातियों, प्रान्तों एवं भाषा समूहों के छात्रों को एक दूसरे को समझने का अवसर प्रदान करता है। कुछ मुख्य-मुख्य पर्वों को विद्यालय में अवश्य मनाना चाहिए। विद्यालय के सभी छात्रों को सामूहिक रूप से आकर इनमें सहभागी होना चाहिए। इस प्रकार के कार्यक्रमों से छात्रों में मानव-जाति की एकात्मकता, विभिन्नता में एकता तथा धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों का विकास किया जा सकता है।
 6. **वार्षिकोत्सव**- छात्रों में वांछित मूल्यों के विकास की दृष्टि से विद्यालयों में वर्ष के अन्त में वार्षिकोत्सव अवश्य आयोजित करना चाहिए। इसमें विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए। इस प्रकार से वार्षिकोत्सव मनाने से छात्रों में समय की पाबन्दी, श्रम में निष्ठा, समाजसेवा, नियमितता, राष्ट्रीय एकता, सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना, अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूकता आदि मूल्यों का विकास किया जा सकता है।
 7. **छात्र-संसद**- आज के छात्र कल के नागरिक हैं और उन्हीं के कर्तव्यों पर ही भविष्य का भार आना है। अतः विद्यालयों का कर्तव्य है कि वे बालकों में लोकतान्त्रिक मूल्यों का विकास

करके उन्हें भविष्य के लिए तैयार करें। इसके लिए विद्यालय में छात्र-संसद बनाकर विभिन्न कार्यों का सम्पादन करने हेतु विभिन्न समितियों का गठन किया जाना चाहिए। प्रत्येक समिति किसी ना किसी अध्यापक के संरक्षण में अवश्य होनी चाहिए। छात्र संसद तथा उसके अंतर्गत गठित समितियों के कार्यक्रमों के माध्यम से छात्रों में अनुशासन, आत्म-विश्वास, ईमानदारी, कर्तव्यपरायणता, एवं समानता भ्रातृत्व अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्वाह, अच्छे बुरे में भेद आदि मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

8. **सामाजिक उत्पादक कार्य-** शिक्षा व विद्यालय का यह परम कर्तव्य है कि वह छात्रों को समाजोपयोगी बनाने के लिए सामाजिक दृष्टि से उपयोगी व उत्पादक कार्य के लिए प्रेरित करें। इस प्रकार की प्रेरणा पाकर वे स्वच्छता-अभियान चला सकते हैं, निरक्षर-व्यक्तियों को साक्षर बनाने का प्रयास कर सकते हैं। इस प्रकार के सामाजिक उत्पादक कार्यों को करने से छात्रों में सामाजिक मूल्यों का विकास कर सकते हैं।
9. **अभिभावक सम्पर्क-** बालकों में वांछित मूल्यों का विकास करने के लिए शिक्षकों को चाहिए कि वे समय-समय पर छात्रों के अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित करते रहें। इस सम्पर्क द्वारा वे इस बात को जानने का प्रयास करें कि बालक पारिवारिक मूल्यों की उपेक्षा विद्यालय में और विद्यालय मूल्यों की उपेक्षा, परिवार व समाज में तो नहीं कर रहे हैं। इसके लिए वे परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करें और छात्रों में उचित मूल्यों का विकास करने हेतु एक दूसरे का सहयोग प्रदान करें।
10. **पर्यावरण सुधार-** मोटे रूप में पर्यावरण जिसकी परिधि में बालक अपना जीवन व्यतीत करता है दो प्रकार का होता है-1 भौतिक पर्यावरण 2-सामाजिक पर्यावरण। छात्रों को इन दोनों प्रकार के पर्यावरण में सुधार करने के लिए प्रेरित तथा प्रोत्साहित करना चाहिए। जिससे छात्रों में शान्ति, अहिंसा, इन्द्रिय नियन्त्रण, राष्ट्रीय एकता तथा परोपकार आदि मूल्यों का विकास हो सके।

शिक्षकों द्वारा आर्दश प्रस्तुति

बालको में मूल्यों के विकास हेतु स्वयं शिक्षकों द्वारा आर्दश प्रस्तुति की जानी चाहिए। शिक्षक के आचरण का अनुकरण करके ही बच्चे सत्य एवं न्याय जैसे जीवन मूल्यों को सीख सकेंगे, ये जीवन मूल्य पुस्तकों के माध्यम से नहीं सिखाये जा सकते हैं। अतः शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत आचरण छात्रों में उचित मूल्यों का विकास करने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. मानवीय मूल्यों के सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्रोत कौन से हैं ?
2. मानवीय मूल्यों के कोई तीन मानवीय स्रोतों के नाम लिखिए।

3. मूल प्रवृत्त्यात्मक व्यवहार के प्रतिमानको अर्जित नहीं किया जाता है। (सत्य/ असत्य)
4. _____ विधि में शिक्षक द्वारा छात्रों को विभिन्न की भूमिका निर्वाह करने के अवसर प्रदान किये जाते है।
5. मूल्य स्पष्टीकरण विधि को विकसित करने का श्रेय _____ को जाता है।
6. _____ विधि को प्रतिपादित करने का श्रेय ऑलिवर व शेवर को है।
7. अनुरूपीकरण विधि को प्रस्तुत करने का श्रेय गुड एवं कार्टर को है।
8. _____ विधि में पुस्तकीय ज्ञान पर बल देकर समस्यात्मक परिस्थितियों के सम्बन्ध में छात्रों के विचारों में विभिन्नता लाने का प्रयत्न किया जाता है।
9. मूल्य विश्लेषण शिक्षण विधि को प्रस्तुत करने का श्रेय _____ को है।
10. बालकों में मूल्यों के विकास में _____ का सबसे अधिक महत्व है।
11. छात्रों में मूल्यों के विकास में परिवार के बाद _____ का अति महत्वपूर्ण स्थान व भूमिका है।
12. _____ में विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम के स्थान पर एक सामान्य या कोर पाठ्यक्रम द्वारा छात्रों में वांछित मूल्यों के विकास पर बल दिया गया है।
13. राष्ट्रीय मूल्य सम्मिलित किन्हीं पाँच मूल्यों के नाम लिखिए।
14. छात्रों में वांछित मूल्यों के विकास हेतु विद्यालय में आयोजित की जाने वाली किन्हीं तीन पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के नाम लिखिए।

22.9 सारांश

मानवीय जीवन मूल्यों की संप्राप्ति की प्रक्रिया में जीवन मूल्यों के विभिन्न स्रोत अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। मानवीय मूल्यों के विभिन्न स्रोत हैं -सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्रोत, मानवीय स्रोत। 'महत्वपूर्ण अन्य', मानवीय मूल्यों को ग्रहण करने में विशिष्ट भूमिका का निर्वहन करते है। भारतीय समाज में माता-पिता, भाई-बहिन, अन्य सगे सम्बन्धी जीवन पर्यन्त 'महत्वपूर्ण अन्य' बने रहते है। इन 'महत्वपूर्ण अन्य' के व्यवहार के प्रतिमानों का हम अनुकरण करते हैं। मानवीय मूल्यों की प्राप्ति में इनकी भूमिका प्रभावी होती है।

बालकों में मूल्यों के विकास में परिवार का सबसे अधिक महत्व है। बच्चे की प्राथमिक शिक्षा यहीं से प्रारम्भ होती है जो कि आगे की शिक्षा का आधार बनती है। बालक में वांछित मूल्यों के विकास में पारिवारिक वातावरण के विभिन्न पक्षों का अति महत्वपूर्ण योगदान रहता है। यदि परिवार का मानसिक संवेगात्मक वातावरण अच्छा होगा तो बालकों में अच्छे मूल्यों का विकास होगा। माता-पिता जिस प्रकार का व्यवहार बच्चों से अपेक्षित करते है, उसका उन्हें स्वयं भी आचरण करना चाहिए। माता-पिता को बालकों में उचित-अनुचित व नैतिक-अनैतिक के बीच अन्तर समझने की

क्षमता उत्पन्न करनी चाहिए। छात्रों में मूल्यों के विकास में परिवार के बाद विद्यालय का अति महत्वपूर्ण स्थान व भूमिका है।

पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं द्वारा मूल्यों के विकास, पाठ्यक्रम में निहित विषयों में मूल्यों को समाहित करके उनके शिक्षण द्वारा छात्रों में मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

बालको में मूल्यों के विकास हेतु स्वयं शिक्षकों द्वारा आदर्श प्रस्तुति की जानी चाहिए। शिक्षक के आचरण का अनुकरण करके ही बच्चे सत्य एवं न्याय जैसे जीवन मूल्यों को सीख सकेंगे।

22.10 शब्दावली

छात्र-संसद- आज के छात्र कल के नागरिक हैं और उन्हीं के कन्धों पर ही भविष्य का भार आना है। अतः विद्यालयों का कर्तव्य है कि वे बालकों में लोकतान्त्रिक मूल्यों का विकास करके उन्हें भविष्य के लिए तैयार करें। इसके लिए विद्यालय में छात्र-संसद बनाकर विभिन्न कार्यों का सम्पादन करने हेतु विभिन्न समितियों का गठन किया जाना चाहिए। प्रत्येक समिति किसी ना किसी अध्यापक के संरक्षण में अवश्य होनी चाहिए। छात्र संसद तथा उसके अंतर्गत गठित समितियों के कार्यक्रमों के माध्यम से छात्रों में अनुशासन, आत्म-विश्वास, ईमानदारी, कर्तव्यपरायणता, एवं समानता भ्रातृत्व अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्वाह, अच्छे बुरे में भेद आदि मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

22.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मानवीय मूल्यों के सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्रोतनिम्नलिखित हैं-
 - iv. संस्कृति- दर्शन, धार्मिक क्रियाएँ, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, धार्मिक ग्रंथ।
 - v. सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक संस्थाएँ
 - vi. लोकतांत्रिक जीवन/शासन पद्धति से निर्मित/विकसित संविधान, नियम तथा कानून
2. मानवीय मूल्यों के कोई तीन मानवीय स्रोतों के नाम हैं-
 - i. अवतारी पुरुष
 - ii. लोकनायक
 - iii. धार्मिक नेता
3. सत्य
4. भूमिका निर्वहन शिक्षण

5. सिडनी साइमन
6. न्यायिक समीक्षण शिक्षण
7. सत्य
8. अनुरूपीकरण
9. जे0आर0फ्रेंकल
10. परिवार
11. विद्यालय
12. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986
13. राष्ट्रीय मूल्यों सम्मिलित किन्हीं पाँच मूल्यों के नाम निम्नलिखित है-
 - i. भारत की सामान्य सांस्कृतिक धरोहर
 - ii. लोकतन्त्र
 - iii. धर्म-निरपेक्षता
 - iv. स्त्री-पुरुष के बीच समानता
 - v. सामाजिक अवरोधकों को दूर करना
14. छात्रों में वांछित मूल्यों के विकास हेतु विद्यालय में आयोजित की जाने वाली किन्हीं तीन पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के नाम लिखिए।
 - i. प्रार्थना सभाएँ
 - ii. खेलकूद सम्बन्धी क्रियाएँ
 - iii. राष्ट्रीय पर्व मनाना

22.12 संदर्भ ग्रंथ

4. Gupta, N.L., Human Values in Education, Concept Publishing, New Delhi.
5. Higher Education for Human Development, Association of Indian Universities, New Delhi.
6. शर्मा, योगेंद्र कुमार, मधुलिका शर्मा(2009), शिक्षा के दार्शनिक आधार, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली

22.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. मानव व्यवहार के प्रतिमान के प्रतिमानों की व्याख्या कीजिए।
2. बालकों में मूल्यों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने की विधियों का वर्णन कीजिए।
3. मूल्यों के विकास में विद्यालयकी भूमिका पर एक टिप्पणी लिखिए।

